मार्च, जून, सितम्बर और दिसम्बर में प्रकाशित

सत्यमेव जयते

भाषा

त्रै मा सि क

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय शिक्षा-मंत्रालय भारत सरकार

अनुक्रम

पृ

सम्पादकीय

वैज्ञानिक शिक्षा का माध्यम

जब तक वैज्ञानिक ज्ञान आरंभिक अवस्था में अपनी भाषा में उपलब्ध न होगा तब तक विज्ञान असली रूप में हमें नहीं मिल सकेगा क्योंकि विज्ञान के बुनियादी तथ्य आमतौर पर आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करते समय ही स्वस्थ ढंग से अंकुरित होते हैं। यदि प्रारम्भिक अवस्था में इन बुनियादी बातों को बताने के लिए कक्षा में एक भाषा की शब्दावली और कक्षा के बाहर दूसरी भाषा की शब्दावली का व्यवहार होता रहा तो विद्यार्थी का उलझन में पड़ जाना स्वाभाविक है। उसके दिमाग़ में वैज्ञानिक ज्ञान सहज ढंग से नहीं पनप पाएगा और न बुनियादी तथ्य के बारे में उसकी पकड़ उतनी गहरी हो पाएगी जितनी कि तब जब कि उसे अपनी ही भाषा में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिले। विज्ञान की पढ़ाई हमारी अपनी भाषा में होगी तभी हम प्रकृति को अधिक सहज और वैज्ञानिक ढंग से समझ सकेंगे। इन बातों को दूसरी भाषा के माध्यम से पढ़ने में ध्यान विषय पर नहीं जमने पाता और विद्यार्थी भाषा की उलझनों में जा फँसता है। तोते की तरह रटकर और दिमाग़ पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर डाल कर प्रतिभा मंद हो जाती है और बुनियादी तथ्य पूरी तरह ठीक-ठीक समझ में नहीं आते हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अध्यक्ष होने के बाद भी मैं कभी-कभी दिल्ली विश्वविद्यालय में एम० एस-सी० के विद्यार्थियों को पढ़ाने जाता हूँ। पढ़ाते समय कभी-कभी ऐसी गंभीर बातें उठती हैं जो अधिकांश की समझ में तभी आती हैं जब उन्हें उनकी भाषा में व्यक्त किया जाए, पारिभाषिक शब्दावली भले ही अन्य भाषाओं की हो।

आजकल संसार में प्रतिवर्ष लगभग दस लाख वैज्ञानिक लेख, अस्सी हज़ार पुस्तकें और लगभग इतनी ही वैज्ञानिक रिपोर्टें प्रकाशित होती हैं। इन सब के लिए आमतौर पर रूसी और अँग्रेज़ी भाषाएँ इस्तेमाल की जाती हैं। संसार का पचास प्रतिशत वैज्ञानिक साहित्य अँग्रेज़ी में प्रकाशित होता है। इसी तरह रूस में लगभग दो हजार पत्रिकाएँ और पचपन हज़ार नई पुस्तकें प्रतिवर्ष प्रकाशित होती हैं। इनमें से सत्रह हज़ार पुस्तकें इंजीनि-नियरी पर और लगभग आठ हज़ार पुस्तकें कृषि से संबंधित होती हैं। इतने पर भी रूस के विज्ञान के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अँग्रेजी पढ़ना आवश्यक समझा जाता है। यूरोप के सभी देशों में जहाँ

अँग्रेज़ी भाषा नहीं है वहाँ के विद्यार्थी भी थोड़ी-बहुत अँग्रेज़ी पढ़ते हैं। यही बात अपने देश में भी लागू करनी चाहिए। इसके लिए विद्यार्थियों को अँग्रेज़ी का इतना ज्ञान हो ही जाना चाहिए कि वे विज्ञान की आधुनिकतम धाराओं से परिचित हो सकें। इसके लिए विद्यार्थी को न केवल हाई स्कूल तक ही अँग्रेज़ी पढ़नी होगी, वरन् अन्य विषयों की जानकारी के लिए विश्व-विद्यालय-स्तर तक भी अँग्रेज़ी को किसी-न-किसी रूप में जारी रखना होगा। अँग्रेज़ी के अतिरिक्त रूसी, जर्मन, फ्रेंच आदि अन्य विदेशी भाषाओं का ज्ञान भी योग्य विद्यार्थियों और अनुसंधानकर्ताओं के लिए जारी रखना ज़रूरी है। जब तक शिक्षण-संस्थाएँ और विश्वविद्यालय देशी भाषाओं पर काफ़ी बल न देंगे तब तक विज्ञान साधारण जनता से बहुत अलग पड़ जाएगा और भारतीय संस्कृति की भव्यता को उसके वास्तविक रूप में प्रकट नहीं कर पाएगा। इतना ही नहीं, आम आदमी की जो वास्तविक आवश्य-कताएँ हैं, उनका दर्शन भी विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में पूरी तरह नहीं उभर पाएगा। दूसरी ओर यदि हम केवल प्रादेशिक भाषाओं को ही विश्वविद्यालयों का माध्यम बनाकर संतोष करें तो आधुनिक युग की वैज्ञानिक दौड़ में अन्य देशों के साथ-साथ बढ़ना हमारे लिए दुष्कर होगा। कारण यह है कि आधुनिक साधनों के फलस्वरूप विज्ञान का विकास इतनी तेज़ी से हो रहा है कि जब तक नई खोजें छपकर सामने आती हैं तब तक वे पुरानी पड़ जाती हैं। आज से बारह वर्ष पूर्व सर एडवर्ड ऐपिलटन ने इंग्लैण्ड की वैज्ञानिक संस्था रॉयल सोसाइटी के तत्वावधान में वैज्ञानिक प्रकाशनों की एक कॉन्फ्रेन्स में कहा था कि 'यदि कोई मनुष्य आज प्रकाशित होने वाली सैद्धांतिक विज्ञान की सारी पत्रिकाओं को केवल पढ़ना ही चाहे (इसमें वैज्ञानिक तथ्यों को समझने की बात शामिल नहीं है जो लेख और निबन्ध आदि में प्रकाशित किए जाते हैं) और वह यदि ईमानदारी से एक वर्ष तक रोज़ निष्ठापूर्वक अपना समय इनको पढ़ने में लगाए तो भी साल भर के बाद उसे मालूम होगा कि निरन्तर बढ़ते हुए वैज्ञानिक ज्ञान की जानकारी पाने में वह दस वर्ष पिछड़ गया है।'

सच तो यह है कि यदि हम विश्व-विद्यालयों और शिक्षण-संस्थाओं को भारतीय संस्कृति और आधुनिक जीवन के अनुकूल बनाना है तो उसके लिए उन्नति-रूपी ऐसे रथ का निर्माण ज़रूरी है जिसका एक पहिया देशी भाषा हो और दूसरा पहिया अँग्रेज़ी हो और अन्य विदेशी भाषाएँ हों। इन दोनों पहियों पर चल कर यह रथ प्रगति के पथ पर बढ़ सकता है। यदि इसमें से एक पहिया भी अलग कर दिया गया तो यह रथ लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा।

—दौलतसिंह कोठारी

वैज्ञानिक साहित्य के सृजन का शुभारम्भ

नए भारत के निर्माण के लिए अनेक भौतिक साधन जुटाने के साथ ही साथ हमें सर्वसाधारण के दृष्टिकोण को भी परिष्कृत करना है। भौतिक साधन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही अभीष्ट की सिद्धि हो सकेगी।

दृष्टिकोण के परिष्कार के लिए वैज्ञानिक आधार चाहिए ताकि वह जीवन की संकीर्णताओं से परे विज्ञान-सम्मत मान्यताओं के प्रति हमारी आस्था जाग्रत कर सके और जो बौद्धिक कोश विदेशी भाषाओं में ही उपलब्ध होने के कारण हममें से अधिकांश की पहुँच के बाहर है, उसे सर्वसाधारण के लिए सुलभ कर सके।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए देश के वैज्ञानिकों और विभिन्न भाषाओं के विद्वानों का ध्यान वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की ओर आकृष्ट हुआ है। फलस्वरूप हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में विभिन्न वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों के अनुवाद का सूत्रपात किया जा चुका है।

पाठ्यपुस्तकों तथा संदर्भ-ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य अनेक विश्वविद्यालयों ने हाथ में लिया है। जन-साधारण की माँग को पूरा करने के लिए सामान्य ज्ञान और विज्ञान की पुस्तकों के अनुवाद और प्रकाशन की योजना भारतीय प्रकाशकों की सहायता से कार्यान्वित की जा रही है। इस तरह विपुल वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की दिशा में वांछनीय तत्परता दृष्टिगोचर हो रही है।

पारिभाषिक शब्दावली की समस्या

विभिन्न भारतीय भाषाओं अथवा विदेशी भाषाओं से हिंदी में अनुवाद का कार्य यों तो शताब्दियों से चलता रहा है और पर्यायों के संबंध में जब जैसी कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं, अनुवादकों ने उपलब्ध कोशों के सहारे उनका कोई न कोई हल निकाल ही लिया है। पर्यायों का यह प्रश्न आज काफ़ी जटिल और गम्भीर है। एक तो इसलिए कि यदि विभिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों के ग्रन्थों का अनुवाद करते समय अनुवादकों ने मनचाहे पर्यायों का उपयोग किया तो भाषा के क्षेत्र में बड़ी अराजकता फैल जाएगी। दूसरे, संविधान के उस नियामक सिद्धान्त का पालन भी कठिन होगा जिसके लिए हम सभी कटिबद्ध हैं। संविधान का निदेश है कि हिंदी को समृद्ध करते हुए हमें इस बात का विशेष ध्यान रखना है कि वह समग्र भारतीय संस्कृति के समन्वय का माध्यम बन सके। तात्पर्य यह है कि हमें हिंदीतर भारतीय भाषाओं के उस शब्द-भंडार का भी पूरा-पूरा सदुपयोग करना है जो सांस्कृतिक विरासत के रूप में हमें सुलभ है और हमारे भावनात्मक ऐक्य का संवर्धक और परिपोषक है।

भावनात्मक एकता के इस सूत्र को सशक्त करने की दिशा में पिछले दस-

बारह वर्षों से शिक्षा-मंत्रालय द्वारा वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण का कार्य किया जा रहा है।

वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्द-संग्रह का संकलन और प्रकाशन

यह सूचना देशव्यापी उल्लास का विषय होनी चाहिए कि संविधान के नियामक सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए, देश के विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों में निवास करने वाले वैज्ञानिकों और भाषाविदों ने पिछले दस, बारह वर्षों से वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्याय स्थिर करने का जो अनुष्ठान किया था, वह आज 'अँग्रेजी-हिंदी पारिभाषिक शब्द-संग्रह' के रूप में हमारे सामने है। हो सकता है कि प्रस्तुत शब्द-संग्रह कोश-निर्माण-कला की तुला पर शायद उन्नीस ही उतरे, पर इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं कि इस प्रकाशन ने हमारे एक बहुत ही बड़े अभाव की पूर्ति की है।

'शब्द-संग्रह' का प्रथम खण्ड तैयार है और दूसरा खण्ड दो माह बाद उपलब्ध हो सकेगा। दोनों खण्डों में कुल मिलाकर लगभग पन्द्रह सौ पृष्ठ होंगे और दो लाख के ऊपर शब्दों का संकलन होगा। शब्द-संग्रह का प्रथम खण्ड वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली आयोग के विचाराधीन है तथापि आयोग उसमें आमूल परिवर्तन की दिशा में प्रवृत्त होगा, यह सोचना ग़लत होगा। आयोग का उद्देश्य तो इतना ही है कि उसे कोश-निर्माण की परिपाटी के अनुरूप ढाल कर यत्किंचित् परिवर्तन, संशोधन और परिवर्धन के साथ नवीन संस्करण की माँग होने पर पुनर्प्रकाशन के लिए तैयार कर लिया जाए अतः शब्द-संग्रह के प्रस्तुत संस्करण को ही प्रामाणिक मानते हुए लेखक, अनुवादक, पत्रकार, भाषाविद् और विद्यार्थी अपना काम बिना किसी रोक-टोक के पूरा कर सकते हैं।

'सरस्वती' की वन्दना

भारतवासियों के लिए यह गौरव की गाथा होगी कि इस देश का कोई पत्र या पत्रिका अपने जीवन के साठ वर्ष सफलता से पूरे कर ले। हिंदी साहित्य की प्रगति और श्रीवृद्धि में 'सरस्वती' ने जो योगदान दिया उससे न केवल वाणी सार्थक हुई बल्कि हिंदी साहित्य की उन सारी पीढ़ियों का अस्तित्व सार्थक हो गया जिन्होंने इस दीप को आज तक जगाए रखा। 'सरस्वती' का हीरक जयन्ती समारोह एक महत्त्वपूर्ण घटना है। समारोह के अवसर पर श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी के कुशल सम्पादन में 'सरस्वती' का जो विशेषांक प्रकाशित किया गया है वह संग्रहणीय साहित्य है। 'सरस्वती' के व्यवस्थापक, सम्पादक और मुद्रक बधाई के पात्र हैं। उनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहें, यही हमारी कामना है।

'भाषा' का नवीन स्तम्भ

हिंदी तथा हिंदीतर पाठकों को भारतीय साहित्य के विभिन्न अंगों की

प्रगति से परिचित कराने की दृष्टि से हम इस अंक से 'भारतीय साहित्य' नामक स्तंभ प्रारम्भ कर रहे हैं जिसमें भारतीय साहित्य की वार्षिक प्रगति तथा गति-विधि का लेखा-जोखा रहेगा। प्रस्तुत अंक में 1961 वर्ष के हिंदी साहित्य का मूल्यांकन किया गया है।

दिवंगत साहित्यकार

अब तक अपनी उपलब्धियों का आकलन करते हुए आह्लादित मेरे मन पर एकाएक उस क्षति का बोझ आ गिरा है जो पं० रामनरेश त्रिपाठी, डॉ० सिद्धान्त, श्री देवव्रत शास्त्री, डॉ० यदुवंशी तथा श्री सत्यदेव परिव्राजक के निधन के फलस्वरूप हमें उठानी पड़ी है। इन विद्वानों की मूर्तियाँ एक-एक कर मेरे समक्ष उपस्थित होती हैं।

त्रिपाठी जी ने हिंदी क्षेत्र के लोक-गीतों और लोक-कथाओं के अध्ययन और अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रदूत का कार्य किया। उनके द्वारा संकलित 'कविता-कौमुदी' ही उनकी अमरता का वरदान है। इसके अतिरिक्त उनके कई राष्ट्रीय गीत अगणित जनकंठों से चिरकाल उनकी उज्ज्वल कवित्व-कीर्ति की घोषणा करते रहेंगे।

डॉ० सिद्धांत अपने तेजस्वी व्यक्तित्व की आभा हम पर बिखेर गए। उनके जैसा पारखी क्या अँग्रेजी, क्या हिंदी, क्या संस्कृत, क्या बँगला सभी के साहित्यिक सौंदर्य का रसास्वादन कर सकता था और करा सकता था।

डॉ० यदुवंशी तो हमारे शिक्षा-मंत्रालय के हिंदी विभाग के कुटुम्बी ही थे। उनके ग्रंथ और निबंध ही नहीं, वरन् कार्यालय की टिप्पणियाँ और कागज-पत्र भी उनकी गहरी सूझ-बूझ और विद्वत्ता के परिचायक हैं।

स्वामी सत्यदेव ने तो घुमक्कड़ी का बाना ही अपना लिया था। जीवन भर वे परिव्राजक रहे। उनके यात्रा-वृत्तान्त अब भी प्रेरणास्पद रहेंगे।

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में श्री देवव्रत शास्त्री को कैसे भुलाया जा सकेगा: उनके द्वारा स्व० गणेश शंकर विद्यार्थी पर लिखी जीवनी एक अन्यतम उपलब्धि है और जीवनी साहित्य में उसका विशिष्ट स्थान बना रहेगा।

—विश्वनाथ प्रसाद

हिंदी भाषा की समस्याएँ

विश्वविद्यालयों में माध्यम-परिवर्तन

भाषा और विज्ञान का पारस्परिक संबंध

हिंदी का आत्मालोचन

हमारी भाषा की समस्याएँ ?

हिंदी : अपेक्षा और सम्भावनाएँ

अनुवाद-कार्य का महत्त्व और उसकी कठिनाइयाँ

अनुवाद की समस्याएँ

विश्वविद्यालयों में माध्यम परिवर्तन

● रमाप्रसन्न नायक

हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम रूप में प्रयुक्त करने के लिए सबसे पहली आवश्यकता है एकरूप अखिल भारतीय शब्दावली का निर्माण और दूसरी उसके आधार पर साहित्य की रचना। अन्य क्षेत्रों में शब्दावली चाहे न हो किन्तु यह अत्यन्त आवश्यक है कि विज्ञान और टैकनॉलजी के क्षेत्र में सारी भाषाओं में एक-सी ही शब्दावली हो। इसके सिवा अँग्रेज़ी के माध्यम से पढ़े हुए प्राध्यापकों का प्रशिक्षण भी आवश्यक दिखाई देता है। इन भौतिक साधनों के अतिरिक्त मेरी राय में सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम अपने देश में इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करें जिससे कि लोगों के हृदय में जो शंका और संदेह है वह मिट जाए तथा सब को विश्वास हो जाए कि हम विश्वविद्यालय स्तर पर भी अपनी ही भाषाओं के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन का कार्य कर सकते हैं।

विश्वविद्यालयों में हिंदी अथवा अन्य प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रश्न कोई नया नहीं। वर्षों से इस पर विचार-विनियम हो रहा है। एक ज़माना था जब लोग यह समझते थे कि विश्वविद्यालय तो क्या, शाला के स्तर पर भी प्रादेशिक भाषाओं के द्वारा पढ़ाई का काम सुचारु रूप से नहीं किया जा सकता। जैसा कि हम जानते हैं अब वह बात नहीं रही; किंतु आज भी बहुत से व्यक्तियों का मत है कि विज्ञान तथा टेकनॉलजी के क्षेत्रों में उच्चतम शिक्षा भारतीय भाषाओं के माध्यम से नहीं दी जा सकती क्योंकि ये भाषाएँ इतना बड़ा भार उठाने की ताकत नहीं रखतीं।

इसके सिवा ये लोग व्यावहारिक पक्ष को प्रधानता देते हैं और उनके विचार में हमारा पहला कार्य भारत में अधिक से अधिक संख्या में वैज्ञानिकों और तंत्र-विशारदों को उत्पन्न करना है जिससे कि देश बहुमुखी उन्नति कर सके। उनकी राय में इस काम में भाषा की बाधा डालना देश की उन्नति की गति को धीमा करना होगा। वैसे, वे यह मानते हैं कि जहाँ तक अन्य विषयों का प्रश्न है, विश्वविद्यालय स्तर पर भी उन भाषाओं के माध्यम से अध्यापन कार्य आज भी किया जा सकता है। लेकिन क्या वैज्ञानिक क्षेत्र और क्या दूसरे क्षेत्र, जब तक प्रामाणिक साहित्य का निर्माण नहीं होता तब तक अध्यापन का कार्य ठीक तरह से शुरू ही नहीं किया जा सकता और उनकी राय में पहले पर्याप्त साहित्य का निर्माण हो जाना चाहिए।

दूसरा वर्ग है आदर्शवादियों का। उनका आदर्श सांस्कृतिक पुनरुत्थान है और वे इसका माध्यम एकमात्र संस्कृत भाषा ही स्वीकार करते हैं। साथ ही उनका विचार है कि यदि भारतीय भाषाओं में अधिकाधिक अभारतीय शब्दावली का उपयोग किया गया तो भाषाएँ भारतीय नहीं रह जाएँगी और साथ ही देश के सम्मान को भी धक्का पहुँचेगा। उनके अनुसार सारी शब्दावली संस्कृत के ही आधार पर बनाई जानी चाहिए। जैसा कि सर्वविदित है, इस संबंध में दो-एक यत्न भी किए गए हैं।

तीसरा वर्ग उनका है जो इन दो प्रतिवादियों के बीच का मार्ग अपनाना चाहते हैं। वे प्रयत्नों और प्रयोगों द्वारा हिंदी तथा भारतीय भाषाओं की शब्दा-वली और साहित्य को समृद्ध कर उनके विकास और उपयोग के मार्ग को प्रशस्त करने में लगे हुए हैं। मैं इन्हें कर्मवादी और तथ्यवादी कहूँगा। क्या संस्कृत क्या अँग्रेज़ी और क्या कोई अन्य भाषा सभी को ये अपने उद्देश्य की सिद्धि में सहायक मानते हैं।

शब्दावली के निर्माण में दो-चार महत्त्वपूर्ण बातें ऐसी हैं जो भुलाई नहीं जा सकतीं। समाज-विज्ञान के क्षेत्र में चाहे हम कैसी भी शब्दावली लें, किंतु विज्ञान और टेकनॉलजी के क्षेत्र में यदि अन्तरराष्ट्रीय शब्दावली का बिल्कुल परित्याग कर दिया गया तो सारे विश्व के वैज्ञानिक साहित्य से हम नाता तोड़ लेंगे। दूसरी ओर केवल हिंदी की ही शब्दावली बनाने से काम नहीं चलेगा; आवश्यकता तो इस बात की है कि जहाँ तक हो सके, सारी भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली एक-सी हो। यदि यह न हुआ तो नतीजा यह होगा कि हमारी भाषाएँ अलग-अलग दिशाओं में चली जाएँगी और कुछ काल के बाद अराजकता उत्पन्न होने की आशंका रहेगी। साथ ही, हम यह भी नहीं भूल सकते कि भारतीय भाषाओं का अपना एक पुराना इतिहास और स्वतंत्र व्यक्तित्व है। एक तो यह कहना कठिन है कि अन्तरराष्ट्रीय शब्दावली क्या है,

दूसरे पश्चिमी अन्तरर्राष्ट्रीय शब्दावली के लगभग शतप्रतिशत शब्द लैटिन अथवा ग्रीक आधार पर बने हुए हैं। उन्हें बिना सोचे समझे, यों ही, हमारी भाषाओं में नहीं लिया जा सकता।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि एक ऐसा मध्यम मार्ग अपनाया जाए जिससे कि ऐसी शब्दावली बनाई जा सके जो अन्तरराष्ट्रीय शब्दावली से बहुत दूर न हो और साथ ही भारत की सभी भारतीय भाषाएँ जिसे मान्य और ग्रहण कर सकें।

वैज्ञानिक शब्दावली का रूप कैसा हो इस संबंध में दो-एक बातें हमारे सामने आती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से शब्द और अर्थ में परस्पर क्या संबंध होना चाहिए ? क्या भावना और भावप्रधान भाषा के नियम हैं ? जैसा कि आप जानते हैं, आचार्य कुन्तक ने काव्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि शब्द और अर्थ में परस्पर चारुता की स्पर्द्धा होती है। परन्तु वैज्ञानिक शब्दावली में यह बात नहीं। वहाँ तो तथ्य अर्थ पर हावी रहता है और अर्थ शब्द पर। यदि नाम या शब्द यथातथ्यात्मक न हो तो वैज्ञानिक का काम चल ही नहीं सकता। दैनिक कार्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा में एक शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं या उसके अर्थ की छाया काफ़ी व्यापक हो सकती है किंतु विज्ञान में यह आवश्यक है कि प्रत्येक शब्द का एक ही अर्थ हो और वह सुनिश्चित हो। जहाँ सुगमता और परिशुद्धता में द्वंद्व हो वहाँ परिशुद्धता ही की हमेशा जीत होनी चाहिए। यही कारण है कि विज्ञान के शब्द कभी-कभी विचित्र या अटपटे होते हैं। उस विज्ञान-विशेष के जानकारों के सिवा दूसरों को न तो वे समझ में ही आते हैं और न उनमें उन्हें कोई दिलचस्पी ही होती है। जब ये शब्द दूसरी भाषा के होते हैं तब तो हम में से बहुत से लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं लेकिन जब उनके अर्थ के अनुसार हमारी भाषा में कोई शब्द गढ़ा जाता है तो नवीनता के कारण हममें से बहुत से उनमें केवल विनोद की ही सामग्री पाते हैं।

अपने अवलोकन अथवा प्रयोग के निष्कर्ष को वैज्ञानिक एक निश्चित परिभाषा में बाँधते हैं और फिर उनके लिए शब्द निर्धारित करते हैं। इस तरह वैज्ञानिक शब्द सामान्य भाषा के शब्दों से अलग हो जाते हैं और यदि वैज्ञानिक सामान्य भाषा का शब्द लेते भी हैं तो उसको एक निश्चित हुए अर्थ में प्रयुक्त करते हैं जिससे कि प्रयोग में उसकी स्थिति कुछ विलक्षण और असामान्य सी लगती है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, आज विज्ञान और टेकनॉलजी बड़ी शीघ्रता से प्रगति कर रहे हैं और सारे संसार में आए दिन नई-नई खोजें हो रही हैं, नए-नए आविष्कार किए जा रहे हैं। विज्ञान किसी देश-विशेष की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। साथ ही, यह न तो किसी एक आदमी के बस का काम है और न

किसी एक देश के। यदि विज्ञान की दौड़ में कोई देश अन्य देश से पीछे नहीं रहना चाहता तो यह भी आवश्यक है कि वह अपनी खिड़कियाँ और दरवाज़े खुले रखे जिससे कि उसे बिना विलम्ब यह पता लगता रहे कि कहाँ क्या हो रहा है। संसार के वैज्ञानिक यदि यह चाहें कि वे अलग-अलग अपना काम करते रहें तो उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकेगी। साथ ही श्रम और धन का अपव्यय भी होगा। यही कारण है कि विज्ञान की मूल शब्दावली विश्व के अधिकांश देशों में समान है और परस्पर विचार-विनिमय तथा अन्य अन्वेषणों की आधार-भूमि है।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या सभी देशों में वैज्ञानिक क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली एक ही है? सभी देशों में तो वह एक नहीं है, किंतु अधिकांश देशों में कई विषयों की शब्दावली एकरूप अथवा समरूप अवश्य है। आप जानते हैं कि भारत सरकार के तत्त्वावधान में शब्दावली-निर्माण का कार्य काफ़ी दिनों से हो रहा है और उसमें हिस्सा लेने वाले अनुभवी वैज्ञानिकों ने इस विषय पर काफ़ी विचार किया है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि हमें इन वर्गों के शब्दों को अन्तरराष्ट्रीय मान कर चलना चाहिए।

1. जो वस्तुओं का वज़न करने और माप करने की इकाइयाँ है (मीटर, कैलरी, लिटर);
2. जो आविष्कारों के नामों से संबद्ध हैं (एम्पियर, वोल्ट, वॉट);
3. जो समस्त संसार में प्रचलित हो चुके हैं (रेडियो, रडार);
4. जो नए तत्त्वों, यौगिकों आदि के नाम हैं (एल्यूमीनियम, हाइड्रोजन, क्रोमेट);
5. वनस्पति और प्राणि-विज्ञान के द्विनाम।

इसके सिवा उन विदेशी शब्दों को भी ग्रहण किया जा सकता है जो काफ़ी अर्से से हमारी भाषाओं में घुलमिल गए हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि नए शब्द सरल और बोधगम्य होने चाहिए तथा शब्दावली के निर्माण में विभिन्न स्रोतों से आने वाले शब्दों का पूर्ण उपयोग होना चाहिए। किंतु इतना कह देने से ही काम नहीं चलेगा।

जब हम सरल शब्दों को लेने का आग्रह करते हैं तो हमारा अभिप्राय हिन्दुस्तानी और हिंदी की उपभाषाओं में प्रचलित शब्दों से होता है।

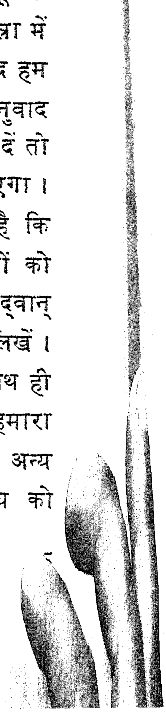
सामान्य शब्द	पारिभाषिक शब्द
कच्ची धातु	अयस्क
गलाना	प्रद्रावण
मुंडेर	उष्णीय
टिकाऊपन	स्थायित्व
पतली तह	उपस्तरिका
गुटका	क्लीट
चिटकी	क्लिप
डाँड	जिब
खंगर	बिलंकर

ये सारे शब्द सरल हैं और हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली में इनको स्थान मिलना चाहिए। परन्तु भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली केवल हिंदी-भाषियों की तो होगी नहीं। आज अँग्रेज़ी के कारण भारत में परस्पर विचार-विनिमय में सुविधा है किंतु जब उपभाषाओं के शब्दों की बात आती है तो हिंदी (खड़ी बोली) पढ़ने के उपरान्त भी दक्षिण भारतीयों के लिए ऐसे शब्द अपरिचित ही होते हैं और वे संस्कृत के आधार पर बना हुआ शब्द अधिक पसन्द करते हैं। यह तो हमारी विशेषज्ञ समितियों के दैनिक अनुभव की बात है। अतएव पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में संस्कृत की ओर झुकाव आवश्यक है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हिंदी में शब्दावली का निर्माण करते समय हमें यह ध्यान में रखना है कि जहाँ तक हो सके वे शब्द अन्य भारतीय भाषाओं को भी मान्य हों जिससे कि सारे देश में एक-सी ही वैज्ञानिक या पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग हो सके। अन्तरराष्ट्रीय नाम या धातु लेकर उनमें उपयुक्त उपसर्ग अथवा प्रत्यय जोड़ कर शब्द बनाने से यह लाभ होगा कि प्रान्तीय भाषाओं में भी वे ही मूल रूप में प्रयुक्त होंगे और उनके व्याकरण के अनुसार केवल उपसर्ग अथवा प्रत्यय का ही अंतर होगा। इस तरह इस कठिन समय में हम भाषा-संबंधी अनेक विवादों से मुक्ति पा सकेंगे और विवादों में पड़ने के बजाय ठोस काम में अपनी शक्ति लगा सकेंगे।

एक बात और। जो शब्द परिकल्पना-प्रधान हैं और हमारी भाषाओं के अभिन्न अंग हैं उन्हें अन्तरराष्ट्रीय शब्दावली से नहीं लिया जा सकता। उनका तो हमें अनुवाद ही करना होगा। ऐसा सभी भाषाओं में किया गया है। ये शब्द सभी यूरोपीय भाषाओं में भी एकरूप या समरूप नहीं हैं। हाँ, लैटिनजन्य भाषाओं में वे एकरूप हो सकते हैं किंतु अन्य भाषाओं में उनके अलग-अलग रूप हैं। इस तरह की परिकल्पनात्मक वैज्ञानिक शब्दावली का अखिल भारतीय रूप संस्कृत के आधार पर ही निर्माण किया जा सकता है। वैसे विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं को इस प्रकार की छूट भी देनी होगी कि वे अपनी-अपनी भाषाओं की आवश्यकताओं के अनुसार अलग-अलग रूप रखें।

जैसा कि मैंने पहले कहा, दूसरी आवश्यकता है अधिक से अधिक मात्रा में प्रामाणिक साहित्य का निर्माण। यदि हम केवल थोड़ी-सी पाठ्य-पुस्तकों का अनुवाद करके विद्यार्थियों के हाथ में दे दें तो इससे शिक्षा का स्तर गिर जाएगा। आवश्यकता तो इस बात की है कि भारतीय विद्यार्थियों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए हमारे ही विद्वान् और वैज्ञानिक मौलिक पुस्तकें लिखें। इसमें कुछ समय लग सकता है। साथ ही केवल इस प्रकार के साहित्य से ही हमारा काम नहीं चलेगा। संसार की अन्य भाषाएँ दूसरी भाषाओं के साहित्य को



अपना कर ही समृद्ध हुई हैं। कोई कारण नहीं कि हम भी अपनी भाषाओं का भण्डार अन्य भाषाओं के वैज्ञानिक और अन्य साहित्य को अनूदित करके समृद्ध न बनाएँ। यदि हमारी भाषाओं में विद्यार्थियों को अच्छी से अच्छी पुस्तकें पढ़ने को मिल सकें (कुछ समय तक अँग्रेज़ी की पुस्तकें भी वे पढ़ेंगे) तो फिर शिक्षा के स्तर के गिरने का कोई भय नहीं रहेगा। साथ ही उन पुस्तकों की सहायता से हमारे अध्यापकगण भी भारतीय भाषाओं के माध्यम से सरलता-पूर्वक अध्यापन कार्य कर सकेंगे। यही कारण है कि हाल ही में शिक्षा मंत्रालय ने विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों को लिखवाने और अनूदित कराने के संबंध में एक महती योजना बनाई है। इस योजना के अनुसार भारत सरकार उन सभी विश्वविद्यालयों और राज्य-शासनों को इस कार्य के लिए शतप्रतिशत अनुदान देने को तैयार है जो इसमें भाग लेना चाहें। लगभग 200 पुस्तकें इस कार्य के लिए चुन ली गई हैं तथा विश्वविद्यालयों और राज्य सरकारों को बाँट दी गई हैं। इन में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का प्रयोग अनिवार्य रूप से होगा। आशा है कि समस्त विश्व-विद्यालय इस योजना में अधिक से अधिक भाग लेंगे और उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप निकट भविष्य में ही हिंदी में इतना उच्चकोटि का वैज्ञानिक और अन्य साहित्य निर्मित हो जाएगा, कि फिर यह न कहा जा सकेगा कि विश्व-विद्यालय स्तर पर किसी भारतीय भाषा के माध्यम से पढ़ाई नहीं हो सकती; क्योंकि इन भाषाओं में वांछित साहित्य ही उपलब्ध नहीं है।

इस कार्य के करने में हम सब पर एक बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है। यदि यह काम ठीक से किया गया तो हम सरलता से सफलता की एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते जाएँगे, किंतु यदि आरम्भ में ही यह कार्य ठीक से न किया जा सका तो हम उनकी शंकाओं को बल देंगे, जो यह कहते हैं कि भारतीय भाषाओं में वह शक्ति ही नहीं कि वे आज के विचार और विज्ञान का भार उठा सकें। जैसा कि हम सभी जानते हैं विज्ञान की भाषा बोल-चाल की भाषा से अलग होती है। उसे विज्ञान के विशेषज्ञों के सिवा कभी कभी तो और लोग समझ भी नहीं पाते। इस संबंध में अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं किंतु मैं समझता हूँ कि सभी इस तथ्य से परिचित हैं और उदाहरण देने की कोई आवश्यकता नहीं। जब अँग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में यह बात है, जिनका कि इस क्षेत्र में काफ़ी अर्से से उपयोग हो रहा है, तब भारतीय भाषाओं के बारे में तो कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं। हममें से अधिकांश ने अँग्रेज़ी के द्वारा शिक्षा पाई है और इसलिए जब कभी हमें जटिल अथवा दुरूह विषयों पर लिखना पड़ता है तो हमारी भाषा में अँग्रेज़ी के वाक्य-विन्यास, शब्द-रचना, मुहावरे आदि बरबस आ जाते हैं लेकिन अँग्रेज़ी अभि-

व्यक्ति का अंधानुकरण करने से हम कभी अपनी भाषाओं में स्वाभाविक और सहज शैली नहीं ला सकेंगे और फलतः अटपटी भाषा में लिखे हुए ऐसे ग्रन्थों को एक बार के बाद दुबारा कोई हाथ भी नहीं लगाएगा। इस लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जो भी अनुवादक या लेखक इस काम में हाथ लगाएँ वे पहले अपनी भाषा की प्रकृति को ठीक से समझ लें और तब कलम उठाएँ। साथ ही यह भी ज़रूरी है कि हम अपनी भाषा में नई आवश्यकताओं के अनुसार कुछ लोच पैदा करें। उदाहरण के लिए हिंदी में 'उद्भव होना' और 'प्रत्यक्षीकरण करना' जैसे प्रयोग व्याकरण के अनुसार आवश्यक हैं, किंतु इससे भाषा में शब्दों का बाहुल्य होता है और वाक्यों का अनावश्यक विस्तार। इसके सिवा वाक्यों में सहज गति भी नहीं रह जाती। इस प्रकार की और भी बातें हैं। मुझे विश्वास है हिंदी के विद्वान् इस पहलू पर विचार करेंगे तथा उपयोगी हल खोज निकालेंगे।

मैंने पहले कहा है कि वैज्ञानिक शब्द सरल और बोधगम्य होने चाहिएँ किंतु सभी दिशाओं में ऐसा सम्भव नहीं। एक ओर तो परिशुद्धता की आवश्यकता है और दूसरी ओर इस तथ्य पर भी ध्यान देने की कि शब्द किसी वस्तु या विचार का बोधक होता है और यदि यह वस्तु अथवा विचार अपने आप में दुरूह अथवा जटिल हो तो उसको व्यक्त करने वाले शब्द कैसे सरल हो सकते हैं।

मैं ज़ोर देकर कहना चाहूँगा कि हमें एक ऐसी नई शैली का सृजन करना होगा जो अँग्रेज़ी की अन्धानुगामिनी न हो और जिसमें हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विचार अभिव्यक्त करने की पूर्ण क्षमता हो।

विद्यार्थी हमेशा केवल पाठ्य-पुस्तकें अथवा सन्दर्भ ग्रंथ ही पढ़ना पसन्द नहीं करते, वे चाहते हैं कि उन्हीं विषयों की उन्हें ऐसी पुस्तकें मिल सकें जिनमें सारी बातें ऐसी शैली में लिखी गई हों जिससे कि मूल विचार उन्हें सहज ही समझ में आ सकें और जिन्हें अच्छी तरह समझने के बाद वे और अधिक गहराई में पैठ सकें। इसके सिवा ऐसी पुस्तकें साधारण पाठकों के लिए भी आवश्यक होती हैं और उनका सब से बड़ा उपयोग, कम से कम हमारे देश में यह होगा कि जन-साधारण के मन में यह बात बैठ जाएगी कि हमारी भाषाओं के माध्यम से भी विज्ञान तथा टेकनॉलजी के सिद्धांत और तथ्य व्यक्त किए जा सकते हैं। प्रसन्नता है कि अनेक संस्थाएँ और प्रकाशक इस संबंध में प्रशंसनीय प्रयत्न कर रहे हैं। किंतु जैसा कि हम सभी जानते हैं इस प्रकार की पुस्तकों की आज काफ़ी माँग नहीं है और इसलिए प्रकाशक इस कार्य में किसी बड़े पैमाने पर हाथ डालने में हिचकिचाते हैं। हर्ष का विषय है कि भारत सरकार इस संबंध में एक योजना बना चुकी है और निकट भविष्य में ही वह प्रकाशकों को इस प्रकार के

साहित्य के निर्माण के लिए समुचित सहायता देने वाली है। आशा है प्रकाशक इस कार्य में शासन का हाथ बटाएँगे और हिंदी की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा करने में मदद देंगे। यह भी आशा की जाती है कि उसके बाद अन्य प्रादेशिक भाषाओं के लिए भी इस प्रकार की योजनाएँ बनाई जा सकेंगी।

शब्दावली का निर्माण-कार्य काफ़ी आगे बढ़ चुका है, किंतु जब तक उस शब्दावली का प्रयोग नहीं होता तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह कहाँ तक ठीक और उपयोगी है। जब उसका लेखों और पुस्तकों में उपयोग होने लगेगा तभी पता चलेगा कि वह कसौटी पर खरी उतरती है या नहीं। यदि प्रयोग से पता चला कि उसमें कुछ परिवर्तन आवश्यक हैं तो आवश्यक परिवर्तन अवश्य किए जाएँगे।

अब समय आ गया है कि सब तर्क-वितर्क छोड़ कर हम काम में जुट जाएँ। नदी के किनारे बैठकर पानी की गहराई से डरते रहने से काम नहीं चलेगा। जो पानी में कभी नहीं उतरता वह तैरना सीख ही नहीं सकता। आज की सारी कठिनाई वर्तमान पीढ़ी की कठिनाई है। आज के बालक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हुए बड़ी संख्या में आगे बढ़ते जा रहे हैं और मुझे विश्वास है कि उनकी मनोवृत्ति हमारी मनोवृत्ति से भिन्न है। माध्यमिक शिक्षा तक हम पहले ही आगे बढ़ चुके हैं और कुछ विश्वविद्यालयों में ऊपर की कक्षाओं में भी हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से पढ़ाई आरम्भ कर दी गई है। अब ऐसी स्थिति में हम रुक नहीं सकते। हमें आगे बढ़ते ही जाना है और ठोस कार्य के द्वारा जनता में विश्वास उत्पन्न करना है। यदि हम केवल संशयात्मक बुद्धि से काम लेंगे और संस्कारों के वशीभूत होकर वस्तु-स्थिति को देखने से इन्कार करेंगे तो हमारी जवाबदेही आने वाली पीढ़ियों के सामने होगी।

इस संबंध में प्रश्न उठता है कि अँग्रेज़ी के माध्यम से पढ़े हुए शिक्षक किस प्रकार यह कार्य कर सकेंगे ? मुझे इस विषय पर बहुत गहरी जानकारी तो नहीं पर यदि विचार किया जाए तो अँग्रेज़ी के माध्यम से पढ़े हुए शिक्षकों के लिए यह उत्तरदायित्व लेना कोई कठिन कार्य नहीं है। अगर कमी है तो केवल संकल्प की। यदि किसी को अपने ऊपर विश्वास ही न हो, यदि यह काम कोई करना ही न चाहे, तो संसार के समस्त साधन भी उसके लिए व्यर्थ हैं। यदि कार्य के लिए कोई प्रशिक्षण आवश्यक है तो उसका प्रबंध विश्वविद्यालयों को अवश्य करना चाहिए। विशेष सेमिनार भी आयोजित किए जा सकते हैं। विचार-विनिमय के लिए साधन जुटाए जा सकते हैं और आवश्यक हो तो समय-समय पर इस संबंध में व्याख्यान-मालाएँ भी आयोजित की जा सकती हैं।

किंतु मेरी राय में यह स्वयं प्राध्यापकों पर ही निर्भर करता है कि वह इस काम

में कितनी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यदि आवश्यक हो तो आरम्भ में मिली-जुली भाषा का प्रयोग किया जा सकता है। कई विद्वान् इसे अच्छा नहीं समझते, किंतु मेरी समझ में इसमें कोई हानि नहीं है। यह उनका इस दिशा में पहला क़दम होगा और जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे उन्हें इस कार्य में सरलता महसूस होगी।

अन्त में मैं फिर यह कहना चाहूँगा कि मेरे विचार में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उपाय अथवा साधन है देश में वातावरण का निर्माण। जो भी व्यक्ति या वर्ग भारतीय भाषाओं का उत्कर्ष चाहते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे इस प्रकार के वातावरण के निर्माण में योगदान दें। यदि हम साधारण बातचीत में भी हिंदी का व्यवहार नहीं करते या नहीं कर सकते, यदि हम घर में अपने बच्चों अथवा पत्नी से भी अँग्रेज़ी में ही बातचीत करते हैं अथवा उन्हें अपनी ही भाषा में पत्र नहीं लिख सकते, यदि हम किसी नए विषय पर बोलते समय हर वाक्य में दो-चार अहिंदी शब्दों का अनावश्यक रूप से प्रयोग करते हैं जिनके लिए सहज ही हिंदी के शब्द प्रयुक्त किए जा सकते हैं, तब हम उन शंका करने वालों का मुँह कैसे बंद कर सकते हैं जो हमेशा यही कहते हैं कि कठिन विषयों और विचारों को व्यक्त करने के लिए भारतीय भाषाओं के पास शक्ति ही नहीं। हम अपने व्यवहार के द्वारा ही उनकी बात सिद्ध करते हैं। इसके सिवा, अन्य भाषाओं के संबंध में भी इस विषय पर सम्यक् रूप से विचार करने की आवश्यकता है। मुझे पूरा विश्वास है कि जो भी इस विषय पर गम्भीरता से विचार करेगा वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि यदि हम अपनी भाषाओं को यह अवसर ही न दें कि वे इस ज़िम्मेदारी को उठा सकें, तो फिर उनमें शक्ति आएगी कहाँ से? आज से कुछ शताब्दी पूर्व अँग्रेज़ी के विद्वान् भी लैटिन भाषा में अपने ग्रंथ लिखते थे, क्योंकि उनका विचार था कि अँग्रेज़ी में इतनी शक्ति नहीं कि वह उन विचारों का भार उठा सके। वे यह भी सोचते थे कि अँग्रेज़ी जैसी भाषा में जो कुछ भी वे लिखेंगे वह थोड़े दिनों में ही मिट जाएगा और लैटिन में लिखी हुई उनकी पुस्तकें अमर रहेंगी। हमने देख लिया कि उनकी बात सही नहीं थी और मुझे पूरा विश्वास है कि आने वाली शताब्दियाँ यह सिद्ध कर देंगी कि भारतीय भाषाओं में भी किसी अन्य भाषा से कम शक्ति नहीं।

हिंदी तथा अन्य भाषाओं को माध्यम बनाने की योजना को कार्यान्वित करने के लिए सभी संस्थाओं को मिलजुल कर काम करना होगा। शिक्षा के माध्यम रूप में भारतीय भाषाओं के प्रयोग से संबंधित आवश्यकताओं के बारे में मैंने अपने दो चार सुझाव व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। मुझे आशा है कि विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक तथा हिंदी के विद्वान् इस समस्या पर अपने विचार प्रकट करेंगे तथा ऐसा हल प्रस्तुत करेंगे जिससे कि इस कार्य को गति मिल सके। ●

भाषा और विज्ञान का पारस्परिक संबंध

भगीरथ मिश्र

भाषा और विज्ञान का अटूट संबंध है।

विज्ञान तथ्य की खोज करता है और भाषा उस तथ्य को अभिव्यक्ति देती है। विज्ञान हमारे मानस को अर्थ और भाषा उसे शब्द प्रदान करती है। विज्ञान बुद्धि और अनुभव का विकास करता है और भाषा विज्ञान को समाजोपयोगी बना कर प्रगतिशील बनाती है। विज्ञान तत्वज्ञान है, भाषा उसकी अभिव्यंजना। यदि मनुष्य को विज्ञान प्राप्त न होता, तो उसे भाषा के विकास की कोई आवश्यकता न थी। विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट अनुभूति ने ही मानव को भाषा जैसी शक्ति प्रदान की है। विज्ञान के विकास में भाषा का महत्वपूर्ण हाथ है, साथ ही भाषा को ठोस शक्ति विज्ञान से ही प्राप्त होती है। विज्ञान द्वारा प्राप्त निश्चित अर्थ को प्रगट करने वाले शब्दों से भाषा समृद्ध होती है। इसलिए भाषा और विज्ञान एक दूसरे की प्रगति में बड़े सहायक हैं।

विश्व का इतिहास देखने से पता चलता है कि जो जाति विज्ञान के क्षेत्र में अधिक उन्नत रही है, उसकी भाषा भी अधिक समृद्ध है। वैज्ञानिक दृष्टि से अनुन्नत देशों और जातियों की भाषा में बहुत ही सीमित शब्दावली रहती है, साथ ही उनका भाव-प्रकाशन मोटे रूप से होता है और वह बारीकी तथा सूक्ष्म अभिव्यंजना नहीं आ सकती जो वैज्ञानिक क्षेत्र में उन्नत समाज की भाषा में रहती है। इससे निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ने वाली जाति की भाषा में भाव-प्रकाशन की क्षमता और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की सामर्थ्य बढ़ती जाती है।

भाषा, शब्द पर आधारित है और शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक नाम और दूसरा आख्यात। नाम किसी वस्तु का परिचयात्मक शब्द-संकेत है और आख्यात उसके व्यापार का द्योतक। एक वस्तु को बताता है और दूसरा उसके

व्यापार और कार्य को। ध्यान से देखने पर हमें विज्ञान की भी इसी प्रकार की दो प्रक्रियाएँ मिलती हैं। प्रथम तथ्य को खोजना और दूसरे उसके कार्य को समझाना। प्रथम प्रक्रिया में वस्तु या तथ्य को निश्चित करने और अन्य पदार्थों के रूप में ग्रहण किये जा सकने के भ्रम को दूर करने के लिए और उनसे पारस्परिक भेद स्पष्ट करने के लिए नामकरण रहता है। नाम ही के द्वारा हम गधे और घोड़े का भेद उनके एक प्रकार के होते हुए भी समझ सकते हैं—नाम के बिना रूपभेद असंभव है। जैसा कि गोस्वामी जी ने कहा है—

देखियहि रूप नाम आधीना।
रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना॥
रूप विशेष नाम बिनु जाने।
करतलगत न परै पहिचाने॥

इस प्रकार रूपभेद के लिए नाम आवश्यक है। द्वितीय प्रक्रिया में उसके विशिष्ट व्यापार समझाए जाते हैं। विज्ञान की ये दोनों ही प्रक्रियाएँ भाषा के भीतर नाम और आख्यात दोनों ही प्रकार के शब्दों का निर्माण करती हैं। इस प्रकार विज्ञान की प्रगति के साथ अपने आप ही भाषा की समृद्धि बढ़ती जाती है, उसकी प्रगति होती रहती है।

कल्पना कीजिए कि किसी समाज में इस प्रकार की वैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं चल रही है, तो निश्चय ही वह समाज नवीन शब्द-भंडार को नहीं प्राप्त कर रहा है। वह केवल परंपरा से चले आते पुरातन शब्द-भंडार से ही अपना कार्य चलाता रहता है और यदि भावुकता अथवा सांस्कृतिक कार्यकलाप के द्वारा भाषा के भंडार को भरने के लिए कुछ प्रगति होती भी है, तो वह नगण्य है। यहाँ हमें एक बात और स्मरण रखनी चाहिए कि कार्य की कमी हम भाषा-संबंधी एक दूसरी प्रक्रिया को नवीन-शब्दागम की प्रक्रिया के रूप में भ्रमवश ग्रहण कर लेते हैं—वह है पुराने शब्दों के रूपों के प्रयोग द्वारा घिस जाने की प्रक्रिया। यह नवीन शब्द नहीं प्रदान करती। जैसे, रश्मि शब्द का घिसकर रस्सी बन गया तो, यह कोई नया शब्द नहीं हुआ, ऐसे ही अग्नि का आग, दधि का दही, पृष्ठ का पीठ, घृत का घी, तंदुल का चावल, निष्कर्मी का निकम्मा आदि शब्द हैं। प्रयोग के द्वारा कभी कभी इस प्रकार के घिसे शब्दों में नए अर्थ को प्रगट करने की शक्ति भी आ जाती है और अपना पूर्वार्थ छूट जाता है। परन्तु यहाँ मेरा तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के शब्दों से नितान्त भिन्न शब्द वे होते हैं जो वैज्ञानिक व्यापार या प्रक्रिया से हमारी भाषा में आते हैं। अतः भाषा के भंडार को भरने में विज्ञान को अपना विशिष्ट महत्त्व देना चाहिए।

इसी प्रसंग में एक बात और समझ लेना आवश्यक है कि शब्दों के घिस कर नवीन शब्द बनने की प्रक्रिया बहुत कुछ अपढ़, अशिक्षित अथवा बच्चों के बीच होती है। इसकी प्रगति शिक्षित नागरिक समाज में उस अवस्था में रुक जाती है जब कि भाषा एक आवश्यक परिपक्वता

प्राप्त कर लेती है, फिर उसके शब्द-भंडार में योग होना बंद हो जाता है। उस अवस्था में विज्ञान के द्वारा ही शब्द-भंडार बढ़ता है। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ी भाषा की शब्दावली आजकल जिस शीघ्रता से वैज्ञानिक प्रगति के द्वारा बढ़ रही है, उतनी अन्य कारणों से नहीं। अतः विज्ञान, भाषा के भंडार की अभिवृद्धि, उसकी प्रत्येक अवस्था में किसी न किसी रूप में करता रहा है।

विज्ञान, भाषा को नवीन संकेत प्रदान करता है। किसी रूप या भाव को प्रगट करने के लिए पूर्ण वाक्य या पूरे शब्द न कह कर हम केवल उसके वर्णात्मक या शब्दात्मक संकेत को ही अर्थग्रहण के लिए पर्याप्त समझते हैं। परंतु उनके इन सांकेतिक अर्थों को भाषा ही सुरक्षित रखती है। यदि आज संस्कृत भाषा न होती तो उसके 'इकोयणचि', 'हयवरट्' 'अकुहविसर्जनी-यानाम् कण्ठः' आदि सूत्रों को कौन समझता ? और इस प्रकार अँग्रेज़ी भाषा में उसकी व्याख्या सुलभ होने पर ही AU सोना, AU अल्मूनियम, CU ताँबा के अर्थ में गृहीत हो सकते हैं तथा U.N.O., W.H.O.H. Bomb आदि संयुक्त राष्ट्रसंघ, विश्व स्वास्थ्य संघ, हाइड्रोजन बम के अर्थ में क्रमशः प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के संकेतों से भाषा में थोड़े में बहुत कहने की शक्ति आती है और आधुनिक युग के व्यस्त जीवन में ऐसी संकेतपूर्ण भाषा अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। सी० आर०, जी० बी० एस्० आदि नाम क्रमशः चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और जार्ज बर्नर्डशा के इसी पद्धति पर बने नाम हैं।

विज्ञान की प्रगति के साथ भाषा वागाडंबर-विहीन भी होती जाती है, क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति धीरे धीरे इतनी निश्चित या सघन हो जाती है कि थोड़े में ही बहुत कहा जा सकता है। एक विज्ञानवेत्ता के लेख या पत्र की भाषा और एक साहित्यिक की भाषा में हमें बहुत कुछ अंतर देखने को मिलता है। वैज्ञानिक के लेख में जहाँ केवल अत्यावश्यक और प्रसंगापेक्षित कथन मात्र होंगे, वहीं साहित्यिक की भाषा में बहुत कुछ उक्तिवैचित्र्य और कथन का चमत्कार होगा। सीधे अर्थमात्र को प्रगट कर देने वाली भाषा साहित्यिक की नहीं हो सकती। भूमिका और प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए वह बहुत कुछ ऐसी बातें भी लिख सकता है जो रोचक तो हों, परन्तु केवल भाव की अभिव्यक्ति के लिए शायद आवश्यक नहीं। इस प्रकार विज्ञान भाषा को एक निश्चित रूप और शैली प्रदान करता है।

विज्ञान के दो पक्ष हैं—एक शुद्ध विज्ञान और दूसरा व्यावहारिक या सामान्य विज्ञान। शुद्ध विज्ञान के भीतर सिद्धान्त निरूपण तथा नियमों और विधियों का स्पष्टीकरण होता है, परन्तु व्यावहारिक विज्ञान के अन्तर्गत पदार्थों में व्याप्त उन सिद्धान्तों और नियमों को हमारे जीवन के उपयोग में लाया जाता

है। प्रथम, नवीन सिद्धान्तों और नियमों की खोज में प्रयत्नशील रहता है और द्वितीय उन नियमों को लोकोपयोगी बनाता है। विज्ञान के ये दोनों ही पक्ष भाषा को नवीन शब्दावली प्रदान करते हैं। शुद्ध विज्ञान केवल विद्वानों द्वारा ग्राह्य और प्रयुक्त शब्दावली प्रदान करता है परन्तु व्यावहारिक विज्ञान निश्चित रूप से नित्यप्रति के प्रयोग में आने वाली भाषा को भी समृद्ध करता है। व्यावहारिक विज्ञान के अनेक शब्द पिछले दो एक वर्षों के भीतर ही हमारी भाषा में भर गए हैं जैसे—अणुबम, टैंक, ट्रेक्टर, जीप, पेनीसिलीन, टेलीविज़न, राडार, इन्फ्लेशन, डी० ए०, बेसिक एज्युकेशन, वोट, वेलिड, सील, आई० ए० एस्०, कंट्रेक्ट, सरप्लस, डेफ़िसिट, बजट, एक्स-रे, प्लास्टिक, क्यू आदि। ये शब्द नए तत्वों, विचारों और पदार्थों से संबंध रखते हैं।

सामाजिक विज्ञान, भाषा को और भी अधिक समृद्ध करते हैं और उनकी व्यावहारिक पारिभाषिक शब्दावली तो इतनी अधिक प्रचलित हो जाती है कि वह जनभाषा का मुख्य अंग बन जाती है। सीधे समाज के उपयोग में आने वाले विज्ञानों की शब्दावली से हमारी हिंदी भाषा तथा उसकी विभिन्न बोलियाँ—अवधी, ब्रज आदि भरी पड़ी हैं। इनमें प्रचलित कुछ विज्ञानों के शब्दों के उदाहरण रोचक होंगे—

जैसे कृषि विज्ञान के शब्द लीजिए—बीज, बुनाई, जुताई, सिंचाई, गुड़ाई, निराई, कटाई, हल, पटेला, माची, नहना, ओठि, खलिहान, बखार, बंजर, गाँजर, परती आदि। उपवन विज्ञान के भी इसी प्रकार के पारिभाषिक शब्द—क्यारी, थाला, राग, वेलि, पौध, व्याड़, छहैल, बारा-मासी, कतिकहा, अगहनी, पूसी, छिटका, रविस, पेड़पत्ता, सूरजमुखी, रातरानी, गुल-दुपहरी, विष्णुकान्ता शब्द ऐसे हैं जिनके अर्थ विज्ञान से संबंध रखते हैं, परन्तु बोलचाल की भाषा के भी वे अंग बन गए हैं। चिटका, शाक भाजी, फूल या फल के पौधों की वह बुवाई है जो यों ही चीज़ों को छिटका कर की जाती है। सूरजमुखी वह फूल है जो सूरज की ओर अभिमुख रहता है। इस प्रकार ये शब्द यद्यपि विज्ञान से संबंध रखते हैं, परन्तु लोकभाषा का भी रूप ग्रहण कर चुके हैं। अनेक औज़ार—जैसे हँसिया, खुरपी, आरा, बसूली, कैंची, कर्घा आदि जो औद्योगिक विज्ञानों से संबंध रखते है वे सर्वजनसुलभ भाषा के अंग हैं। ये इतने प्रचलित हैं कि हम इन्हें विशिष्ट विज्ञानों से संबंधित न कर के बोलचाल की भाषा के ही शब्द मानते हैं। आयुर्वेद या चिकित्सा विज्ञान के सैकड़ों शब्द हमारी भाषा में नित्य प्राप्त होते हैं, परन्तु कभी भी हम विश्लेषण करके यह नहीं विचारते हैं कि ये शब्द विशिष्ट विज्ञानों की देन हैं और इन अर्थपूर्ण शब्दों के लिए हम विज्ञान के ऋणी हैं।

विज्ञान के लिए भाषा के बड़े ही संयत और सतर्क प्रयोग की आवश्यकता रहती है। नित्यप्रति के साधारण वार्तालाप

में तो हम शब्दों का शिथिल प्रयोग भी कर सकते हैं, प्रायः शब्द के किसी पर्याय का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु विज्ञान के क्षेत्र में इस बात की अपेक्षा रहती है कि निश्चित और विशिष्ट अर्थ का द्योतक हो सके। उदाहरण के लिए बोलचाल की भाषा में हम साग-भाजी-तरकारी, सब्ज़ी चाहे जो कुछ कहें, परन्तु वैज्ञानिक क्षेत्र में निश्चित रूप से शाक, पत्ती की तरकारी को, भाजी पके हुए शाक के अतिरिक्त अन्य तरकारी या सालन, तथा सब्ज़ी––हरी तरकारी का अर्थ देगी। गति और चाल चाहे हम समान रूप से एक ही अर्थ में प्रयुक्त करें, परन्तु विज्ञान में निश्चय ही हम गति, स्थानान्तरण की माप या स्पीड के अर्थ में और चाल को उस गति की प्रवृत्ति और प्रकृति के अर्थ में ग्रहण करते हैं। पृथ्वी की गति एक घंटे में अपने चारों ओर एक हज़ार मील के लगभग है और उसकी चाल सीधी न होकर अंडाकार चक्कर के रूप में है, हम ऐसा कहेंगे। इस प्रकार विज्ञान का कार्य शब्द को निश्चित अर्थ में प्रयुक्त करना है। शब्द की लक्षणा और व्यंजना शक्तियाँ विज्ञान के क्षेत्र में उपयोगी नहीं, उनकी ज्योति साहित्यिक क्षेत्र को ही ज्योतित करती रहती है।

वैज्ञानिक विकास की प्रक्रिया में भाषा अपने विविध अंगों और रूपों से योग देती है और इस प्रकार निश्चित अर्थ देने वाले वैज्ञानिक शब्द बनते हैं, भाषा के मूल धातु में अर्थ का बीज छिपा रहता है और जब विज्ञान एक पदार्थ से उसके गुणों और व्यापारों का अलग-अलग द्योतन कराना चाहता है, भाषा अपनी मूलधातु के साथ प्रस्तुत होकर, प्रत्यय और उपसर्गों के द्वारा उनको प्रगट करने के लिए तत्पर हो जाती है। उदाहरण के लिए बोलने से संबंधित विभिन्न शब्द 'वच्' धातु में प्रत्यय और उपसर्ग लगाकर बनाए जा सकते हैं। प्रत्यय लगाने से वचन, वाचा, वाचक, वाचन, वाचनिक, वाचाल, वाची, वाच्य तथा उपसर्ग लगाने से प्रवचन, अनुवचन, निर्वचन, प्रतिवचन आदि शब्द बन जाते हैं। इस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में उपसर्गों का यह संयोग बड़े काम का है। इतना ही नहीं दोनों के संपर्क से मनुष्य समाज की प्रगति सम्भव है। वैज्ञानिक भाषा, भाषा का एक रूप है, तो भाषा-विज्ञान विज्ञान का एक भेद। इस प्रकार दोनों ही बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

इस समस्त विश्लेषण और विवेचन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य समाज की प्रगति तभी संभव है जब भाषा और विज्ञान दोनों एक दूसरे के विकास में पूर्ण योग दें। आज के चेतना और ज्ञानसंपन्न मानव के लिए भाषा के विज्ञान और विज्ञान की भाषा दोनों ही की आवश्यकता है। फलतः भाषा-विज्ञान और वैज्ञानिक भाषा दोनों ही हमारे बीच महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। भाषा की प्रगति विज्ञान के लिए और विज्ञान की प्रगति भाषा के लिए एक वरदान है और दोनों ही की समवेत समुन्नति मानव समाज के शान्तिमय सुखी जीवन के लिए सबसे बड़ी निधि है।●

हिंदी का आत्मालोचन

—मुनि नथमल

हम तीन अक्षरों के विश्व में जी रहे हैं। एक लब्ध्यक्षर है जो हमारी चेतना का परिणाम है। जिससे हमें पूर्ण ज्ञान होता है। एक व्यंजनाक्षर है, जो जीव और पुद्गल का संयुक्त परिणाम है। यही हमारा उच्चारणात्मक वर्ण है। एक संज्ञाक्षर है। भाषा तभी होती है, जब वह भाष्यभाषा होती है। भौषिता भाषा नहीं होती। वह अभाषा होती है। यही हमारा वर्ण-संस्थान है, लिपि है। पहले वर्ण का विज्ञान होता है, फिर उसका उच्चारण और फिर उसका अंकन। किसी भी भाषा के लिए ये तीन पर्याप्तियाँ अपेक्षित हैं। हिंदी एक भाषा है। जो भाषा है वह अपनी प्रकृति का अपवाद कैसे हो सकती है? हिंदी का अपना अंकन है, उच्चारण है और ज्ञान भी। इस अपेक्षा से वह पर्याप्त है किंतु उसकी पर्याप्तियाँ सद्यस्क हैं, इसलिए वह अपर्याप्त भी है। जैसे क्रियमाण को कृत कहा जा सकता है, वैसे कृत को भी क्रियमाण कहा जा सकता है। हिंदी आज उदीयमान है। इसलिए वह जितनी बहुचर्चित है, उतनी अर्चित नहीं। उसे अभी विकास करना है। निर्माण और विकास, फिर निर्माण और विकास—इस गति से जो चलता है, वही विकास का वरण कर सकता है। हिंदी के निर्माण का उपादान बहुलमात्रा में काव्य-साहित्य है। उसके विकास का परिणाम भी बहुलमात्रा में काव्य-साहित्य है। काव्य-साहित्य भाषा के निर्माण की सुदृढ़ ईंट है, पर वह एक है। काव्य-साहित्य भाषा के विकास की सफल परिणति है, पर वह अपूर्ण है। निर्माण तभी सम्भव है जब ईंटें अनेक हों। विकास तभी आकार पाता है, जब परिणतियाँ विविध हों। निर्माण और विकास का एक चक्र पूर्ण हुआ है, अब दूसरे चक्र में फिर वही क्रम अपेक्षित है। हिंदी इसीलिए कहीं-कहीं उपेक्षित होती है कि वह अपर्याप्त है। उसके अंगोपांग अपूर्ण हैं। ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की अभिव्यक्ति के लिए उसमें शब्द-सामग्री का चयन अविकल नहीं है। वह विरोध उसकी गति का सूचक है। कुछ लोग इस सिद्धि के प्रयत्न में हैं कि वह सांगोपांग है। यह समर्थन गतिसूचक

नहीं है। यह मानकर चलना चाहिए कि उसमें सांगोपांग विकास की योग्यता है। उपादान विकल नहीं है पर अभी निमित्तों का साकल्य भी नहीं है। इन चालीस-पचास वर्षों में हिंदी का जो विकास हुआ है, वह बहुमुखी हुआ है, शतमुखी नहीं। जो शोध प्रबन्ध लिखे गए हैं वे अधिकांशतः काव्य-साहित्य की परिधि में लिखे गए हैं। दर्शन, धर्म, संस्कृति व इतिहास के विषय में लिखे गए हैं। एक विषय के परिपार्श्व में अनेक लिखे गए हैं। अब जब शब्द-संपदा की अभिवृद्धि का प्रश्न प्रधान बना है तब शब्द-चयन का कार्य आगे बढ़ा है। इस दिशा में जो परिवर्तन हुआ है, वह हमारी मान्यता में अपूर्ण है।

संकलनकर्ताओं ने प्राचीन साहित्य का मन्थन किया है, पर यथेष्ट नहीं। जैन साहित्य का स्पर्श लगभग नहीं किया गया है। यदि ऐसा किया जाता तो वैज्ञानिक शब्द-संग्रह की बहुत सारी समस्याएँ सहज ही समाहित हो जातीं। दूसरी अपूर्णता इस दिशा में है कि हिंदी में न कोई निरुक्त-कार है और न कोई निरुक्त की प्रक्रिया ही। इनके अभाव में यौगिक शब्दों का ऐसा कलेवर बना है, जो बहुत बार उपहास की सामग्री बन जाता है। नव-निर्माण ही जब करना है तो केवल यौगिक शब्दों की रचना क्यों? क्या आज शब्दों में व्युत्पन्न होने की क्षमता नहीं है जब कि उनकी धातुओं में व्युत्पादन की बीज-शक्ति विद्यमान है? हिंदी प्राकृत परिवार का विकास है। उसके विकास में अनेक भाषाओं का योगदान है। फिर उसकी समृद्धि कैसे चिन्त्य हो सकती है? हिन्दुस्तान की अधिकांश भाषाओं का स्रोत वही है, जो हिंदी का है। बँगाली भाषा का मूल अपभ्रंश है। मराठी, गुजराती आदि भी प्राकृत-मूलक हैं। पंजाबी भी इसी कोटि में आती है। राजस्थानी को अभी भाषा होने का श्रेय नहीं मिला है। यह उसके सौभाग्य की कमी है अन्यथा वह भी इसी श्रेणी में होती। ये सभी छोटी-बड़ी बहिनें हैं। इनका अपना अधिकार क्षेत्र है, अपनी अपनी मर्यादा है। हिन्दुस्तान एक प्रान्त नहीं है, वह अनेक प्रान्तों का समुदाय है। इस एकता में जो अनेकता है वह उपयोगिता है। उसकी फल-परिणति उसी स्थिति में सम्भव है, जबकि अनेकता में एकता हो। उस एकसूत्रता का सर्वाधिक प्राथमिकता पाने वाला माध्यम है एक भाषा। वह आसन हिंदी को मिला है।

हिंदी अब केवल बिहार, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों की भाषा नहीं है, वह समूचे राष्ट्र की भाषा है। उसका विकास भी राष्ट्रीय स्तर पर हो रहा है। मानना यह चाहिए कि सब के सहयोग से हो रहा है। हिंदी भाषियों का इस क्षेत्र में अधिक दायित्व नहीं है और अहिंदी भाषियों का कम नहीं। सबका सम है। इस स्थिति में कोई एक विरोध करे और कोई एक समर्थन—यह अविवेकपूर्ण स्थिति है। विवेक समरेखा की स्थिति में है। हिंदी विकासमती है, इसलिए

वर्तमान हिंदीभाषी विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं से इतना लें कि हिंदी की समृद्धि बढ़े और उनसे उसकी दूरी घटे। सबको प्रतीति होने लगे कि सबके सह-प्रयत्न से सर्व-सम्मत एक भाषा का निर्माण हो रहा है, विकास हो रहा है। हिंदीभाषियों को एक बार कठिनाई की अनुभूति होगी । अहिंदीभाषियों की भाँति उन्हें भी अपने भाषाज्ञान का परिमार्जन करना होगा । परिणामतः कठिनाई की समस्थिति में सब समयोगी होंगे ।

आज समूचे राष्ट्र के सामने ये प्रश्न पुनश्चिन्त्य हैं—

1. हिंदी का स्वरूप क्या है ? क्या होना चाहिए ?
2. उसका स्वामित्व कहाँ है? कहाँ और होना चाहिए ?
3. उसके अस्तित्व और विकास के साधन कौन कौन से हैं ?
4. उसका क्षेत्र-विस्तार कितना है ?
5. उसके प्रकार कितने हैं ?
6. उसकी सत्ता कब से है ?

1. भाषा की स्वरूप-निश्चिति व्याकरण से नहीं होती । उसका प्रमुख साधन है, प्रयुक्ति । आज तक जो श्रेष्ठ कवि हुए हैं, उन्होंने जो प्रयोग किए हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए हिंदी के स्वरूप का पुनर्विनिश्चय किया जा सकता है । अन्यान्य समानधर्मा भाषाओं के विशिष्ट अर्थ-सूचक प्रयोगों को समन्वित करना भी उसके स्वरूप विनिश्चिति का एक महत्व-पूर्ण कार्य होगा ।

2. हिंदी का स्वामित्व अभी बहुत छोटी और अल्प-विषयक साहित्य-राशि पर है । क्या इसका विस्तार नहीं किया जा सकता ? आधुनिक साहित्य के द्वारा उसका स्वामित्व बढ़ रहा है। प्राचीन साहित्य के द्वारा वह विस्तृत हो सकता है । थोड़ी उदारता की अपेक्षा है । हिंदी की प्राचीनधारा में अवधी, ब्रज, राजस्थानी आदि के अनेक ग्रन्थ सम्मिलित किए गए हैं, और कुछ नहीं, इसका हेतु अस्पष्ट है । इस विभाजन के पीछे कोई प्रबल युक्ति लभ्य नहीं है। इन सभी भाषाओं में हिंदी के बीज मान लिए जाएँ और उनकी विपुल साहित्य-राशि को प्राचीन हिंदी साहित्य की मान्यता दी जाए तो उसकी परिधि बहुत विशाल हो जाती है और उसके आदिकालीन व मध्यकालीन इतिहास की कायापलट हो जाती है। हिंदी के गद्य की श्रृंखला बहुत दूर तक चली जाती है।

3. भाषा का अस्तित्व कालक्रम से प्राप्त होता है। काल परिणति के साथ-साथ भाषा की परिणति होती है । उसका एक ही स्रोत विभिन्न देश-काल व परिस्थितियों का योग पा विविध-रूपी बन जाता है। विकास के निमित्त बनते हैं—मनुष्यों के कर्म और मानस । मानस विकसित होता है, कर्म विकसित होते हैं। भाषा विकास पा लेती है। पशुओं की भाषा इसीलिए सीमित है कि उनकी चिन्ता सीमित है, प्रवृत्तियाँ सीमित हैं । आज मनोविज्ञान और पौद्गलिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं

का विस्तार असीम होता चला जा रहा है, इसलिए प्रत्येक विकासशील भाषा को अपने सीमा बन्धन तोड़ने होंगे। साधनों का विकास करना होगा। सर्वोत्तम साधन है निरुक्त-प्रक्रिया का स्वीकार। उस स्वीकृति में अनेक समस्याओं का समाधान है।

4. यह प्रश्न दूसरे प्रश्न से संबंधित है। स्वामित्व-विस्तार के साथ-साथ क्षेत्र-विस्तार होता है। केवल क्षेत्र-विस्तार से किसी भाषा के प्रति ममता की पुष्टि नहीं होती। वह स्वामित्व के साथ ही होती है।

5. प्रक्रम एक तो कालकृत होता है और दूसरा रूपापादित। हिंदी के कालकृत प्रकार हैं। उसके रूपापादित प्रकार नहीं हैं। एकसूत्रता के लिए एकरूपता आवश्यक है। फिर भी रूपापादित प्रकार सर्वथा अनावश्यक नहीं है कि क्षेत्र-परिवर्तन के साथ-साथ मूल स्वरूप में अबाधक रूप परिवर्तन की स्वतंत्रता लब्ध हो। उच्चारण-भेद जैसे क्षेत्रकृत होता है, वैसे ही रुचि-भेद भी क्षेत्रकृत होता है। रुचि के अनुसार शब्दचयन की स्वतंत्रता हो तो भाषा की अभिव्यक्ति सहज क्षमता प्राप्त कर लेती है। संस्कृत में रूप-भेद नहीं हुआ, यह नहीं माना जा सकता। जैनाचार्यों ने मध्यकाल में एक नई परंपरा के जो बीज बोए, उन्हें यदि अंकुरित होने का पूरा अवसर मिलता और शेष संस्कृतज्ञ भी उसके प्रस्फुटन में अपना पूरा योग देते तो संस्कृत भाषा निश्चीक नहीं होती, मृत नहीं होती। चूर्णियों की भाषा संस्कृत और प्राकृत मिश्रित है। उसमें व्यंजना बहुत प्रबल हुई है। संस्कृत की शब्द-सम्पदा की वृद्धि और नई-नई भावनाओं के संकलन का यह एक बहुग्राही प्रकार था। किंतु इस ओर ध्यान नहीं दिया गया, परिणाम वही हुआ, जो होना था।

6. सत्ता का प्रश्न विभज्य है। भाषा जब नया रूप लेती है तब उसके उपादानों की शोध होती है। बँगाली का अस्तित्व दसवीं शताब्दी में आया तो हिंदी का अस्तित्व भी एक दो शताब्दी के बाद उदयमान बना। उस समय अपभ्रंश करवट ले रही थी। उसकी प्रसुप्ति में नई-नई भाषाएँ जागृति पा रही थीं। इसी विषय की पुष्टि करने वाले अपभ्रंश और हिंदी के संक्रांतिकालीन ग्रन्थ हमारी गवेषणा के विषय हैं।

जो शोध-प्रबंध लिखे जा रहे हैं उनकी मौलिकता का मानदण्ड और अधिक प्रलम्ब हो, यह भी अभिलषणीय है। जो नव-निर्माण हो रहा है वह केवल अतीत की छाया-मात्र न हो, मौलिक हो, यह भी उतना ही आवश्यक है। शोध और निर्माण, ये दोनों आवश्यक कार्य हैं। आज हिंदी को एक-दो पाणिनि, एक-दो हेमचन्द्र, एक-दो धर्मकीर्ति और अकलंक तथा एक-दो राइसडेविड दम्पती की अपेक्षा है।

हमारी भाषा की समस्याएँ

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

हमारे देश का बहुजन समाज प्राचीनता, रूढ़ि और परंपरा का पूजक है। जन प्रकृति की छाया भाषा पर भी पड़नी स्वाभाविक है। भाषा प्रयत्नपूर्वक बनाई जाती है, और गढ़ी जाती है। गंगा के पत्थरों के समान शब्द जैसे चाहें वैसे बनने नहीं दिए जा सकते। किंतु उनको क्या रूप दिया जाए, इसका निश्चय न तो आज से तीन हज़ार साल पहले के व्यक्ति ही कर सकते हैं और न उनके बनाए नियम ही कर सकते हैं। इसका निर्णय आज की जनता करेगी और आधुनिक काल के नियम करेंगे।

पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ने जो लिखा है, अपने समय की आवश्यकतानुसार लिखा है। पाणिनि का संगृहीत धातु-पाठ अन्तिम नहीं है और न उणादि कोश ही शब्द सीमा को सूचित करता है। उसके बाद अन्य अनेक क्रियाएँ आई हैं, नए शब्द आए हैं, अतः नया व्याकरण बनाने वालों को अमरनाथ से रामेश्वरम् और डिब्रूगढ़ से जैसलमेर तक की यात्रा कर वहाँ प्रचलित शब्दों का पता लगा कर उसे तैयार करना होगा। पाणिनि आज के युग के शब्दों का भाग्य-विधाता नहीं हो सकता। वह कात्यायन के समय में ही विवाद का विषय बन गया था, अन्यथा वार्तिकों को रचने की आवश्यकता न पड़ती। कात्यायन के वार्तिक पुष्यमित्र के समय निरुपयोगी हो गए और पतंजलि को महाभाष्य रचना पड़ा। इसके बाद भारतीय बुद्धि का विकास रुका नहीं। अतः पीछे मुड़ कर देखना और इस विचार में समय बरबाद करना कि अन्तरराष्ट्रीय ठीक है या अन्तर्राष्ट्रीय या अन्ताराष्ट्रीय, उचित नहीं। 'रोरि' सूत्र अपने समय के लिए था, आज के लिए नहीं लिखा गया था।

इस विवाद को उठाने वाले एक बात भूल जाते हैं कि हिंदी एक केन्द्रीय भाषा है। इस भाषा में न केवल हिंदी की उपभाषाओं—पंजाबी, बांगरू, खड़ी बोली, ब्रज, भोजपुरी, बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मगही, मैथिली, डिंगल—के ही शब्द आएँगे, अपितु गुजराती, मराठी, बँगला, असमिया, तेलुगु, तमिल, मलयालम और कन्नड के भी शब्द, वाक्यांश, मुहावरे और पद के पद आएँगे और आए हैं। इस देश की केन्द्रीय भाषा हिंदी के भविष्य का निर्णय गंगा यमुना का दोआबा ही नहीं करेगा, बल्कि जेहलम से कावेरी नदियों के बीच बोली जाने वाली सब बोलियों द्वारा होगा। इसमें छोटा नागपुर और बस्तर, पंचमहाल, कोंकण पूर्वी तट के आदिवासियों की बोलियों के शब्द आएँगे। वे जब हिंदी लिखेंगे और बोलेगें, तो उनके शब्द भी आएँगे, जैसे स्व० श्री पराड़कर जी के साथ मराठी का 'चालू' शब्द हिंदी में बेखटके चला आया। इसलिए यह आग्रह करना कि हम जो लिखते हैं जिस रूप में लिखते हैं वही ठीक है, पाणिनि व्याकरण भी यही कहता है, ठीक नहीं। जब पाणिनि तक ने अपने सूत्रों में विकल्प के लिए स्थान रखा, तब आज उनका शिष्य विकल्प के लिए स्थान ही न रखे, क्या यह उचित है? एक समय था जब 'धर्म' हिंदी में 'धर्म्म' रूप में लिखा जाता था, किंतु आज इस रूप में कोई नहीं लिखता। तो क्या आज के लोग ग़लत लिखते हैं, या पहले के लोग अशुद्ध लिखते थे? पहले 'आवश्यक्ता' लिखा जाता था, किंतु आज आवश्यकता लिखा जाता है। संयुक्त अक्षरों को कम से कम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। 'टाइप' की सुविधा को ऊँचा स्थान दिया जा रहा है। यंत्र की सुविधा का लाभ उठाने के लोभ से किसी ने इस परिवर्तन की ओर अँगुली भी नहीं उठाई। ऋ और लृ हिंदी से बिदा कर दिए गए। यह विकासशील और सजीव भाषा का एक लक्षण है।

अँग्रेज़ी के दो भेद तो स्पष्ट हैं। अमेरिकी अँग्रेज़ी में शब्दों के हिज्जे (अक्षर-विन्यास) इंग्लैण्ड की अँग्रेज़ी से भिन्न हैं। किंतु इसी कारण अँग्रेज़ी की प्रामाणिकता और उसके प्रतिमान में कोई अन्तर नहीं आया। ऑक्सफ़ोर्ड विश्व-विद्यालय की छापे की अँग्रेज़ी ब्रिटिश शासन के साथ-साथ अधिक जगह चली। किंतु इसी कारण अमेरिकी अँग्रेज़ी अमान्य और निन्दित नहीं हो गई। यही बात हिंदी के साथ है। पैंतालीस करोड़ लोगों की जो भाषा बनने वाली है, उसका प्रत्येक शब्द हर व्यक्ति एक ही रूप में लिखे, जैसा कि हम कहते हैं, यह आग्रह करना क्या उचित है?

भास तक के नाटकों में प्राकृत को स्थान दिया गया है। हिंदी संस्कृत की दुहिता नहीं है, वह एक विकास का परिणाम है। डॉ० ताराचन्द की यह बात ठीक है कि आज की हिंदी—भारतेन्दु और दयानन्द की हिंदी—सौ, सवा सौ साल से अधिक पुरानी नहीं है। किंतु इसकी अन्तर्निहित शक्ति ने विरोध होने पर भी,

इसको इस देश की केन्द्रीय भाषा बना दिया और मगध के लोग तो अपनी मगही तक को भी भूल गए, जिसकी कि अपनी पृथक् लिपि है, और जिसका विस्तृत साहित्य है। उनके त्याग की दुन्दुभी न बजाई जाए, किंतु यदि वे दही और हाथी शब्द को दिल्ली के समान पुल्लिग न लिखें, तो इसी कारण उनकी भाषा को दूषित नहीं कहना चाहिए क्योंकि संस्कृत के समान मगही और बँगला में भी कर्त्ता का लिंग बदल जाने से क्रिया नहीं बदलती। कुछ शब्दों को उभयलिंगी मानने से भाषा की श्री को क्षति नहीं पहुँचेगी।

लाहौर सम्मेलन के अध्यक्ष ने नैतिक, राजनैतिक आदि शब्दों को अशुद्ध बताया था और आज जो लोग थोड़ी बहुत संस्कृत पढ़ गए हैं, वे भी उनको अशुद्ध बताते हैं। पाणिनि की दुहाई देने में वे कुछ उठा नहीं रखते। किंतु इन सब की दृष्टि संकीर्ण है। ये लोग भूल गए कि बँगला में नैतिक ही लिखा जाता है। मराठी में एक पत्र का नाम ही है, 'अर्थनैतिक।' इन भाषाओं के अनुवादकों ने अनुवाद करते हुए इन शब्दों को हिंदी में ज्यों का त्यों ले लिया। ये बने–बनाए, गढ़े–गढ़ाए शब्द हिंदी में आए। क्योंकि संस्कृत के व्याकरण से इस रूप की सिद्धि नहीं होती, इसी कारण इसको ग़लत बताना, संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है, और हिंदी के क्षेत्र की व्यापकता को सीमित करना है, और उन लोगों के प्रति भी अश्रद्धा प्रकट करना है जिन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की उदात्त भावना से प्रेरित इन शब्दों को इसी रूप में अपनाया था। पाणिनि के डण्डे को बार-बार उठाना और उसका अनुशासन चलाना हिंदी के विकास को रोक देगा और उसको जड़ बना देगा। भाषा को प्रवाहमय ही रहने देना चाहिए। जिस भाषा से शब्द लिया जाए, वह उसी रूप में बोला और लिखा जाए जिस रूप में वह अपनी भाषा में लिखा जाता और बोला जाता है यह आग्रह करना उस शब्द के विजातीय रूप को बनाए रखना है और इस बात का ढिंढोरा पीटना है कि यह शब्द हमारा नहीं है, परदेशी है, विजातीय है। यदि 'सुपरिण्टेण्डेण्ट "सुपरटण्डंट" लिखा जाए जैसा कि रोहतक के लोग बोलते हैं, तो हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। गंगोत्री से चला पत्थर हरिद्वार तक पहुँचते-पहुँचते न जाने कितने रूप धारण करता है यही स्थिति शब्दों की है। 'फ़िशप्लेट' का व्यवहार करने वालों ने एक शब्द गढ़ा हुआ है। उसको छोड़ कर धातु-पाठ की सहायता से नया शब्द गढ़ने में शक्ति-व्यय करना दूरदर्शिता का सूचक नहीं।

शब्दों के अनुशासन के लिए व्याकरण अवश्य चाहिए। किंतु हिंदी के लिए हिंदी का व्याकरण चाहिए, संस्कृत का नहीं। दूसरी बात यह कि भाषा व्याकरण का अनुसरण नहीं करती, व्याकरण भाषा का अनुसरण करता है। पाणिनि ने इस सत्य को समझा और प्रत्येक जनपद में

प्रचलित शब्दों को सिद्ध करने के लिए सूत्रों की रचना की और आवश्यकतानुसार विकल्प भी रखे। हिंदी के व्याकरणाचार्य को संस्कृत के धातुपाठ का मोह छोड़ देना चाहिए। यह आग्रह भी त्याग देना चाहिए कि सब शब्दों की सिद्धि धातुपाठ में संगृहीत शब्दों से ही हो सकती है। उसको पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी की उपभाषाओं के अतिरिक्त द्रविड़ भाषाओं के व्याकरणों को ध्यान में रख कर इस देश की केन्द्रीय भाषा का व्याकरण तैयार करना चाहिए, किसी एक प्रान्त और जनपद का विचार करके नहीं। पतंजलि के ही समय में 'शव' शब्द दक्षिण में 'गतिकर्म' के अर्थ में व्यवहृत होता था। आज भी उत्तर भारत के अनेक शब्द दक्षिण और सीलोन में व्यवहृत होते हैं। किंतु उनके अर्थ इधर प्रचलित अर्थ से भिन्न हैं। अतः हमारा हिंदी का व्याकरण ऐसा होना चाहिए, जो न केवल उत्तर भारत के प्रदेशों की सेवा करे, बल्कि दक्षिण भारत की भी समान रूप से सेवा करे।

कचहरियों में जब हिंदी जारी हुई तो एक कचहरियों की हिंदी अलग ही हो गई। उसमें निवासी की जगह 'साकिन' ही रहा। पिता की जगह 'वल्द' ही रहा और हम उसको सहन करते रहे, क्योंकि लाचार थे। किंतु आज एक नई हिंदी चल पड़ी है। यह अँग्रेज़ी का रूपान्तर है और कोशीय हिंदी है। प्रशासन के लिए अँग्रेज़ी में जो शब्द हैं, उन्हीं का अर्थवाचक शब्द हिंदी में भी होना चाहिए, इस आग्रह ने स्वतंत्र रूप से सोचने की आवश्यकता नहीं रखी। ब्रिटिश शासन-काल में चिट्ठी-पत्री का जो रूप था, उसको कायम रखने के आग्रह ने भी कठिनाई उत्पन्न कर दी है। फलतः एक नई हिंदी का जन्म हो रहा है, जो चीनी लड़कियों के पैरों के समान है, जो बचपन से ही लोहे के जूते में बन्द रहते हैं। इस "अधिशासी, अभियन्ता" वाली हिंदी को बिना कोश के समझना कठिन है। यह भूत के प्रति हमारे मोह को ही सूचित करता है।

हर शब्द का अपना इतिहास है। उसके साथ विशिष्ट घटना जुड़ी रहती है। "ओलम्पिक" को लीजिए। "मैराथान" को ही ले लीजिए। ईरानी सेना का ध्यान बँटाने के लिए एथेंस की सेना की एक टुकड़ी जर्कसीज़ को विशाल सेना के साथ मैराथान की ओर खींच ले गई। यह ग्रीक इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है, और मैराथान के नाम से ओलम्पिक में एक खेल प्रचलित हो गया क्योंकि यह शक्ति की परीक्षा करने वाला खेल है। 'थर्मापाली' के शब्द के साथ भी एक इतिहास है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने बारडोली को भारत की थर्मापाली बता कर सदा के लिए हिंदी का बना दिया है। इसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। यही बात है, 'आर्डिनेंस' की। इस शब्द के साथ हमारे सामने लॉर्ड इरविन के जारी किए गए बारह आर्डिनेंस आ जाते हैं। लॉर्ड विलिंगडन की भी याद आती है,

जिसने 1932 में इकट्ठे ही एक दर्जन आर्डिनेंस जारी किए थे, और कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के स्तीफ़ा देने के बाद जब देश में आर्डिनेंस राज्य शुरू हुआ, और जो 1955 तक इस देश में रहा, वह चित्र सामने आ जाता है। किंतु स्वाधीन भारत की हिंदी से इस ऐतिहासिक शब्द का ही बहिष्कार कर दिया गया है और 'अध्यादेश' चलाया जा रहा है, जिसके पीछे न कोई इतिहास है, और न भारत राष्ट्र की प्रतिरोधशक्ति की कहानी है क्योंकि 'आर्डिनेंस' विदेशी शब्द है इसीलिए स्वदेशी शब्द रखना मध्ययुगी मनोवृत्ति है जो हमारे हाज़मे की ख़राबी को सूचित करती है। एक बार बड़े आग्रह से स्व० श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा था, कि 'खाक़ हो गया', 'ख़ाक में मिल गया' में जो ज़ोर है, जो भाव है, वह क्षार हो गया' 'राख हो गया' में नहीं है, अतः उनका ख़ाक़ हो गया, लिखना ठीक ही है। यह है दूरदर्शी हिंदी-निर्माता की व्यापक दृष्टि जिसका आज अभाव दिखाई दे रहा है। क्या 'गुफ़्तगू' 'सिफ़ारिश' 'ग़नीमत' जैसे शब्द बहिष्कार करने योग्य हैं? क्या इनका बहिष्कार करना संभव है?

हिंदी को कठिन कैसे बनाया जाता है, इसका एक उदाहरण लीजिए। हर एक व्यक्ति पुलिस और सिपाही बोलता है। थाना भी हर एक जानता है। लेकिन पुलिस स्टेशन के लिए हम लिखेंगे 'आरक्षित आवासगृह'। इस प्रकार के शब्दों का निर्माण सूचित करता है कि हम वर्ग-विहीन समाज की रचना में विश्वास नहीं करते और हम ऐसे शब्द गढ़ कर एक विशेष वर्ग को समाज में बनाए रखना चाहते हैं। इससे भाषा जन-भाषा नहीं रहती। दैनिक जीवन और लोक-जीवन के व्यवहार में आए हुए शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालना क्या उचित है,? 'म्युनिसिपैलिटियों' और 'कार्पोरेशनों' का बहिष्कार कर हमने क्या हिंदी का हित किया? स्वराज पार्टी ने जब म्युनिसिपैलिटियों पर कब्जा किया था, और जब देशबन्धु दास ने कलकत्ता कार्पोरेशन की लड़ाई लड़ी थी और सर फ़िरोज़शाह मेहता ने इस शती के प्रारम्भ में बम्बई के गवर्नर को अपनी बात मानने के लिए बाध्य किया था और एक नया इतिहास लिखा था, उस सब पर हमने स्याही फेर दी। ब्रिटिश शासकों की प्रतिमाएँ तो हमने रहने दीं, उनके नाम पर बनी सड़कें रहने दीं, किंतु उन शब्दों का बहिष्कार कर दिया, जो जनता के तेज को प्रकट करते थे। यह भाषा-निर्माण का तरीका नहीं कि आए हुए और प्रचलित शब्दों का बहिष्कार कर दिया जाए। कमीज़, कोट, बटन, कुर्सी, मेज़ पुर्तगीज़ शब्द हैं, यह आज कितने लोग जानते हैं? फिर जिनके साथ इतिहास जुड़ा हुआ है, जो संघर्ष को बताते हैं और जनता के उद्दीप्त तेज को प्रकट करते हैं, उनका त्याग तो और भी अधिक आपत्तिजनक है और यह इतिहास को विस्मृति की क़ब्र में सुलाना है। [शेष पृष्ठ 46 पर]

हिंदी : अपेक्षा और संभावनाएँ

धनंजय वर्मा

राष्ट्र-भाषा पद पर हिंदी की प्रतिष्ठा के साथ ही उसकी अपेक्षाएँ बढ़ गई हैं। यह प्रतिष्ठा कुछ संभावनाओं पर आधारित है। उसकी अपेक्षाएँ और उसके विषय में अभिव्यक्त विचार कई समस्याओं के प्रतीक हैं। यह सही है कि राष्ट्रीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति राष्ट्रभाषा से होती है; लेकिन प्रश्न यह है कि राष्ट्रभाषा क्या और कैसी हो? विशेषतया इतने विशाल और विभिन्न भाषा-भाषी देश में जहाँ मान्यता प्राप्त भाषाएँ चौदह हैं, उन सब भाषाओं का विकास और परिष्कार तथा साहित्य-समृद्धि किसी से कम नहीं है, एक राष्ट्रीय भाषा की समस्या बड़ी जटिल है। राष्ट्रभाषा पद पर हिंदी के प्रतिष्ठित होने के कुछ कारण हैं। इन्हें सस्ते प्रचार, वर्गीय आभिजात्य या एक पृथक उच्च भावग्रस्त लोगों की दुर्भावना से अलग कर देखा जा सकता है। हिंदी भाषा का लचीलापन, उसके शिक्षण की सहजता, उसकी ध्वनियों और लिपि सरलता की वैज्ञानिकता एवं अन्ततः देश के अपेक्षाकृत एक बड़े भाग मध्यदेश[1] का उसका क्षेत्र उसकी इस प्रतिष्ठा के कारण हैं। प्रतिष्ठा तो हो चुकी लेकिन उसके साथ ही साथ समस्याओं की विशाल राशि भी आ गई है और मैं समझता हूँ, कि यह अधिकांश हिंदी-प्रेमियों ने ही उत्पन्न की हैं। कोई भी वस्तु चाहे वह कितनी ही भली क्यों न हो जब एक स्वतंत्र नागरिक पर बलपूर्वक आरोपित की जाती है तो उसका विरोध स्वाभाविक है। हिंदी को भी प्रचारित करने में उसके प्रेमियों ने अहिंदी-भाषियों का विरोध और अरुचि प्राप्त की। इसका कारण एक व्यर्थ की आभिजात्य भावना है, और उस भावना की रक्षणवृत्ति से प्रेरित

---

1. इसका विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य-पर्वत मालाओं तक, और पश्चिम में वर्तमान सरहिन्द (वास्तव में सहरिन्द) से पूर्व में गंगा-यमुना के संगम तक था।

ग्रियर्सन—भारत का भाषा-सर्वेक्षण (खंड 1, भाग 1, पृ० 216) (अनुवादः उदयनारायण तिवारी, 1959)

कार्यकलाप हैं। यह बात सही है कि भाषा कभी आरोपित नहीं की जा सकती, लादी नहीं जा सकती (आरोपित की हुई भाषाएँ—अँग्रेज़ी—अपनी नहीं वन सकती), उसका निर्माण नहीं हो सकता क्योंकि दोनों में एक कृत्रिमता है और स्वउत्स विकास का अभाव है। हवा को किसी भी प्रचार की आवश्यकता नहीं है, प्रकाश को भी नहीं। हमारे अस्तित्व के लिए भाषा भी आज उतनी ही आवश्यक हो गई है। हाँ, हवा, प्रकाश और भाषा को भी हम अनुकूलित कर लेते हैं—वही हमें करना है। हिंदी भाषा हमारी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुकूल कैसी हो, यही प्रश्न है।

हिंदी की वर्तमान स्थिति का परिचय उसके विषय में अभिव्यक्त और प्रचलित विचारों से प्राप्त किया जा सकता है और अपने तात्कालिक उद्देश्य के लिए मैं किसी भाषा-वैज्ञानिक शोध की अपेक्षा उसी मार्ग का अवलम्बन करना चाहूँगा। कहा जाता है कि एक प्रान्तीय भाषा हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद अनायास ही दे दिया गया है जबकि स्वयं उसमें आत्मविरोध है। उसकी बोलचाल और लिखित भाषा में पार्थक्य है। अन्य आर्य भाषाओं—मराठी, बँगला आदि की तुलना में उसका स्थान, साहित्य या विकास की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ नहीं है। द्राविड़ भाषा परिवार की भाषाओं तमिल, मलयालम, तेलुगु से उसका सामंजस्य कठिन है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी बहुत ही अविकसित भाषा है और अँग्रेज़ी की तुलना में उसकी अभिव्यंजना शक्ति कमज़ोर है।

जहाँ तक पहिली स्थिति का प्रश्न है, जिसे प्रान्तीय भाषा कहा जाता है वह वर्षों से देश के एक अपेक्षाकृत बड़े भाग की भाषा रही है। उसे राष्ट्रभाषा का पद कुछ विशेष कारणों और सम्भावनाओं से प्राप्त हुआ है, जिनका निर्देश मैं ऊपर कर चुका हूँ। बोलचाल और लिखित भाषा का कथित अन्तर्विरोध स्वाभाविक है। किसी भाषा के व्यावहारिक और साहित्यिक रूप में अन्तर होता है। यह एक भाषा-शास्त्रीय प्रकृति है। रही स्थान की श्रेष्ठता की बात, वह केवल समय और संयोग है। वर्तमान स्थिति से अलग हट कर हिंदी की उन सम्भावनाओं पर विचार किया जाए तो सकारण और साधार है। हिंदी के वास्तविक रूप का प्रचलन अभी सौ वर्षों से भी अधिक का नहीं हुआ है और इतने अल्प समय में जो विकास और प्रगति हिंदी ने की है वह एक आश्चर्यजनक तथ्य है। यह उसके विषय में अनन्त सम्भावनाओं का द्वार भी खोलता है। यह स्थिति के एक पक्ष की व्याख्या हुई। स्थिति का दूसरा पक्ष भी है।

हिंदी की स्थिति अब व्यापक और उलझनभरी हो गई है। व्यापकता तो उसे प्राप्त मान्यता और प्रतिष्ठा के कारण है और उलझन उसके प्रचार को लेकर। हिंदी बोलने वालों (या जिनकी मातृभाषा हिंदी है) की संख्या पूरे देश की संख्या में अधिक नहीं है और फिर उसमें भी

बोलियों का बाहुल्य है। जहाँ तक इन बोलियों का प्रश्न है उसका समाधान सहज है। बोलियों का क्षेत्र भाषा का ही क्षेत्र माना जाता है और बोलियों का व्यवहार करने वाले हिंदी भाषा का व्यवहार भी सहजता से कर सकते हैं। व्यवहार का क्षेत्र भी प्रयोगानुसार स्वभावतः विकास कर सकता है। समस्या केवल हिंदी बनाम प्रादेशिक भाषाओं और हिंदी बनाम उर्दू की है।

प्रत्येक भाषा का अपना व्यक्तित्व होता है। बहुधर्मी और बहुप्रादेशिक संस्कृति वाले इस देश में प्रत्येक भाषा की एक स्वतंत्र सत्ता और अन्विति है। इस विभिन्नता में भी एकता की साधना हमारी प्रमुख सांस्कृतिक विशेषता रही है। सामासिक संस्कृति के साथ ही एक सामासिक राष्ट्रभाषा भी हमें मिल सके तो शुभ होगा। यह सामासिक संस्कृति क्या है? हमारे देश में आदिकाल से लेकर अब तक कितनी ही संस्कृतियाँ आईं और सब हम में से एकाकार होती गईं। उन सबकी विशेषताओं का समन्वित और सामासिक रूप ही भारतीय संस्कृति है। भारतीय राष्ट्रभाषा भी ऐसी ही हो यह मेरी आकांक्षा है। हिंदी की प्रधान अपेक्षा भी यही है। जो हिंदी राष्ट्रभाषा बन गई है उसे अन्य भाषाओं के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए अपना विस्तार करना है और उनकी विशेषताओं को आत्मसात् करना है।

किसी भी भाषा का निर्णायक उसका व्याकरण, शब्दभण्डार, शब्द-शक्ति, ध्वनिरूप और वाक्यविन्यास होता है। जिस समन्वय की बात की जा रही है वह अपने परिणत और पूर्ण रूप में वर्तमान भाषा व्यक्तित्व को बदल देगा। वह भागों में बँटा हुआ इकाईप्रधान न होगा। प्रश्न यह है कि उस समन्वित और एकान्वित व्यक्तित्व के लिए क्या हिंदी में अन्य भाषाओं के व्याकरण सम्मिलित कर लिए जाएँ? बँगला आदि पूर्वीय भाषाओं की तरह लिंगभेद हटा दिया जाए? उसके व्याकरण संबंधी भेद को हटा दिया जाए? "ने" "को" आदि के प्रयोगों में ढिलाई दी जाए? तात्पर्य यह कि क्या उसका व्याकरण फिर से बनाया जाए? मुझे यह परामर्श सुचिंतित नहीं लगता। इससे हिंदी का मौलिक व्यक्तित्व मूल से ही अस्वीकृत हो जाएगा। भाषा का व्यक्तित्व उसका व्याकरण ही तो है। उसका भी प्रयोग-सापेक्ष विकास होता चलता है, उसे ही भाषा विकास कहते हैं। यदि कट्टरता से व्याकरण का नियमन नहीं किया जाता तो भाषा स्वाभाविक विकास करती है अन्यथा वह अवरुद्ध हो जाती है। संस्कृत भाषा भी व्याकरण के नियमों से बँधती चली गई और दूर होती गई। जनसाधारण से व्याकरण के नियमन या नए व्याकरण के निर्माण की समस्या अनपेक्षित है। इस स्थिति में समन्वय की एक ही दिशा हो सकती है। अपने व्याकरण और भाषा-रूप को अन्य भाषाओं की विशेषता से ऐसा समन्वित किया जाए कि उसका मूल व्यक्तित्व भी कायम रहे। इस दिशा में एक आशंका और है। हमें

कई पृथक इकाइयों और अन्वितियों के मोह को त्यागना होगा क्योंकि परिवर्तित रूप में भाषा का एक सामासिक, समन्वित, समग्र और व्यापक व्यक्तित्व प्राप्त किया जा सकेगा। यह आशा ही की जा सकती है कि राष्ट्रीय एकता और संगठन के लिए मोह त्यागा जा सकेगा। इस उद्देश्य के लिए पृथक इकाइयों की स्वार्थ चेतना को समग्र राष्ट्र की चेतना में मिला देना होगा। आज यही नहीं हो रहा है। इसीलिए प्रश्न इतना विकराल, समस्या इतनी जटिल और स्थिति इतनी क्षोभकारी है।

भाषाएँ अपने पारस्परिक क्षेत्र से सदैव प्रभाव ग्रहण करती हैं। समन्वय के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता भी नहीं होती। आधुनिक भाषा पर लौकिक संस्कृति का (शब्दसमूहों में) प्रभाव, द्राविड़ भाषाओं का (द्राविड़ शब्दों के मूर्धन्य वर्ण-प्रयोग, स्वर-मध्य व्यँजन की आकस्मिक सम-स्थिति) प्रभाव, मुण्डा भाषाओं का (कतिपय भौगोलिक नाम और बीस-बीस की गणना-प्रथा) प्रभाव देखा जा सकता है। यही नहीं भारत-चीनी-भाषाओं और अभारतीय-भाषाओं का प्रभाव भी देखने को मिलता है।[1] इस तरह भाषाओं का व्यक्तित्व भी अपने वातावरण तथा प्रयोगक्षेत्र के संपर्क से अपना विकास और निर्माण करता चलता है। पूर्ण जातीय शुद्धता की तरह भाषा शुद्धता की कल्पना भी एक कालविरोध है। लेकिन इसका तात्पर्य व्यक्तित्व का समूल नाश नहीं है, उसका विकास ही श्रेय है।

भाषा को सरलतर करने और उसे अधिक जनवादी बनाने के भी बहुत विचार बहुत बार व्यक्त किए जाते हैं। वर्ष में शायद तेरह बार यह आवाज तो उठ ही जाती है। हिन्दुस्तानी वाला विचार उनमें से एक है। इस सरलता के विषय में मेरा एक मत है। भाषा को सरलतर करने की बात तो अवश्य कही जाती है लेकिन यह कभी कोई नहीं कहता कि उसे शिक्षण और अध्यवसाय से प्राप्त किया जाए। इसके दो विकल्प हैं—या तो भाषा के स्तर को नीचे लाकर उसे सरलतम कर दिया जाए अथवा अपने प्रयत्नों से उसके मूल-स्तर तक पहुँचा जाए। मैं समझता हूँ दूसरा विकल्प ही श्रेयस्कर है। फिर जटिल भाषा का प्रश्न भी केवल लिखित भाषा और साहित्य की भाषा को लेकर उठाया जाता है, बोलचाल की हिंदी भाषा में तो अपेक्षाकृत एक सरलता है ही, उसका रूप जनवादी भी है। लिखित भाषा में एक विशेष प्रकार के साहित्य की भाषा ही कठिन होती है। वैचारिक और सैद्धान्तिक चर्चाओं की भाषा का अपेक्षाकृत उच्चतर स्तर होना स्वाभाविक है। बोलचाल की भाषा सरल होती है यदि उसमें कोई प्रदर्शन या सायास-सिद्धि

1 ग्रियर्सन: भारत का भाषा सर्वेक्षण [खंड 1 भाग 1, पृष्ठ 237-246, अनुवाद: उदयनारायण तिवारी]

न हो । यह भाषा की स्वाभाविकता है । कृत्रिमता स्थायी नहीं हो सकती (यह बात मैं केवल बोलचाल की भाषा के संदर्भ में कह रहा हूँ) । सरलता के इसी प्रसंग में एक बात और रखी जा सकती है— भाषा केवल सामान्य व्यवहार का ही अस्त्र नहीं है । वह एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का साधन भी है । एक साँस्कृतिक-निष्ठा और परम्परा-निर्वाह का दायित्व भी उस पर है । जब हम अँग्रेज़ी सीख रहे थे तब हममें से कोई यह नहीं कहता था कि अँग्रेज़ी को अधिक सरल कर दिया जाए ताकि वह अधिक जनवादी हो सके और हमें कठिनाई न हो । प्रत्येक भाषा जो एक उच्च साँस्कृतिक विरासत को वाणी देती है अपने स्तर को नीचे लाना नहीं चाहती । उस स्तर पर ही लोग पहुँचना चाहते हैं और उसके लिए प्रयत्न करते हैं । इस तर्क में एक वर्गीय-आभिजात्यवादी-रक्षणवृत्ति की गंध नहीं आनी चाहिए । मैं यह कभी नहीं कहता कि किसी भी भाषा को जान-बूझ कर कठिन और क्लिष्ट बनाया जाए या उसमें एक पृथक्-उच्च-भाव का दम्भ बोले । मैं साँस्कृतिक संदर्भ में स्तर की बात कह रहा हूँ । स्तर को कायम रखते हुए भी व्यावहारिक क्षेत्र उपादेय बनाया जा सकता है । बोलियों से, प्रादेशिक भाषाओं से, अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रों से संग्रह करके भाषा के भण्डार को बढ़ाया जा सकता है । यह सबको स्वीकार्य होगा और उससे स्तर की भी क्षति न होगी । इस तरह हिंदी बनाम प्रादेशिक भाषा, उर्दू और अँग्रेज़ी की समस्या का, मैं समझता हूँ, हल हो सकता है । एक बात यहाँ संस्कृत के प्रसंग में भी कहनी होगी । संस्कृत हमारी भाषा का मातृ-उत्स है । आर्य भाषाओं में ही नहीं, द्राविड़ परिवार की भाषाओं में भी उसकी एक अन्तःसलिला प्रवाहित है और वह हमारी भाषाओं की पृष्ठभूमि है । हमारा अधिकांश भारतीय जीवन दर्शन और साँस्कृतिक परम्परा उस पर अवलम्बित है । सामासिक राष्ट्रभाषा की अपेक्षा उसका योग कम महत्त्वपूर्ण न होगा । हिंदी का संस्कृतमुखी होना उपयोगी है; लेकिन व्यवहार के क्षेत्र में कठिनाई आती है । यहाँ सुविधा का ध्यान रखना होगा । जिन तत्सम शब्दों का भावन और प्रेषण अधिकांश भारतीय जनता तक हो सकता है उन्हें गृहीत किया जा सकता है । इनकी संख्या बहुत है ।

तद्भव रूपों का व्यावहारिक क्षेत्रों में महत्त्व है । नए शब्दों के निर्माण में न तो संस्कृत का मोह होना चाहिए और न अपने सामाजिक व्यक्तित्व को छोड़ने का प्रयत्न । इस प्रसंग में अँग्रेज़ी के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है । यह सही है कि अधिकांश नवीन चेतना उसी से प्राप्त हुई है । हमारे अधिकांश वैज्ञानिक और वैचारिक विकास का माध्यम भी वही है । अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भी वह हमारी सहायक है लेकिन व्यवहार में वह कितनी सीमित है यह भुलाया नहीं जा सकता । अँग्रेज़ी के परिष्कार में कितनी अन्य भाषाओं का

योग है, यह एक लम्बी साँस्कृतिक परम्परा है और सदियों की प्रयत्नश्रृंखला है। इस सब के बाद उसका अपना व्यक्तित्व है, उसकी अपनी भौगोलिक और जातीय विशेषता है। अँग्रेज़ी को स्वीकार करके उन्हें हम ले लें और अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व का हवन करने को तैयार हों तब तो कोई बात नहीं। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्थान की प्राप्ति का मोहक सपना भी इसके पीछे है। लेकिन यह सपना हमारी राष्ट्रीय अन्विति का सर्व-स्वान्तकारी है। हाँ, उसकी विशेषताओं को आत्मसात् कर लेना कभी हानिप्रद नहीं। यह हो भी रहा है। कई अँग्रेज़ी शब्द हमारे इतने अपने हो गए हैं कि हम उन्हें छोड़ नहीं पा रहे हैं। छोड़ना भी नहीं चाहिए। केवल पारिभाषिक शब्दा-वली की समस्या ही कुछ चिन्तनीय है।

हमारी अधिकांश वैज्ञानिक चेतना अँग्रेज़ी के माध्यम से ही आई है, तब उस वैज्ञानिक शब्दावली का बहिष्कार हम कैसे करें? शब्दों का एक अर्थ उसके प्रयोग पर आधारित होता है। उनके पीछे एक जीवनदर्शन और सांस्कृतिक परम्परा होती है। **क्रियेशन** शब्द से सृष्टि की जो व्याख्या और ध्वनि व्यंजित होती है वह सृष्टि से भिन्न है। **क्रियेशन** में शून्य से कुछ निर्मित होने का भाव है जबकि सृष्टि का तात्पर्य शून्य से निर्माण नहीं होता। शून्य से कुछ निर्मित नहीं होता। सृष्टि शब्द के प्रयोगकर्ताओं का दर्शन है कि सृष्टि का एक पूर्वरूप भी है। वही प्रक्षेपित होकर वर्तमान रूप को प्राप्त हुआ है। इस **सृष्टि** शब्द में भी एक दर्शन है। और इसीलिए शब्द अपने व्यवहार से अलग कुछ नहीं है। हम सब एक ही शब्द का कितने विभिन्न अर्थों में प्रयोग कर लेते हैं, यह थोड़ी सी सतर्कता से जाना जा सकता है। उनका अर्थ-विस्तार, अर्थ-पतन और अर्थ-उत्कर्ष होता है। उनका जीवन होता है। वे अपना रूप बदलते हैं और अन्ततः वे मर्त्य होते हैं। विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में इन बातों का ध्यान रखना है। उसके लिए एक वैज्ञानिक चेतना का होना आवश्यक है। विज्ञान और शास्त्र के संदर्भ में कई सिद्धान्तों के नाम उनके पुरस्कर्ताओं की ही भाषा से आए हैं। वैज्ञानिक या शास्त्रीय विवेचना में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ प्रयोगानुसार परम्परित (Conventional) मान लिया जाता है। और एक खास शब्द अपने साथ पूरी प्रकिया, प्रयोग, चेतना और उपलब्धि का वाहक होता है। उसके स्थान पर किसी नए शब्द का निर्माण अहेतुक श्रम होगा। क्योंकि वह प्रक्रिया, प्रयोग चेतना या उपलब्धि हमारी नहीं है। जब हम विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग करना चाहते हैं, उसमें विकास करना चाहते हैं तो प्रयुक्त शब्दों को उसी रूप में ले लेना चाहिए क्योंकि उसके पीछे एक प्रायोगिक अर्थ है और विशेष प्रसंग है। उसे अपनी भाषा से बदल लेने में वैज्ञानिक सत्य का ह्रास भी हो सकता है।

इसी प्रसंग में लिपि की चर्चा भी

की जा सकती है। देवनागरी लिपि में कई प्रयोग हुए हैं। कुछ लोगों ने नई लिपि का सुझाव भी रखा है। प्रसिद्ध भाषाविद् डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने 'रोमन लिपि' का प्रस्ताव रखा था। यों तो भाषा मूलतः श्रुतिसापेक्ष है लेकिन उसके परिवहन और संचार के लिए लिपि का आविष्कार हुआ। लिपि-विज्ञान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ लिपि ध्वन्यात्मक लिपि कहलाती है। इसका तात्पर्य ध्वनि के संकेत चिह्नों से है। पहिले सम्पूर्ण बात या वाक्य की द्योतक लिपि थी फिर स्थूलभाव-भावों की व्यंजक लिपि बनी और बाद में एक शब्द की अभिव्यंजक लिपि का विकास हुआ। वैज्ञानिक दृष्टि से देवनागरी लिपि का पक्ष सबल है क्योंकि वह पूर्णतः ध्वन्यात्मक है, उसमें अलग-अलग चिह्न हैं। इसे यों भी समझा जा सकता है कि उसमें जो उच्चारण किया जाता है वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वही उच्चरित होता है। ऐसा सभी लिपियों के साथ नहीं है। देवनागरी लिपि के संकेत चिह्न ही बहुत हैं। लेकिन मात्राओं के रूप में प्रयुक्त ध्वनियों के साथ नए सीखने वालों के लिए कुछ कठिनाई प्रस्तुत करते हैं। मुद्रण और टाइपिंग में देवनागरी के लिए कुछ असुविधा की बात कही जाती है। इसकी कथित स्थानापन्नउर्दू लिपि, भारतीय भाषाओं के अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसमें समस्त ध्वनियों के परिवहन की क्षमता नहीं है। उसके लिखित और उच्चरित रूप में भी अपवादों का बाहुल्य है। रोमन लिपि क्योंकि अंतरराष्ट्रीय है, व्यापक है केवल इसीलिए उसे ग्रहण कर लेना मुझे भला नहीं जँचता। अपनी भाषा के साथ अपनी लिपि का होना भी आवश्यक है। फिर नए सिरे से हिंदी ध्वनियों के लिए रोमन लिपि के संकेत चुनना एवं उसका शिक्षण बहुत अधिक श्रम, समय और अर्थ-व्यय की माँग करता है। देवनागरी की क्षमता और संभावना कम नहीं है। लिपि का विषय राष्ट्रभाषा के अन्तर्गत होते हुए भी स्वतंत्र महत्त्व का है। प्रसंगवश यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रभाषा के साथ देवनागरी की राष्ट्रीय संपत्ति में आवश्यकतानुसार संशोधन करना अनिवार्य हो गया है। 'म', 'भ' और 'घ', 'ध' की समानताएँ और इसी प्रकार विभिन्न मात्राओं के विस्तार से नए अभ्यासकर्ताओं को कुछ कठिनाई पड़ती है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति ने कुछ अपेक्षाकृत सरल रीति का व्यवहार किया है; वही काफ़ी नहीं है। उसे वैज्ञानिक स्वरूप भी प्रदान करना है।

हिंदी की अपेक्षाओं और सम्भावनाओं पर विचार करते हुए यह भी स्मरण रखना होगा कि भाषा का प्रश्न वर्गवादी या राजनैतिक नहीं है। वस्तुतः उसका एक विज्ञान होता है। उसका विकास और परिवर्तन वैज्ञानिक नियमों का अनुवर्तन करता है। उसका आगत केवल कल्पना का विषय नहीं क्योंकि उसका अतीत भी परिकल्पित नहीं है। यह सही है कि भाषा अभिव्यक्ति का साधन है, लेकिन उसका विकास स्वाभा-

विक और आप से आप होता है उसमें स्वयं परिवर्तन होते हैं। उसका एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व होता है, जो साँस्कृतिक परम्परा का वाहक होता है। किसी भी व्यक्तित्व को कठघरे में बंद नहीं किया जा सकता। उसके लिए स्वच्छंद वातावरण की आवश्यकता होती है। भाषा का विकास और परिवर्तन दैनिक जीवन में देखा जा सकता है। हिंदी के वाक्य-विन्यास में बहुत परिवर्तन हो चुके हैं। छोटे-छोटे अँग्रेज़ी-ढंग के वाक्यों का प्रयोग हो चला है। उसकी ध्वनियों में भी परिवर्तन आ गए हैं— 'ऋ' को 'रि', 'रू' या 'र' की तरह उच्चरित किया जाता है; 'स', 'ष', 'श' के भेद भी मिटते जा रहे हैं; 'क्ष' भी 'ष', 'च्छ', 'क्ष' की तरह ध्वनित होने लगा है। हिंदी शब्द समूहों में तद्भव शब्दों की मात्रा बढ़ गई है, उसमें बोलियों के शब्द, प्रादेशिक भाषाओं के शब्द और विदेशी भाषाओं के शब्द आ गए हैं। ये सब भाषा-विकास है लेकिन परिवर्तन और विकास को कृत्रिम नहीं बनाया जा सकता। भाषा को बाँधने और नियमित करने का प्रयत्न भाषा की प्रगति और प्रवाह को अवरुद्ध करेगा। साँस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना, एकता और संगठन की भावना तथा वर्ग-समन्वय की प्रेरणा से ही राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रयत्न परिचालित होने चाहिए। किसी के प्रति अतिरिक्त मोह या किसी का बहिष्कार या और किसी भी प्रकार की वर्गीय कट्टरता से अलग एक सामाजिक भाषा का रूप ही हमारी अपेक्षा है और इस दिशा में हिंदी की संभावनाएँ अनन्त हैं।

अनुवाद-कार्य का महत्व और उसकी कठिनाइयाँ

रामचन्द्र तिवारी

एक भाषा के वाङ्मय को दूसरी भाषा में यथासाध्य यथाभाव उतारना अनुवाद कहलाता है। इसके लिए सामान्यत: एक अनिवार्य शर्त यह है कि अनुवादक दोनों भाषाओं का विज्ञ हो। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है, उसका पूर्ण ज्ञान हुए बिना अनुवादक मूल पाठ का अभिप्रेत भाव हृदयंगम न कर सकेगा और जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा है, उस भाषा का पूर्णज्ञान हुए बिना, सशक्त अभिव्यक्ति का धनी हुए बिना, अनुवादक मूल भाव को शब्दों के रुचिर परिधान में प्रस्तुत न कर सकेगा। इस प्रकार अनुवादक को मूल लेखक की अपेक्षा अधिक भाषाविद् होना आवश्यक होता है।

सामान्यत: किसी भाषा के उत्कृष्ट साहित्य से अपनी भाषा के भंडार को समृद्ध करने की दृष्टि से अनुवाद किए जाते हैं। किसी भाषा में लिखे मौलिक साहित्य से जहाँ उस भाषा के प्रणेताओं की चिन्तना तथा विचारणा शक्ति का बोध होता है, वहाँ अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को अनूदित कर अपनी भाषा में लाने के प्रयासों से भाषा के भंडार में विविधता तथा प्रचुरता लाने की कामना ध्वनित होती है। इस उत्कट कामना का परिणाम चाहे जितना श्लाघ्य हो किन्तु भाषा की प्राण-शक्ति उसके मूल साहित्य पर निर्भर होती है।

फिर भी किसी किसी देश या भाषा के जीवन में ऐसा काल आता है कि उसे बड़े पैमाने पर अनुवाद-कार्य का सहारा लेना होता है। किसी देश की राजनीतिक स्थितियों के कारण जब उस देश की भाषा या भाषाओं को विकास-प्रसार का उचित अवसर नहीं मिलता, तब उस या उन भाषाओं को गतिरोध का सामना करना होता है। जब वे बाधक राज-नीतिक या सामाजिक स्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं और उस या उन भाषाओं

को नवचेतना के विचार-वाहन का अपना दायित्व निभाने का भार उठाना होता है तो प्रतिकूल राजनीतिक स्थितियों के कारण भाषा में आए दौर्बल्य या शैथिल्य को पूरा करना तथा नवीन स्थितियों के अनुरूप भाषा में सबलता लाने का दुहरा काम करना होता है। ऐसी अवस्था में उस भाषा में आए मौलिक चिन्तन के अभाव को अनुवादों द्वारा पूरा करने का यत्न किया जाता है।

ऐसी ही कुछ स्थिति भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् उत्पन्न हुई है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उन सब नवीन विचारों का वाहन बनना था जिनके लिए दो सदियों से अँग्रेज़ी का प्रयोग भारत के बुद्धिजीवी चिन्तक करते आए थे। अँग्रेज़ी में लिखे विभिन्न विषयों का साहित्य हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उतारने का काम संस्कृति के इस संधिकाल में करना आवश्यक है। हिंदी को संविधान में राजभाषा मान लिया गया है, इसलिए प्रस्तुत लेख में अँग्रेज़ी से हिंदी के अनुवाद की समस्या को ही लिया जाएगा।

स्वतंत्रता मिलने के बाद से अँग्रेज़ी से अनुवाद किए जाने की जितनी लम्बी और जितने बड़े पैमाने पर—परम्परा शुरू हुई है, इतिहास में उसका शायद ही कहीं जोड़ हो। अनुवाद की यह परम्परा कब तक चलती रहेगी, इसका भी सम्भवत: अनुमान करना कठिन है। स्वयं हिंदी में मौलिक चिन्तन और मौलिक लेखन कब पूरे पैमाने पर होने लगेगा जिससे कि अनुवादों की आवश्यकता ही न रहे, इसकी कल्पना करना सहज नहीं है। इसके कारणों का विश्लेषण करना प्रस्तुत लेख का विषय भी नहीं है। इस संबंध में इतना अवश्य कहना होगा कि हमें भावी पीढ़ियों के लाभार्थ यह स्थिति अनन्त काल तक नहीं चलने देनी चाहिए और हिंदी के वाङ्मय में सभी विषयों पर प्रचुर पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करने के लिए (भले ही अनुवादों के द्वारा हो) एक सुनियोजित और दूरगामी योजना की आवश्यकता है।

आजकल अँग्रेज़ी से हिंदी में जो अनुवाद कार्य हो रहा है, वह दो प्रकार का है: एक कार्यालय संबंधी चिट्ठी-पत्री या अन्य सामयिक कार्यों के सचालनार्थ, दूसरा पुस्तकों, कार्यालय संबंधी नियमों, संहिताओं आदि का अनुवाद जो स्थाया महत्त्व की वस्तुएँ हैं। इनमें भी सामयिक अनुवाद-कार्य का परिमाण इतना प्रचुर है कि सरकार के प्रत्येक विभाग में और प्रशासन के प्रत्येक अंग में अनुवाद-कार्य कराया जाता है। परिणाम स्वरूप अनुवादकों का अपना एक वर्ग बन गया है और अनुवादकों की योग्यताओं का पूरा ध्यान न रखने से इन पदों के लिए भर्ती होने वाले लोगों का स्तर कुछ इस प्रकार का है कि अनुवादक-वर्ग हेय दृष्टि से देखा जाता है।

इन प्रशासकीय पचड़ों से अलग रह कर यदि उच्चकोटि के अनुवाद कार्य और उसके स्थायी महत्त्व के प्रति भली प्रकार सजग होकर काम करने वाले अनुवादकों

को लें तो भी कुछ सरल नहीं है। अनुवाद-कार्य में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं जिनको हर अनुवादक अपने-अपने ढंग से हल करने का या टाल जाने का यत्न करता है। मोटे तौर पर ये कठिनाइयाँ हैं :—

(1) जिस विषय की रचना है, उसकी पारिभाषिक शब्दावली

(2) विषय की गूढ़ता और इंजीनियरी आदि विषयों में कार्य पद्धति, प्रक्रियाओं तथा वैज्ञानिक क्रियाओं का समुचित ज्ञान

(3) अँग्रेज़ी और हिंदी दोनों भाषाओं के वाक्य-विन्यास की भिन्नता और

(4) अनुवाद की भाषा के संबंध में विवाद।

इनमें से प्रत्येक कठिनाई पर नीचे संक्षेप में प्रकाश डालने का यत्न किया जाएगा।

1. **पारिभाषिक शब्दावली :** यह एक सर्वविदित कठिनाई है। भारत में अँग्रेज़ों के शासन काल से शिक्षा का माध्यम उच्च माध्यमिक विद्यालयों से शुरू होकर अन्त तक अँग्रेज़ी रही है और आज भी है। परिणामतः हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में काव्य-साहित्य के अतिरिक्त अन्य विधि विषयों का साहित्य लिखा ही नहीं गया। राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञानों के विविध क्षेत्र सभी में मूल साहित्य अँग्रेज़ी में रहा और मौलिक चिन्तन भी अँग्रेज़ी में ही हुआ। परिणामतः आज जब हम शिक्षा का माध्यम हिंदी या अन्य भारतीय भाषाएँ करने की सोचते हैं तो साहित्य का अभाव दुर्लंघ्य बाधा बन कर सामने आता है। और जब अनुवादों का सहारा लेने की बात सोची जाती है तब पारिभाषिक शब्दावली की कठिनाई सामने आती है।

शिक्षा-मंत्रालय ने इस दिशा में काफ़ी पहले से काम आरम्भ किया है और बहुत कुछ काम हुआ भी है लेकिन अभी अनेक विषयों पर पूरा काम नहीं हो पाया है। सभी विषयों पर हुए काम में पूरा समन्वय भी नहीं हो सकता है जिस के लिए अब प्रयास किए जा रहे हैं। पारिभाषिक शब्दावली बनाने के साथ उसका प्रचलन बहुत आवश्यक है। जब तक इनका बड़े पैमाने पर प्रयोग न हो ये शब्द प्रचलित नहीं होते। शिक्षा-मंत्रालय के इतने प्रयासों के बाद भी अभी अनेक क्षेत्रों में और भी गहन कार्य होना शेष है। वास्तव में भाषा का शब्द-समूह प्रयोग के साथ-साथ बढ़ता है, और वह तभी सम्भव है, जब मौलिक रूप से हिंदी में काम हो।

2. **वर्ण्य-विषय की गूढ़ता तथा उसका समुचित ज्ञान :** आज के अनुवाद-कार्य की एक कठिनाई यह है कि जिसे मूल ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय का ज्ञान है (जैसे वैज्ञानिक), उसे हिंदी का पूरा ज्ञान नहीं और जिसे हिंदी का पूरा ज्ञान होता है, उसे वैज्ञानिक विषयों की बारीकियों का ज्ञान नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि कभी-कभी बड़ी हास्यास्पद भूलें हो जाती हैं। इस दिशा में उपयुक्त यही रहेगा कि दोनों विषयों के ज्ञाता ही

अनुवाद-कार्य करें, और अगर यह सम्भव न हो तो हिंदी भाषा में अधिकारपूर्वक अभिव्यक्ति कर सकने वाला व्यक्ति पहले अनूदित होने वाले मूलग्रन्थ के पाठ को उस विषय के किसी विद्वान् से अच्छी तरह समझ कर हृदयंगम कर ले। यदि इसके लिए व्यावहारिक परीक्षण या कार्य होते देखना आवश्यक हो तो वह भी देखे। इस प्रकार मूल विषय को समझ कर उसे लिखना अधिक कठिन न होगा।

3. **अँग्रेज़ी तथा हिंदी के वाक्य-विन्यास की भिन्नता :**—अँग्रेज़ी में वाक्य-विन्यास कुछ इस प्रकार का है कि उसमें लम्बे-लम्बे उलझे हुए संयुक्त वाक्य बन सकते हैं जिनका अर्थ प्रयास करने पर निकल आता है। हिंदी की वाक्य-रचना की प्रकृति कुछ भिन्न है और छोटे-छोटे गठे हुए वाक्य भाषा का सौंदर्य माने जाते हैं। इस प्रकार हिंदी अनुवाद के समय अँग्रेज़ी पाठ के एक वाक्य के एकाधिक वाक्य बनाने पड़ते हैं। यह और सब जगह तो चल जाता है किन्तु कानून सरीखे विषय के अनुवाद में जहाँ प्रत्येक शब्द तथा वाक्यांश का अपना महत्त्व होता है, बड़ी कठिनाई का सामना करना होता है क्योंकि अँग्रेज़ी के एक वाक्य को तोड़ कर एकाधिक वाक्य बनाते समय एकाध शब्द जोड़ना पड़ जाता है और जिससे मूल भावना में अन्तर पड़ने की आशंका हो सकती है। यदि अँग्रेज़ी के वाक्य की भाँति ही जटिल वाक्य-रचना हिंदी में भी की जाए तो विषय की दुरूहता और भी बढ़ जाती है। कुशल अनुवादक को वर्ण्य विषय को देखते हुए अपना मार्ग स्थितियों के अनुसार निर्धारित करना होता है। यों छोटे-छोटे सुगठित वाक्य लिखना सदैव अच्छा है।

4. **स्वयं अनुवाद की भाषा के संबंध में विवाद :** अनुवाद की कठिनाई उस समय अधिक रहती है, जब किसी प्राविधिक विषय को सरल भाषा में लिखने के लिए कहा जाए। उस की पारिभाषिक शब्दावली तो यों ही ज़रा कठिन होती है और वर्ण्य विषय की गम्भीरता तथा दुरूहता के कारण भाषा भी तनिक पारिभाषिक हो जाती है। उस समय उस (अनुवादक) पर आरोप लगाया जाता है कि वह अधिक संस्कृत-निष्ठ हो गया है और उसे सामान्य बोलचाल की भाषा प्रयोग करने के लिए कहा जाता है। ऐसा कहने वाले लोग स्वयं यह नहीं बता पाते कि उनकी सामान्य बोलचाल की भाषा क्या होगी। वह जो कुछ कहते हैं, उससे ध्वनि यही निकलती है कि बोलचाल की भाषा में उर्दू, फ़ारसी आदि के शब्द तथा अँग्रेज़ी के पारिभाषिक शब्द ज्यों के त्यों प्रयुक्त किये जाएँ। इसके विपरीत संस्कृत-उद्भूत बंगाली, गुजराती, मराठी आदि अन्य भाषा-भाषी लोग संस्कृतनिष्ठ हिंदी पसन्द करते हैं। यों अनुवादक सामयिक रूप से इस समस्या का समाधान कुछ इस प्रकार करते हैं कि उनके द्वारा अनूदित रचना का किस क्षेत्र में प्रयोग किया जाएगा और

उसी के अनुरूप वे संस्कृतनिष्ठ या सामान्य बोलचाल की भाषा रखते हैं। किन्तु स्थायी महत्त्व की रचनाओं का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत करते समय अनुवादक का यह तात्कालिक हल काम न आएगा। इसके लिए सुनिश्चित नीति रहे तो अच्छा है।

अनूदित रचनाएँ भी दो प्रकार की हो सकती हैं, एक तो वे जो विषय के ज्ञाताओं के लिए हों और दूसरी सर्व-साधारण के लिए। पहले वर्ग की रचनाओं में संस्कृत-निष्ठ शब्दावली उपयुक्त रहती है और दूसरे प्रकार की रचनाओं में उसका बचाना ही वांछनीय है। फिर भी अनुवादक को अपने कौशल एवं अनुभव के आधार पर विषय की रोचकता बनाए रखने की दृष्टि से दोनों का सम्मिश्रण करना चाहिए।

इससे स्पष्ट है कि अनुवादक का कार्य गुरुतर होता है। उसे वर्ण्य-विषय की सीमाओं में रहकर भावों की अभि-व्यक्ति इस प्रकार करनी होती है कि वह अनूदित होते हुए भी मौलिक सी लगे। हिंदी भाषा की प्रगति की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि अँग्रेज़ी शासन काल में उपेक्षा की शिकार हो जाने से हिंदी के विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों में जो मौलिक चिन्तन तथा लेखन नहीं हो पाया है, उसकी कमी अनुवादों से पूरी की जाए। इसके लिए उच्चकोटि के अनुवादकों से सभी विषयों की श्रेष्ठ रचनाओं का हिंदी में अनुवाद करा कर उसकी श्रीवृद्धि की जाए, और भविष्य में हिंदी में ही चिन्तन तथा लेखन का आधार प्रदान किया जाए।

●

[पृष्ठ ३३ का शेषांश]

केन्द्रीय भाषा की सेवा करने वालों के सामने एक महान् कार्य है, अतः उनका दायित्व भी महान् है। उनको ऐसे भारतीय समाज के लिए भाषा का निर्माण करना है जो वर्गविहीन होगा, समाजवादी होगा, जिसकी जनता संस्कृत नाटकों के पात्रों के समान दो भागों में विभक्त न होगी। दूसरी बात यह कि उसको चौबीस करोड़ हिंदी बोलने और समझने वालों के लिए ही नहीं, अपितु पैंतालीस करोड़ और शीघ्र ही सत्तर करोड़ हो जाने वाली भारतीय जनता के लिए केन्द्रीय भाषा का निर्माण करना है। उसको प्राचीन भारत का मोह छोड़ कर भावी भारत पर दृष्टि रखनी चाहिए और उस भारत पर दृष्टि रखनी चाहिए जिसकी राजधानी दुनिया का एक बड़ा और पाँचवाँ केन्द्र है, जो विश्व की भाषाओं में स्थान पाने का दावा करने की हक़दार है। दिल्ली हिंदी का निर्माण करे, यह ठीक है, किंतु यह दिल्ली की पचास-साठ लाख आबादी के रूप का विचार करके न करे, यही निवेदन है।

अनुवाद की समस्याएँ (2)

महेन्द्र चतुर्वेदी

अनुवाद-प्रक्रिया के प्रथम अवस्थान–अर्थवत्ता-बोध–के बाद दूसरा अवस्थान उस अर्थवत्ता के अपनी भाषा में सम्प्रेषण का आता है। पहला अवस्थान बहुत हद तक एक मानसिक प्रक्रिया है जिसकी परिणति दूसरे अवस्थान में होती है। अनुवाद का पाठक इस दूसरे अवस्थान में निहित परिणति के आधार पर ही यह अनुमान लगा सकता है कि अनुवादक पहले अवस्थान में कहाँ तक सफल रहा है–अर्थात् इस दूसरे अवस्थान में असफल अनुवादक अनिवार्यतः पहले में भी असफल ही समझा जाएगा। इसी आधार पर एक सहज निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि अनुवादक को यों तो मूल और अनुवाद दोनों की ही भाषाओं में पारंगत होना चाहिए परन्तु उसके लिए मूल भाषा की अपेक्षा अनुवाद की भाषा में अच्छी गति होना अधिक आवश्यक है।

अनुवाद के इस दूसरे अवस्थान में सबसे पहली समस्या प्रक्रियापरक एवं व्यावहारिक है। मूल रचना का अर्थ-बोध तो अनुवादक समग्रतः ही करता है–पूर्वापर विचार अथवा भाव-क्रम में आबद्ध रचना में सम्पूर्ण पाठ द्वारा ही वह लेखक के मन्तव्य को पूर्णतः ग्रहण कर सकता है किंतु भाषान्तरण की प्रक्रिया में वह इकाई किसे माने ? सम्पूर्ण रचना को ? छन्द अथवा कंडिका को ? या वाक्य अथवा व्यष्टि-भाव को वहन करने वाले छन्दांश या पंक्ति को ? या फिर शब्द को ? अनुवादक के लिए सम्प्रेषण के धरातल पर यह बहुत महत्त्वपूर्ण समस्या है।

मध्य युग में पूर्व और पश्चिम दोनों में यह धारणा प्रचलित रही है कि अनुवाद शब्दशः होने चाहिए। यह आस्थावान् मनीषियों का दृष्टिकोण था और मूलतः उसके पीछे धर्म ग्रन्थों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा का भाव निहित था। इन पंडितों का तर्क यह था कि ये धर्मग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान हैं और इनका लेखन इसी ढंग से होना चाहिए कि सामान्य व्यक्ति पर दिव्य ज्ञान की वह गरिमा प्रकट न होने पाए। इसके अतिरिक्त उनका यह भी तर्क था कि दिव्य ज्ञान होने के नाते शब्दानुक्रम अपने आप में अर्थपूर्ण होना चाहिए, कि उसमें निश्चय ही कुछ रहस्य निहित होगा और उस रहस्य की रक्षा की जानी चाहिए। हमारे यहाँ भी वेदादि ग्रन्थों के अनुवाद में इस पद्धति का अनुसरण किया गया है।

किंतु आज के अनुवादक का दृष्टिकोण यह नहीं हो सकता क्योंकि शब्दशः अनुवाद करने के प्रयास में सबसे पहला आघात अनिवार्यतः अर्थ पर होता है और बहुत बचने पर भी अनुवादक अर्थ का अनर्थ किए बिना नहीं रह सकता। सम्पूर्ण रचना या छन्द अथवा कंडिका को भी अर्थबोध के धरातल पर तो अनुवादक इकाई मान सकता है किंतु भाषान्तरण की प्रक्रिया में इस पद्धति का अनुसरण करके वह अधिक से अधिक छायानुवाद अथवा भावानुवाद ही कर पाएगा, किंतु जैसा मैंने पहले कहा है यह अनुवाद न होगा क्योंकि अनुवाद में तो भाव, भाषा-शैली अथवा पदशैया और ध्वनि-प्रतिमान सभी को समन्वित रूप में ग्रहण करना होता है। इस प्रक्रिया में व्यष्टि शब्द--यहाँ तक कि पूरे के पूरे वाक्य भी--अपनी महत्ता खो बैठते हैं और उ क्षित रह जाते हैं।

तीसरी पद्धति वाक्य को इकाई के रूप में ग्रहण करने की है और यही सही दृष्टि है क्योंकि भाषा की इकाई अन्ततः वाक्य ही होता है। वाक्य को इकाई के रूप में ग्रहण करने के स्वतः दो सुपरिणाम होते हैं; एक–सुबोधता की रक्षा हो जाती है। यदि अनुवादक ने मूल रचना के वाक्य अथवा भाव-वाहिनी पंक्ति का अर्थ ग्रहण कर लिया है तो उसे उसी रूप में उसकी अभिव्यंजना करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। दूसरे, अनुवाद की भाषा की अन्तरंग प्रकृति तथा शैली की रक्षा भी अनुवादक कर सकता है। अनुवादक की इससे बड़ी असफलता और कुछ नहीं हो सकती कि वह अनुवाद-प्रक्रिया में उस भाषा की प्रकृति, उसकी सहज वाक्य-रचना को विकृत कर दे। प्रायः अनुवादक व्यवहार में इसी धरातल पर भटकते हैं। अर्थग्रहण करने के बाद भी यह उनकी समझ में नहीं आता कि वाक्य कहाँ से आरम्भ किया जाए और उसके विभिन्न खण्डों का संयोजन करते हुए अन्त कैसे किया जाए। गर्भित वाक्यों में इस दृष्टि से विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अनुभवी अनुवादक प्रायः सुविधानुसार लम्बे वाक्यों को तोड़कर छोटे-छोटे वाक्यों में परिवर्तित करने में सफल हो जाता है---इससे भाषा का सौंदर्य भी निखर आता है, प्रभविष्णुता भी बनी रहती है और सुबोधता की वृद्धि हो जाती है। किंतु वाक्यों को खण्डित करने में कहीं–कहीं असावधानी से अर्थ की विकृति भी हो जाया करती है। इसके प्रति अनुवादक को सदैव सतर्क रहना पड़ता है। इस दृष्टि से छोटे-छोटे वाक्य जहाँ अनुवादक के कौशल तथा रचना की अर्थवत्ता के प्रति उसकी सजगता को परिलक्षित करते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषा पर उसके अपूर्ण अधिकार को भी प्रतिबिम्बित कर सकते हैं। इसका एक उदाहरण है–हिंदी के मूर्धन्य कथाकार प्रेमचन्द का। प्रेमचन्द ने अपना साहित्यिक जीवन उर्दू में आरम्भ किया था और बाद में वे अपनी रचनाओं का स्वयं हिंदी में अनुवाद करने

लगे थे। उनकी भाषा-शैली के क्रमिक विकास के सूक्ष्म परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भिक कृतियों में वे प्रयत्नपूर्वक छोटे-छोटे वाक्यों की रचना करते हैं और उस वाक्य-रचना में अपनी शक्ति के प्रति अविश्वास परिलक्षित होता है। बाद में जैसे-जैसे भाषा की प्रकृति का उनका ज्ञान गहरा होता गया और अभ्यास बढ़ता गया वैसे-वैसे वाक्य-रचना पद्धति में स्वतः एक अन्तर आ गया है—वाक्यों में पहले का शैथिल्य नहीं रहा, छोटे-बड़े वाक्यों का यथोचित संश्लेष उनकी शैली में हो गया और फिर धीरे-धीरे वे मूलतः हिंदी में ही साहित्य-रचना करने लगे। सारांश यह कि सही वाक्य-रचना—यथावसर छोटे-बड़े, सरल-गर्भित—का कौशल अनुवादक की सबसे बड़ी पूँजी है और बड़े-बड़े अनुवादक भी यहाँ जूझ जाते हैं। अक्सर मूल कृति के वाक्यों की रचना-पद्धति अनुवादक को भ्रान्त दिशा में प्रेरित करती है क्योंकि वह जाने-अनजाने उसका अनुसरण करने का प्रयत्न करता है।

किंतु अनुवाद-प्रक्रिया में वाक्य को इकाई के रूप में ग्रहण करने का यह तात्पर्य नहीं कि सम्पूर्ण कृति के पूर्वापर क्रम और प्रसंग-विधान को अनुवादक भुला बैठे—उसे बराबर इसके प्रति सतर्क रहना चाहिए तभी वह पूर्ण और खण्डों में एक सहज सामंजस्य स्थापित करने में सफल हो सकता है। अनुवादक की सफलता का प्रमाण यह है कि उसके वाक्यों में जो शब्द अथवा पद-समष्टि जहाँ आनी चाहिए, वहीं आए—उसे वहाँ से हटाते ही वाक्य का सन्तुलन भंग हो जाए और वाक्य सम्पूर्ण कृति का सहज अंग हो, उस भाषा की प्रकृति के अनुकूल हो तथा मूल के अर्थ की अभिव्यक्ति पूर्णतः करे।

वाक्य में प्रत्येक शब्द की अपनी महत्ता होती है। जिस प्रकार वाक्य सम्पूर्ण कृति का सहज अंग होता है, उसी तरह वाक्य में भी प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण होता है। वाक्य-रचना से पूर्व यह आवश्यक होता है कि अनुवादक के पास मूल कृति के महत्त्व-पूर्ण शब्दों के उपयुक्त पर्याय हों और जिस तरह अर्थवत्ता-बोध के लिए मूल कृति के शब्दों की आत्मा का निकट परिचय आवश्यक होता है, उसी तरह उसके सम्प्रेषण के लिए अनुवाद की भाषा के शब्दों का भी अन्तरंग ज्ञान होना उसके लिए आवश्यक है। प्रत्येक भाषा में अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिन्हें सामान्यतः हम पर्यायों के रूप में स्वीकार करते हैं, किंतु प्रयोग के धरातल पर उनके अर्थों में थोड़ा-बहुत अन्तर्वर्तितत्व होते हुए भी अपनी विशिष्ट अर्थछायाएँ भी उनके साथ जुड़ी रहती हैं। इन प्रयोगगत सूक्ष्म भेदों का ज्ञान ही अनुवादक को उपयुक्त शब्दचयन में सफल बना सकता है क्योंकि शब्द की शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत प्रयोग और प्रचलन ही होता है। हमारे यहाँ हिंदी में—तथा अन्य आधुनिक भाषाओं में भी—पर्यायों के इस प्रकार के वैज्ञानिक

अध्ययन का अभाव है जिसके फलस्वरूप तथाकथित पर्यायवाची शब्दों की सीमा-रेखाएँ सामान्यतः स्पष्ट नहीं और उनके प्रयोग में एक प्रकार की अव्यवस्था और अराजकता है।

काव्य और शास्त्र के अनुवाद में शब्द-समस्या का स्वरूप बहुत-कुछ भिन्न हो जाता है। प्रत्येक समृद्ध भाषा में काव्योचित भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दों का अभाव प्रायः नहीं होता, फिर हमारी भाषाओं को तो संस्कृत की अत्यन्त समृद्ध शब्दावली दाय में प्राप्त है। मूल रचना में निहित भाव-तीव्रता को आत्मसात् कर कृतिकार की मनःस्थिति से तादात्म्य कर लेने पर अभिव्यंजना के धरातल पर प्रतिभाशाली अनुवादक की गति कुंठित नहीं होती क्योंकि काव्य-प्रतिभा द्वारा स्वतः उपयुक्त शब्दों का स्फुरण हो जाता है—यों जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ स्वयं कवि में ही संवेदना भाषा के स्थूल धरातल तक आते-आते अपनी तीव्रता काफ़ी हद तक खो चुकती है फिर अनुवादक की तो बात ही क्या? किंतु शास्त्र के धरातल पर स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। शास्त्रकार न किसी प्रकार की दुविधा के लिए अवकाश छोड़ता है और न उसके अनुवादक को इस बात का अधिकार होता है कि किसी प्रकार की संदिग्धार्थक शब्दावली को प्रश्रय दे। इसीलिए शास्त्रीय शब्दावली का सबसे पहला नियम यह है कि उसमें एक शब्द का एक ही मूल अर्थ होना चाहिए। यह परस्पर अपवर्जिता वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली के लिए अनिवार्य है। किंतु, काव्य-भाषा में जहाँ एक प्रकार की सार्वभौमता होती है, वहीं विज्ञान की प्रायः प्रत्येक शाखा की अपनी विशिष्ट शब्दावली होती है। हमारे यहाँ विविध विज्ञानों की उपयुक्त शब्दावली का सर्वथा अभाव है। इसमें भाषाओं का दोष नहीं। वैज्ञानिक धरातल पर हम इतने पिछड़े हुए है, तब वैज्ञानिक शब्दावली की दरिद्रता भी उसका सहज परिणाम है। उपयुक्त शब्दावली का अभाव अनुवादक के लिए प्रतिपग पर बाधा उपस्थित करता है। विज्ञान के चरण निरन्तर गतिशील हैं—उनके समानान्तर अग्रसर होने के लिए हमारी भाषाओं को नित्य नए शब्दों की आवश्यकता पड़ेगी। वर्तमान वैज्ञानिक-पारिभाषिक शब्दों के उचित पर्यायों का निर्माण तथा भावी प्रगति के लिए वर्द्धमान वैज्ञानिक शब्दावली का विधान किए बिना शास्त्र के अनुवादक की इस समस्या का हल नहीं हो सकता। इस दिशा में विभिन्न राजकीय एवं राजकीयेतर संस्थाओं द्वारा प्रयत्न हो रहे हैं किंतु इन्हें गति देने की आवश्यकता है।

संक्षेप में, यह आवश्यक है कि अनुवाद की भाषा में मूल की अभिव्यंजना-सामर्थ्य के समकक्ष ही अभिव्यंजना की क्षमता हो, अन्यथा वह अनुवादक की सीमा न होकर उसकी भाषा की सीमा होगी और उसके लिए अनुवादक को दोष देना अन्याय होगा।

अर्थवत्ता-बोध एवं सम्प्रेषण के अवस्थानों को एक समन्वित क्रिया के रूप में लें तो अनुवादक के प्रयत्न के संबंध में एक मौलिक प्रश्न पूछा जा सकता है—उसने मूल के प्रति ईमानदारी बरती है ? या उसने यथोचित स्वतंत्रता भी ली है । इस प्रश्न की आवश्यकता इसलिए है कि कहीं-कहीं मूल कृति के प्रति आत्यंतिक ईमानदारी वास्तव में निष्ठाहीनता का रूप ग्रहण कर लेती है, क्योंकि प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसी अनन्य-सामान्य विशेषताएँ एवं सूक्ष्मताएँ होती हैं जो अनुवाद की आँच को नहीं झेल पातीं और उसका परिणाम होता है अनिवार्य विकृति । दूसरी ओर यदि अनुवादक मूल के प्रति ईमानदार नहीं रहा तो कोई भी अनुवाद अनुवाद कहलाने का अधिकारी नहीं । यहाँ विविध तत्वों की प्राथमिकता स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए—अनुवादक की सर्वप्रथम निष्ठा मूल कृति के अन्तस्तत्व के प्रति ही होनी चाहिए, उसका साध्य उसी का सम्प्रेषण करना है और अपने इस साध्य की सिद्धि के लिए उसे यदि साधन-रूप भाषा के कुछ तत्वों की उपेक्षा भी करनी पड़े तो इस हद तक स्वतंत्रता ले लेने का उसे अधिकार है । महत्तर तत्व की साधना में यदि हीनतर तत्व की उपेक्षा अनिवार्य हो जाए तो इसके अतिरिक्त और विकल्प ही क्या हो सकता है ! पर अनुवादक का प्रयत्न यही होना चाहिए कि दोनों के बीच अधिकाधिक सामंजस्य स्थापित हो सके ।

मैंने आरम्भ में जो तीन प्रश्न उठाए थे, उनमें से तीसरे प्रश्न का भी महत्त्व कम नहीं—अर्थात् अनुवाद किस के प्रति उद्दिष्ट है ? हिंदी के सन्दर्भ में तो आज इसकी और भी अधिक महत्ता है । राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होकर जहाँ हिंदी की गौरव-वृद्धि हुई है, वहीं नई समस्याएँ भी कुछ कम पैदा नहीं हुईं । राष्ट्रभाषा होकर हिंदी सामान्य सम्पत्ति बन गई है जिसके संबंध में अपना-अपना मत व्यक्त करने का सभी को अधिकार मिल गया है । सामान्य सम्पत्ति के प्रति प्रायः सभी का मोह घट जाता है—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है । हिंदी का भी यही दुर्भाग्य है । हर प्रदेश का व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से उसके स्वरूप को आँकता है । सबका नारा एक ही होता है—'सरल भाषा'—किंतु अर्थ और मन्तव्य परस्पर-विरोधी और भिन्न होते हैं । 'सरल' विशेषण से उत्तरभारतीय का अर्थ सामान्यतः यह होता है कि उसमें अरबी-फ़ारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग अधिकाधिक किया जाना चाहिए । दक्षिण भारतीय के लिए 'सरल' प्रायः संस्कृत-निष्ठता का द्योतन करता है । एक वर्ग ऐसे शिक्षित लोगों का भी है जिनका अभिप्राय 'सरल' कहने से हिंदी को अँग्रेज़ी के अधिकाधिक निकट ले जाने का होता है । अतः भाषा के इस संक्रान्तिकाल में इस प्रश्न की महत्ता और भी बढ़ जाती है । भाषिक दृष्टि से हमारे वर्तमान समाज की कुछ अलग ही विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । स्पष्ट

है अनुवाद शिक्षित वर्ग के लिए ही किए जाएँगे, चाहे 'जनता' के नाम पर भाषा के साथ कैसी ही मनमानी कोई करता रहे। आज का अधिकतर साहित्य नगर के अधीत पाठक के प्रति ही निवेदित होता है। अनुवाद के पाठक भी ये ही होंगे और दुर्भाग्यवश इस वर्ग में इतना असीम वैविध्य और स्तर के इतने अधिक भेद हैं कि उनके कंठ से एक स्वर निकलना असम्भव है। इतना ही नहीं इस वर्ग की अपनी कोई भाषा भी नहीं। अँग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू, पंजाबी अथवा बँगला या तमिल आदि भाषाओं के यादृच्छिक मिश्रण से जिस संकर भाषा का निर्माण इस वर्ग के सदस्य कर लेते हैं, उसे लिखने की धृष्टता कोई अनुवादक नहीं कर सकता। हिंदी भाषा का कोई ऐसा परिनिष्ठित रूप नहीं हो सकता जो इस वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर सके और न यह वर्ग उसके किसी रूप को सहज मानकर स्वीकार ही कर सकता है। इस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अपने पूर्वाग्रह होते हैं और वह उन्हीं के अनुकूल भाषा को ढला हुआ देखना चाहता है। अतः भाषा का कोई भी स्वरूप अनुवादक स्थिर कर ले, उसका विरोध होना अनिवार्य है। इस प्रकार हिंदी में आज अनुवादक के भाग्य में केवल कुछ अपशब्दों के पुरस्कार का ही योग है।

अपशब्दों की यह वर्षा तो आनुषंगिक है—यों अनवादक जाने-अनजाने आरम्भ से ही एक हीनता-ग्रंथि का शिकार होता है। एक कठिन कार्य में प्रवृत्ति होने पर भी उसे आरम्भ से ही यह अप्रीतिकर बोध रहता है कि उसके प्रयत्न का अधिकांश श्रेय मूल कृतिकार को ही मिलेगा, कि वह कभी मूल लेखक के समकक्ष यश:लाभ की आशा नहीं कर सकता।

अन्त में, अनुवाद की सफलता की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वह अनूवाद न लगे बल्कि मौलिक कृति की आभा से मंडित हो, एक ताज़गी लिए हुए हो। दूसरे शब्दों में अनुवाद ऐसा होना चाहिए कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके। गोगोल के अनुसार आदर्श अनुवादक उस बेदाग़ काच की तरह होता है जिसके पार दर्शक हर चीज़ को साफ़-साफ़ देख सके और इसके साथ ही उसके अस्तितत्व से भी अनभिज्ञ रहे।

* हिंदी तथा जापानी के कुछ समान मुहावरे

* भाषा में काल्पनिक वस्तु-संकेत

* राजस्थानी भाषा और साहित्य की प्रगति

भाषा और व्याकरण

* हिंदी में वर्तनी की एकरूपता

* ध्वनि-अनुरूप वर्तनी की समस्या

* दफ़्तरी भाषा कैसी हो

हिंदी और जापानी के कुछ समान मुहावरे

●

सूज़ूकी, शीगेनोबू

●

[श्री सूज़ूकी, शीगेनोबू गत तीन वर्षों से भारत में रह कर हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने जापानी कहानियों, नाटकों तथा उपन्यासों के हिंदी में तथा हिंदी कहानियों आदि के जापानी में अनुवाद किए हैं। वे 'हिंदी जापानी कोश' तथा जापानी के माध्यम से हिंदी-शिक्षण-संबंधी पुस्तक तैयार करने में संलग्न हैं। एक विदेशी की हैसियत से हिंदी सीखते समय उनकी क्या प्रतिक्रियाएँ हुईं और हिंदी तथा जापानी भाषाओं की वाक्य-रचना तथा सोचने के ढंग में कितनी समानता है, प्रस्तुत लेख में इसका रोचक विवरण हमें मिलेगा।]

●

जापानी-भाषियों के लिए हिंदी सीखना अँग्रेज़ी आदि यूरोपीय भाषाएँ सीखने से कहीं अधिक सरल है। दोनों भाषाओं के बीच जो समानता है, वही इसका कारण है।

वैसे दोनों भाषाओं के शब्द-समूह की यदि तुलना की जाए तो उन में कुछ समानता नहीं मिलेगी। हाँ. संस्कृत और पाली के इने-गिने शब्द बौद्ध धर्म के साथ-साथ जापान में आकर जापानी शब्द बन गए हैं और वहाँ के लोग अनजाने में जापानी शब्द समझ कर उनका प्रयोग करते हैं। किंतु ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम और नगण्य है। फिर हिंदी में भी ऐसे एक-दो जापानी शब्द हैं जो हिंदी शब्द बन गए हैं। परंतु ऐसे शब्दों की संख्या भी नहीं के बराबर है।

दोनों भाषाओं के उच्चारण—विशेषकर स्वरों के उच्चारण—में काफ़ी समानता मिलती है। यूरोप की अधिकांश भाषाओं के स्वरों की संख्या भी अधिक है और उनका उच्चारण भी पेचीदा है। उदाहरण के लिए अँग्रेजी में [ə] [æ] [ɔ] [ʌ] फ्रांसीसी और जर्मन में [æ] [y] [ϕ] आदि। इनकी अपेक्षा हिंदी स्वर का उच्चारण हम जापानी-भाषियों के लिए बहुत आसान है, हालाँकि 'ए' और 'औ' के उच्चारण में हमें थोड़ी कठिनाई अवश्य होती है।

परंतु एक जापानी-भाषी के लिए हिंदी की सरलता का सब से प्रमुख

कारण है, व्याकरण की समानता। व्याकरण से मेरा मतलब वाक्य-रचना से है, अर्थात् दोनों भाषाओं के वाक्यों में शब्दों का क्रम एक ही है। जहाँ तक सरल वाक्य का संबंध है, दोनों भाषाओं की वाक्य-रचना बिल्कुल एक सी है, जैसे पहले उद्देश्य आता है, उसके बाद अप्रत्यक्ष कर्म, फिर प्रत्यक्ष कर्म और तब अंत में क्रिया। फ़ारसी में भी शब्दों का क्रम एक ही जैसा है, किंतु उस में अधिकांशत: विशेषण संज्ञा के बाद आता है, और सम्बन्ध-बोधक अव्यय संज्ञा के पहले (जैसे 'अज़', 'बे', 'दर' आदि; 'रा' को छोड़कर सभी) आता है। इसीलिए फ़ारसी की वाक्य-रचना जापानी के समान होते हुए भी हमें कुछ सोच-विचार कर, रुक-रुक कर बोलने को बाध्य करती है, किंतु हिंदी में ऐसी बात नहीं। विशेषण संज्ञा के पहले आता है और संबंधबोधक अव्यय संज्ञा के बाद। इसलिए जापानी शब्दों के स्थान पर हिंदी शब्द रख कर, यदि मनचाहे ढंग से बोलते जाएँ तो वह अच्छी हिंदी बन जाती है। कर्म और क्रिया को उलटा करने का (जैसा अँग्रेज़ी में है) या संज्ञा और विशेषण का स्थान बदलने का (जैसे फ़ारसी या फ्रांसीसी में है) झंझट नहीं। हाँ, मिश्रित वाक्यों और संयुक्त वाक्यों में कुछ अंतर अवश्य आ जाता है।

असल में विदेशी भाषा सीखने में शब्द-समूह और उच्चारण आदि गौण चीजें हैं और वाक्य-रचना ही सब से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बोलने वाला वाक्य-रचना अर्थात् शब्दों के क्रम के अनुसार सोचता है और उसके अनुसार प्रत्येक शब्द का उच्चारण करके अपनी भावना या इच्छा को दूसरे तक पहुँचाता है। बोलने का ढंग सोचने के ढंग पर निर्भर है। वाक्य-रचना और बोलनेवाले की चिंतन-पद्धति में बहुत घनिष्ट और अकाट्य संबंध है। एक आदमी अपने उच्चारण आदि तो अपेक्षाकृत आसानी से बदल सकता है, किंतु अपनी विचार-पद्धति उतनी आसानी से नहीं बदल सकता। कहावत है कि एक विदेशी भाषा सीखने वाला जब तक उसी ढंग से सोचने नहीं लगता जिस ढंग से विदेशी-भाषी सोचता है, तब तक उसको सफलता नही मिलती।

दोनों भाषाओं में अभिव्यक्ति-पद्धति की भी समानता मिलती है। वैसे तो वाक्य-रचना भी अभिव्यक्ति-पद्धति के अंतर्गत आती है, किन्तु यहाँ वाक्य-रचना या चिंतन-पद्धति के विवेचन जैसे दार्शनिक विषय में न जाकर अभिव्यक्ति-पद्धति के दूसरे पहलुओं अर्थात् प्रयोग में हम किस प्रकार अपने विचार और भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं, किस ढंग से बोलते हैं, किस तरह उपमाएँ देते हैं, कैसे अलंकार या मुहावरे प्रयुक्त करते हैं इत्यादि विषयों पर विचार किया जाए तो दोनों भाषाओं के मुहावरों, उपभाषाओं और अलंकारों आदि में बहुत समानता मिलेगी। यह बिलकुल स्वाभाविक भी है, क्योंकि हिंदी-भाषी और जापानी-भाषी की विचार-पद्धति

प्राय: एक-सी है। इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं कि दोनों भाषाओं के बहुत-से मुहावरे आदि एक दूसरे से मिलते-जुलते हों। यहाँ इसी प्रकार के मुहावरों के कुछ-एक उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

लाज के मारे गड़ जाना

हिंदी में यह मुहावरा है। जापानी में कहते हैं, 'लाज के मारे अगर पास गड्ढा हो, तो उस में घुसने को जी चाहता है।' दोनों मुहावरे बिलकुल एक जैसे हैं। अंतर केवल इतना है कि जहाँ जापानी में यह मुहावरा 'अगर–तो–' के आश्रित वाक्य में है, वहाँ हिंदी में 'गड़ जाता हूँ'– निश्चित वर्तमान में है। (शायद हिंदी-भाषियों में ज़्यादा लज्जा होती होगी!)

भूल कर भी नहीं

हिंदी में इस का प्रयोग 'कभी नहीं' या 'हरगिज़ नहीं' को और ज़ोर देने के लिए किया जाता है। बिल्कुल इसी तरह जापानी में भी कहते हैं : 'भूल कर भी मैं ऐसा क़ुसूर नहीं करूँगा।'

जब मैंने यह मुहावरा सीखा तो मैं चक्कर में पड़ गया कि 'भूल' शब्द क्रियावाले अर्थ में प्रयुक्त है या संज्ञावाले। जापानी भाषा में 'भूल कर भी नहीं' के साथ-साथ 'भूल से भी नहीं' का भी मुहावरा प्रचलित है। जब हम जापानी में कहते हैं कि 'मैं यह काम भूल से भी नहीं करूँगा' तो उसका मतलब यह होता है कि मनुष्य कभी-कभी अनजान में भूल (ग़लती) करता है, यह उस की विवशता है। इसी तरह मैं भी अन्य ग़लतियाँ तो करूँगा. लेकिन यह काम करने की ग़लती हरगिज़ नहीं करूँगा। इस प्रकार जापानी में भूलना क्रिया से भी यह मुहावरा बनता है और भूल संज्ञा (=क़ुसूर या ग़लती) से भी। जापानी में क़ुसूर या ग़लती के लिए दूसरा शब्द है जबकि हिंदी में संयोगवश दोनों के लिए एक ही शब्द है।

जी तोड़ कर

हिंदी में बहुत मेहनत से काम करने के लिए यह मुहावरा चलता है. जैसे 'उसने जी तोड़ कर काम किया।' किन्तु जापानी में 'जी' के स्थान पर 'हड्डी और मांस' और 'तोड़ने' के बदले 'घिसने'—यानी 'हड्डी–मांस घिस कर' कहते हैं। फिर 'मेहनत करने' या 'बहुत कोशिश करने' के लिए 'हड्डी तोड़ना' कहते हैं (हिंदी की जनपदीय बोली में 'हाड़ तोड़ कर काम करना' भी प्रचलित है)। जापानी की कहावत इसी से बनी है। बहुत मेहनत करने पर भी कुछ सफलता न मिलने पर कहते हैं : 'एक तो हड्डी तोड़ने का नुकसान, तिस पर फ़ायदे के नाम पर सिर्फ़ थकान'।

बनना

'मेल होने' के अर्थ में हिंदी में इस का प्रयोग होता है। जापानी में भी 'मेल होने' के लिए 'बनना' कहते हैं। किंतु जापानी में इसका प्रयोग विशेषकर स्त्री-पुरुष के प्रेम के लिए होता है, अन्य प्रकार के प्रेम के लिए नहीं। उदाहरण के लिए, जापानी में 'दोनों (अर्थात्

लड़का और लड़की) बन गए मालूम होते हैं' का अर्थ होगा कि लगता है कि दोनों में प्रेम चल रहा है।

इस मुहावरे के प्रयोग में जापानी तथा हिंदी में एक अंतर अवश्य है वह यह कि हिंदी में यह किसी भी प्रकार के प्रेम के लिए प्रयुक्त होता है और इसका नकारात्मक प्रयोग भी चलता है बल्कि मेरे ख्याल में तो ऐसे ही प्रयोगों की संख्या अधिक है। जैसे 'क्या आपकी उससे नहीं बनती ?' परंतु जापानी में 'बनना' का नकारात्मक प्रयोग बिल्कुल नहीं होता।

खोद-खोद कर पूछना

छोटी से छोटी बात तक पूछने के अर्थ में इस का प्रयोग हिंदी में होता है।

जापानी में कहते हैं कि 'जड़-पत्ते खोद कर पूछना'। यद्यपि 'पत्ते' का यहाँ कोई ख़ास मतलब नहीं। जापानी में जड़ और पत्ता, दोनों समास की तरह हमेशा साथ-साथ प्रयुक्त होते हैं।

जो भी हो, हिंदी तथा जापानी दोनों ही भाषाओं में छोटी से छोटी बात तक पूछने की उपमा 'खोदने' क्रिया से व्यक्त की जाती है।

बेसिर-पैर की बात

हिंदी में निराधार बात के लिए यह मुहावरा प्रचलित है। इसके लिए जापानी में 'बेजड़-पत्ते की बात' कहते हैं। (यहाँ भी पत्ता, जड़ के साथ मात्र समास के रूप में प्रयुक्त है)।

(का) मर्ज़ होना

कोई अजीब सी आदत पड़ जाने के अर्थ में हिंदी में यह मुहावरा प्रचलित है जैसे 'उन्हें गई-बीती दुकानों से चीज़ें लाने का मर्ज़ है।"

जापानी में भी इसी अर्थ में मर्ज़ या बीमारी, का प्रयोग होता है, जैसे 'उसको शिकार करने का मर्ज़ है' या 'वह फिर इधर-उधर फिरने लगा। यह अवारापन तो उसकी बीमारी है, अब क्या किया जाए'।

आस्तीन चढ़ाना

इसका अर्थ है लड़ने को तैयार होना। बिल्कुल इसी अर्थ में जापानी में भी 'आस्तीन चढ़ाना' मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

झगड़ा मोल लेना

यह मुहावरा हिंदी में झगड़ा शुरू करने' के अर्थ में प्रचलित है। जापानी में 'झगड़ा मोल लेना' एक प्रचलित मुहावरा है। लेकिन उसका अर्थ हिंदी-जैसा नहीं है। उपर्युक्त अर्थ में जापानी में कहते हैं–'झगड़ा बेचना', जैसे 'वह तो इधर उधर झगड़ा बेचता फिरता था', यानी वह कोई न कोई कारण खोज कर दूसरों से झगड़ता फिरता था।

और 'झगड़ा मोल लेने का अर्थ है, इस प्रकार 'बेचा गया झगड़ा' मोल लेना, यानी इस तरह 'बेचे गए झगड़े' को नज़रअंदाज़ न करके उसका सामना करना। कभी-कभी हिंदी में 'झगड़ा मोल लेने' का मुहावरा इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे 'बुज़ुर्गों से झगड़ा नहीं मोल लेना चाहिए'।

[शेष पृष्ठ 61 पर]

भाषा में काल्पनिक वस्तु-संकेत

मुद्राराक्षस

भाषा में वस्तु-संकेतों के महत्त्व को देखते हुए यूरोपीय विचारकों ने 'आब्जेक्ट-लेंग्वेज' का विस्तृत अध्ययन किया है। भौतिक वस्तु-प्रत्ययों और वस्तुओं के लिए हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उनके अतिरिक्त भाषा में एक ऐसा शब्द-वर्ग भी है जो भौतिक वस्तु-प्रत्ययों से सम्बद्ध अवश्य होता है लेकिन उन वस्तु-प्रत्ययों की संगठित-भौतिक इकाइयों में सीमित नहीं होता। उदाहरण के लिए हम दो विशेष शब्द लेते हैं—'भूरा कुत्ता' और 'पंखदार कुत्ता'।

'भूरा कुत्ता' शब्द आब्जेक्ट लेंग्वेज अथवा दूसरे शब्दों में वस्तुनिष्ठ भाषा की इकाई है। वस्तुनिष्ठ भाषा और आब्जेक्ट-लेंग्वेज जैसे नाम विचारकों ने स्थूल परिभाषा के अनुसार उन वक्तव्यों अथवा शब्द-समूहों को दिए हैं जो स्वयं ख्यात होते हैं, जिनको समझने के लिए किसी अन्य शब्द-समूह की आवश्यकता नहीं होती। 'भूरा' शब्द समझने के लिए किसी शब्द-समूह के बजाय भूरे रंग की ही आवश्यकता होती है जबकि 'भुरभुरा' जैसे शब्द वस्तुनिष्ठ भाषा के नहीं हैं क्योंकि उन्हें समझने के लिए वस्तु की अपेक्षा 'भुरभुराने' की एक प्रक्रिया विशेष का विवरण जानना आवश्यक होगा। इसी तरह 'कुत्ता' शब्द समझने के लिए चौपायों में से एक विशिष्ट प्रकार के चौपायों के वर्ग के एक सदस्य की वास्तविकता से साक्षात् करना होगा; उसके लिए किसी अन्य शब्द-समूह की विज्ञप्ति जरूरी नहीं होगी। इस वस्तुनिष्ठ भाषा की शिक्षा के लिए विद्वानों ने चार विचारणीय पक्ष प्रस्तुत किए हैं—किसी सुने हुए शब्द को वस्तु की उपस्थिति में समझना और उसे वस्तु की अनुपस्थिति समझना, किसी उच्चरित शब्द को वस्तु की उपस्थिति में समझना और उसे वस्तु की अनुपस्थिति में समझना। वस्तुनिष्ठ भाषा की शिक्षा की इतनी ही सीमा है जो 'आब्जेक्ट

लैंग्वेज' के वर्ग में आती है। इसके अतिरिक्त जिन शब्दों या शब्द-समूहों को समझने के लिए किन्हीं अन्य शब्दों या शब्द-समूहों की आवश्यकता होती है वे प्रारम्भिक भाषा की सीमा में नहीं आते।

'भूरा' और 'कुत्ता' शब्द भौतिक वस्तु-प्रत्ययों की एक विशिष्ट संयुक्त इकाई के परिणाम हैं उदाहरणतः 'भूरा कुत्ता' अनेक भूरी वस्तुओं के वर्ग का एक सदस्य है जिसमें रंग-साम्य है, जैसे भूरा कपड़ा, भूरा पत्थर, भूरा बादल इत्यादि। भूरापन यहाँ एक ऐसा प्रत्यय है जो चौपायों की विशिष्ट जाति 'कुत्ता' के वर्ग के एक सदस्य को अभिषिक्त करता है। 'कुत्ता' शब्द स्वयं एक जटिल प्रत्यय है जिसकी समग्रता अनेक भौतिक-सत्त्वों से संयुक्त है मसलन पशु-रूप विशेष, रंग, आकार इत्यादि।

यही विवरण लागू होता है 'पंखदार कुत्ता' के दो भागों 'पंखदार' और 'कुत्ता' के साथ भी। लेकिन 'भूरा कुत्ता' और 'पंखदार कुत्ता' की कोटि एक होते हुए भी उनकी वस्तु-सार्थकता में बहुत बड़ा अन्तर है। 'भूरा कुत्ता' और 'मोटा कुत्ता' भी एक कोटि के हैं साथ-ही-साथ वे वास्तविक संदर्भ की सार्थकता की दृष्टि से भी समरूप हैं जबकि 'भूरा कुत्ता' और 'पंखदार कुत्ता' शब्दों में परस्पर यह समरूपता नहीं है। इसका कारण है।

वस्तु-प्रत्यय (आइडिया) जैसे 'कुत्ता' अनुभूति सत्त्वों (सेन्स डेटा) का एक सम्बद्ध पुंज होता है। यही नहीं बल्कि वह वस्तु-प्रत्यय (आइडिया) जब किसी अतिरिक्त सत्त्व (सेन्स डेटम), जैसे 'भूरापन' से युक्त हो जाता है तो अपना स्वतंत्र वर्ग निर्मित कर लेता है मसलन 'भूरापन' से युक्त 'कुत्ता' प्रत्यय (आइडिया)' 'भूरे कुत्तों की कोटि का एक सदस्य' बन जाता है। इस 'भूरे कुत्तों की कोटि' के प्रत्येक सदस्य, 'भूरे कुत्ते' को हम 'कुत्ता' वर्ग की चौपायों की वास्तविकता (रिएलिटी) के अनुभूति-सत्त्वों के सामान्य पुंज के अतिरिक्त, 'भूरेपन' के योग के साथ जानते हैं। इस तरह 'भूरा कुत्ता' का सम्पूर्ण वस्तु-सन्दर्भ उपलब्ध होने के कारण हमें उसे समझने के लिए किसी अन्य शब्द या शब्द-समूह की आवश्यकता नहीं होती।

लेकिन 'पंखदार कुत्ता' के साथ यह स्थिति नहीं है। 'पंखदार-प्राणी' को हम 'भूरा कुत्ता' की तरह ही वस्तु सन्दर्भ से समझ सकते हैं। 'प्राणी' प्रत्यय 'पंखदार' सत्त्व (डेटम) से संयुक्त उपलब्ध है मसलन पक्षी। लेकिन 'पंखदार कुत्ता' ऐसा प्रत्यय (आइडिया) है जिसकी वास्तविकता समग्र रूप से उपलब्ध नहीं होती और उसे हमें शब्दों अथवा शब्द-समूह के सहारे समझना होता है। इसीलिए 'पंखदार कुत्ता' अथवा 'सोने का पहाड़' अथवा 'चौकोर वृत्त' जैसे शब्द प्राथमिक भाषा (प्राइमरी अथवा आब्जेक्ट-लेंग्वेज) की सीमा में नहीं आते।

प्रश्न है कि फिर इनका स्वरूप क्या है? इनकी सार्थकता क्या है? इनका अस्तित्व कैसे संभव होता है? विचारकों

ने इस दिशा में एक विशेष शब्द का प्रयोग किया है, वह है 'संभावनामूलक वास्तविकता (थीमेटिक रिएलिटी वस्तु-विवरण की भाषा से जब हम मूल्य-निर्णय की भाषा की ओर बढ़ते हैं तब हम अधिकाधिक 'संभावनामूलक वास्तविकता' को इंगित कर सकने वाले शब्दों का प्रयोग करते हैं। मूल्य प्रत्यक्ष अनुभव की नहीं बल्कि शब्द-समूहों (सार्थक) की सहायता से विचार की चीज़ होता है उदाहरणार्थ हम गति से प्रत्यक्ष कर सकते हैं लेकिन 'गतिशीलता' से नहीं क्योंकि 'गतिशीलता' किसी पदार्थ के मूल्य (वेल्यू) को इंगित करता है। जब हम 'चालू मशीन' शब्द बोलते हैं तो निश्चय ही हमारा शब्द-विवरण वस्तु-प्रत्यक्ष पर आधारित होता है लेकिन जब हम 'चालू साहित्य' या 'चालू आदमी' कहते हैं तो हम 'साहित्य' और 'आदमी' के मूल्यों का निर्णय करते हैं और इसीलिए 'चालू साहित्य' जैसे शब्द संभावनामूलक वास्तविकता (थीमेटिक रियलिटी) को संकेतित करते हैं। इसी के अन्तर्गत आते हैं 'पंखदार कुत्ता' 'सोने का पहाड़' 'चौकोर वृत्त' आदि जैसे शब्द।

'पंखदार कुत्ता' शब्द, वस्तुतः किसी वस्तु का सन्दर्भ न देकर किसी वस्तु के मूल्य का संकेत देता है। ऐसे शब्दों को स्थूल-पारिभाषिकता के अनुसार काल्पनिक शब्द-संकेत कहा जा सकता है जिनका प्रयोग धर्म और कला संबंधी तमाम साहित्य में उन्मुक्त रूप से होता है। कविता इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इसीलिए आधुनिक विचारकों ने साहित्यिक भाषा को मूल्य-निर्भर भाषा माना है।●

[पृष्ठ 58 का शेषांश]

आगा-पीछा सोचना

परिणाम सोचने के अर्थ में यह हिंदी में प्रचलित है। बिल्कुल इसी अर्थ में जापानी में भी यही 'आगा-पीछा सोचना' चलता है। किन्तु जापानी में 'आगा-पीछा' से ही बना हुआ एक दूसरा मुहावरा अधिक प्रचलित है : आगा पीछा भूलना। उदाहरण के लिए, 'वह आगा-पीछा भूल कर उसी में लगा हुआ था, जिसका अर्थ है कि वह बिना परिणाम सोचे काम में लगा हुआ था।' इसी प्रकार 'घोड़े बेचकर सोना' के लिए जापानी में 'आगा-पीछा से बेखबर होकर सोना' कहते हैं।

मुँह फुलाना

यह हिंदी में 'नाराज़ होने' के अर्थ में चलता है और इसी अर्थ में जापानी में भी 'मुँह फुलाना (या फूलना), प्रयुक्त होता है, जैसे 'इस तरह क्यों मुँह फुला कर बैठे हो ?'

हृदय (बाँसों) उछलना

'हिंदी और जापानी दोनों में इसका अर्थ 'खुश होना' या 'मन में आनन्द होना' है। जापानी में तो 'हृदय नाचना' भी कहते हैं।

हिंदी तथा जापानी भाषा के मुहावरों की यह समानता दोनों देशों की विचार-पद्धति तथा सांस्कृतिक एकता की परिचायक है।●

राजस्थानी भाषा और साहित्य की प्रगति

• अगरचन्द नाहटा

राजस्थान भारत का एक विशाल एवं प्रधान प्रान्त है, जिसकी भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं कला की परम्परा, बहुत प्राचीन होने से अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उनमें से, यहाँ पर राजस्थानी भाषा और साहित्य के संबंध में ही कुछ परिचय देना अभीष्ट है।

प्राचीनता

राजस्थानी भाषा का उद्गम उत्तर भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के समान अपभ्रंश से हुआ है और अपभ्रंश भाषा की सबसे अधिक विरासत राजस्थानी साहित्य को मिली है, इसलिए उसे अपभ्रंश की 'जेठी बेटी' कहा जाता है। अपभ्रंश से उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओं का विकास नवीं शताब्दी से भी पहले हो चुका था और उसका परिचय संवत् 835 में रचित उद्योतन सूरि की 'कुवलय माला' में सोलह प्रान्तीय जनपदों के लोगों और भाषाओं की विशिष्टता के उद्धृत उदाहरणों से मिल जाता है, पर सातवीं, आठवीं शताब्दी से लगातार तेरहवीं शताब्दी तक की साहित्यिक रचनाओं की भाषा अधिकतर अपभ्रंश ही रही है। अतः सही रूप में तेरहवीं शताब्दी से ही राजस्थानी भाषा का साहित्य मिलने लगता है।

प्राचीन जैन साहित्य

जैन विद्वान सदा से लोकभाषाओं के पक्षपाती रहे, क्योंकि तीर्थंकरों ने जन-भाषाओं को ही अपने उपदेशों का माध्यम बनाया था। इसलिए, राजस्थानी की प्राचीन रचनाएँ अधिकतर जैन विद्वानों की ही प्राप्त होती हैं। कुछ चारणादि कवियों के फुटकर पद्य, जो ग्यारहवीं से तेरहवीं और चौदहवीं शती तक के मिलते हैं, वे भी जैन प्रबन्ध-ग्रंथों में ही उद्धृत मिलते हैं। राजस्थान मुग़ल साम्राज्य के समय अधिक सुरक्षित रहा और जैन विद्वान साहित्य निर्माण और संरक्षण में सदा से जागरूक रहे। फलतः राजस्थान एवं गुजरात के जैन ज्ञान भंडारों में राजस्थानी भाषा की प्राचीन रचनाएँ सैकड़ों की संख्या में मिली हैं। जब कि उस काल की अर्थात् पन्द्रहवीं शती तक की जैनेतर रचनाएँ बिरली ही मिलती

हैं । ग्यारहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक की राजस्थानी रचनाओं में अपभ्रंश का प्रभाव पाया जाता है । सोलहवीं शताब्दी से वह प्रभाव लुप्त होकर भाषा में क्रमशः सरलता बढ़ने लगती है ।

क्षेत्र की विशालता

यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि राजस्थानी भाषा का क्षेत्र वर्तमान राजस्थान तक ही सीमित नहीं रहा है । गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ और मालवा के विशाल प्रदेश में सर्व-साधारण भाषा के रूप में कई शताब्दियों तक वह समान रूप से प्रतिष्ठित रही है। पन्द्रहवीं शताब्दी तक की रचनाएँ चाहे वे राजस्थान या गुजरात के किसी भी प्रदेश में क्यों न रची गई हों, उनकी भाषा एक ही है। इसीलिए विद्वान उसे प्राचीन राजस्थानी या जूनी गुजराती एवं 'मरू—गुर्जर' के नाम से संबोधित करते हैं।

हिंदी, राजस्थानी व गुजराती

जिस समय हिंदी साहित्य के इतिहास लिखे जाने प्रारम्भ हुए, उस समय हिंदी साहित्य में आदिकाल की रचनाएँ प्राप्त नहीं थीं । इसलिए वीर गाथा काल या आदिकाल में हिंदी के विद्वानों ने पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो, खुमाण रासो, विजयपाल रासो आदि राजस्थान में रची हुई रचनाओं को हिंदी की प्राचीन रचनाओं के रूप में उल्लिखित किया, और इसीसे हिंदी के साथ साथ राजस्थानी का घनिष्ट या निकटवर्ती सम्बन्ध मान लिया गया । भाषाविज्ञान की दृष्टि से राजस्थानी, हिंदी की अपेक्षा गुजराती के अधिक निकट है क्योंकि कई शताब्दियों तक दोनों प्रान्तों की भाषा एक ही थी । सोलहवीं शती से दोनों प्रान्तों की भाषाओं में भेद बढ़ता गया ।

बोलचाल की राजस्थानी रचनाएँ

साहित्य और बोलचाल की भाषा में सदा अन्तर रहता आया है। तेरहवीं शती से बोलचाल की राजस्थानी रचनाएँ प्राप्त होने लगती है । इनमें से 'जिनपति सूरि बधावणा गीत' तेरहवीं शताब्दी की राजस्थानी जैन रचना है । बोलचाल की राजस्थानी भाषा की महत्वपूर्ण जैनेतर रचना 'बीसलदेव रासो' है' जिसे बनाए रखने का श्रेय जैन विद्वानों को है । अभी तक इस रासो की जो पच्चीस-तीस प्रतियाँ मिली हैं, वे सभी जैन विद्वानों की लिखी हुई हैं । इस रास के रचनाकाल सूचक पद तीन तरह के मिलते हैं, पर इसका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी होना ही अधिक संभव है ।

अब राजस्थानी भाषा के व्याकरण, कोश, छन्द, कहावतों, मुहावरों, प्राचीन अर्वाचीन साहित्य और लोक साहित्य के शोध और प्रकाशन का कार्य विगत कुछ वर्षों में हुआ है उसकी संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

राजस्थानी व्याकरण

राजस्थानी व्याकरण संबंधी औक्तिकादि रचनाएँ चौदहवीं शताब्दी से मिलने लगती हैं । संस्कृत-राजस्थानी का सबसे प्रथम व्याकरण ग्रन्थ 'बाल शिक्षा' संग्रामसिंह रचित जैसलमेर भंडार में

प्राप्त हुआ है, जिसका कुछ अंश मुनि जिन विजय द्वारा सम्पादित 'प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ' ग्रन्थ में कई वर्ष पूर्व छपा था । अभी यह मूल-रूप में (बाल शिक्षा) मुनि जिन विजय द्वारा सम्पादित शीघ्र ही प्रकाशित होने वा है । मुनि जी ने दो औक्तिक संग्रह भी प्रकाशित किए हैं । इनसे राजस्थानी के प्राचीन व्याकरण पर प्रकाश पड़ता है।

राजस्थानी शब्दकोश

राजस्थान का शब्द भंडार बहुत ही विशाल है । अपभ्रंश से सीधा संबंध होने के कारण उसमें देशी शब्दों की बहुलता है । गत् हज़ार-आठ सौ वर्षों से राजस्थानी भाषा का स्वतंत्र विकास अच्छे रूप में होता रहा है और लाखों श्लोक परिमित विविध-विषयक गद्य, पद्य साहित्य रचा गया है। इसलिए, राजस्थानी का शब्द भंडार बहुत विशाल होना स्वाभाविक है । उपरोक्त औक्तिक और वर्णात्मक गद्य रचनाओं में प्राचीन राजस्थानी के हजारों शब्द संकलित हैं । पद्यबद्य कोशग्रन्थ भी सोलहवीं शताब्दी से रचे जा रहे हैं। ऐसे नौ कोशों का संग्रह जोधपुर से प्रकाशित 'परम्परा' के डिंगल कोश अंक में प्रकाशित हो चुका है।

आधुनिक शैली के राजस्थानी शब्द-कोश तैयार करने का प्रयत्न गत पचास वर्षों से कई व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा हो रहा है, जिसका विवरण ('कृष्णनाममाला' की भूमिका के साथ) 'वरदा' में प्रकाशित मेरे लेख में दिया जा चुका है । बीकानेर के सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट की ओर से एक विशाल कोश तैयार करने का प्रयत्न गत पन्द्रह वर्षों से है । जोधपुर से श्री सीताराम लालस के डिंगल कोश का प्रथम भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है ।

राजस्थानी छन्दशास्त्र

अपभ्रंशकालीन छन्दों का प्रयोग और लोकगीतों की देशियों का प्रयोग राजस्थानी साहित्य में खुल कर हुआ है। राजस्थानी भाषा के अपने स्वतंत्र छन्द भी हैं जिनमें 96 या 108 डिंगल गीतों के छन्द-प्रकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'रघुनाथ रूपक' 'रघुवर जस प्रकाश' 'राजस्थानी छन्द शास्त्र' तो प्रकाशित भी हो चुके हैं और राजस्थानी का प्राचीन ग्रन्थ 'पिंगल शिरोमणि' मुद्रणाधीन है । राजस्थानी का 'वयण सगाई' अलंकार बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । इसके संबंध में एक लेख तथा डिंगल गीतों की सारिणी (श्री नरोत्तमदास स्वामी की) प्रकाशित हो चुकी है।

राजस्थानी कहावतें:—एक समृद्ध भाषा में कहावतों और मुहावरों की प्रचुरता होनी चाहिए, अत: राजस्थानी भाषा में बीस-पच्चीस हज़ार कहावतों व पचास-हज़ार मुहावरे बतलाए जाते हैं, उनमें से दस-पन्द्रह हज़ार कहावतों का तो संग्रह (अब तक) हो चुका है और करीब पाँच हज़ार कहावतें प्रकाशित भी हो चुकी हैं। कहावतों के संग्रह व प्रकाशन-सम्बन्धी विवरण 'प्रेरणा' में प्रकाशित मेरे लेख में दिया जा चुका है । श्री नरोत्तम-दास स्वामी व मुरलीधर व्यास द्वारा

संग्रहीत ढाई हजार कहावतें 'राजस्थानी कहावतें (भाग 1-2)' के नाम से कुछ वर्ष पहले प्रकाशित हुई थीं। डॉ० कन्हैया लाल सहल ने तो राजस्थानी कहावतों पर बहुत ही महत्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध भी लिखा है जो 'राजस्थानी कहावताँ—एक अध्ययन' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। उनके द्वारा सम्पादित इक्कीस सौ कहावतों का एक संग्रह 'राजस्थानी कहावताँ' के नाम से बँगाल हिंदी मंडल, कलकत्ता से हाल ही में प्रकाशित हुआ है। कहावतों की कहानियाँ भी 'वरदा', 'मरु भारती' में प्रकाशित हुई हैं। डॉ० सहल के राजस्थानी प्रवाद सम्बन्धी दो ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। श्री जगदीश सिंह गहलौत के 'राजस्थानी कृषि कहावताँ' और 'वातालार्थ' नामक ग्रन्थ जोधपुर से प्रकाशित हुए हैं। दस हजार मुहावरों की एक पुस्तक श्री मुरलीधर व्यास द्वारा संग्रहीत, राजस्थान रिसर्च इंस्टीट्यूट से प्रकाशित होने वाली है।

राजस्थानी साहित्य का इतिहास

इस संबंध में डॉ० मोतीलाल मेनारिया का 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' नामक ग्रन्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। श्री नरोत्तम दास स्वामी की एक छोटी पुस्तिका नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर से और सरनामसिंह की एक पुस्तक दिल्ली से प्रकाशित हुई है। राजस्थानी जैन साहित्य पर मैंने तीन भाषण राजस्थानी विद्यापीठ, उदयपुरके सूर्यमल आसन पर दिए थे, जिनका कुछ अंश 'शोध पत्रिका' में प्रकाशित हुआ है। सूर्यमल आसन पर मुझसे पूर्व श्री नरोत्तम दास स्वामी ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पर भाषण दिये थे, जो अभी प्रकाशित हुए हैं।

शोध-प्रबंध

इधर पाँच वर्षों में राजस्थानी साहित्य पर कई शोध-छात्रों ने शोध-प्रबंध लिखे हैं, जिनमें से डा० हरिशंकर 'हरीश' का 'आदि कालीन हिन्दी जैन साहित्य' नामक शोध-प्रबन्ध 1000 से भी अधिक पृष्ठों का है। इसमें आदिकाल की जैन रचनाओं की अच्छी विवेचना दी गई है। यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। दूसरा उल्लेखनीय शोध-प्रबन्ध डॉ० हीरालाल महेश्वरी (कलकत्ता वाले) का है, जिसमें सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दी के राजस्थानी साहित्य पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। हिन्दुस्तानी अकादमी से श्री जगदीशप्रसाद का 'डिंगल साहित्य' नामक शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है, पर उसमें नई जानकारी नहीं है, केवल प्रकाशित ग्रन्थों का विवरण अपने ढंग से वर्गीकृत करके दे दिया गया है।

श्री मोहनलाल जिज्ञासु 'चारणी राजस्थानी साहित्य,' पर शोध-प्रबन्ध लिख रहे हैं और कई अन्य विद्वान राजस्थानी साहित्य के विविध अंगों पर शोध-कार्य कर रहे हैं।

राजस्थानी गद्य बहुत प्राचीन और विशाल है। इसके सम्बन्ध में डा० शिवस्वरूप शर्मा 'अचल' ने शोध-प्रबन्ध

लिख कर डॉक्टरेट प्राप्त किया है । यह ग्रन्थ सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट से प्रकाशित हो रहा है । अजमेर के श्री राधेश्याम त्रिपाठी 'डिंगल गद्य' पर शोध-प्रबन्ध लिख रहे हैं । प्राचीन राजस्थानी जैन गद्य के कुछ नमूने मुनि जिन विजय के 'प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ' में प्रकाशित हो चुके हैं । इसमें 'पृथ्वी चन्द्र वाग विलास' ग्रन्थ अत्यंत महत्वपूर्ण है और 'उपदेश माला' 'बाला-बोध', 'नासकेत री कथा', 'षाष्टि शतक बालावबोध' आदि कई प्राचीन गद्य ग्रन्थ बड़ौदा, लंदन व जर्मनी से छप चुके हैं। 'अचल दास खीची' और 'राव रतन री वचनिका' ये दो 'बचनिका' ग्रन्थ राजस्थानी गद्यपद्यमय चम्पू शैली के हैं और दोनों प्रकाशित हो चुके हैं। सत्रहवीं शताब्दी का 'दलपत विलास' नामक राजस्थानी गद्य में लिखा हुआ जीवन चरित्र और उसके बाद की ऐतिहासिक बातें, ख्यातें, तथा लोक कथाएँ और सभा शृंगारादि वर्णन संग्रह, राजस्थान साहित्य संग्रह आदि राजस्थानी गद्य के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें तुकान्त गद्य बड़ा ही सरस है।

राजस्थानी लोक साहित्य भी बहुत समृद्ध है । राजस्थानी लोक गीतों पर डॉ० स्वर्णलता **अग्रवाल** शोध प्रबन्ध लिख चुकी हैं और सरिता जाजोदिया शोध-प्रबन्ध लिख रही हैं। राजस्थानी लोकनाट्य-'ख्यालों' पर भी एक शोध-प्रबन्ध लिखा जा चुका है। संत साहित्य पर भी शोध प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं।

विशालता और विशेषता

राजस्थानी साहित्य की परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी तक बड़े अच्छे रूप में चलती रही। तेरहवीं से अठारहवीं शती तक की सैकड़ों कवियों की हजारों रचनाएँ प्राप्त हो चुकी है, जिनकी संख्या बीस-पच्चीस लाख श्लोकों से भी अधिक होगी। जैन विद्वानों की रचनाएँ यदि धार्मिक, नैतिक तथा आख्यानक, इतिहास, भक्ति, वैराग्य सम्बन्धी अधिक हैं तो चारण कवियों ने वीर रस के गीत, दोहे और काव्यों का बहुत बड़ी संख्या में निर्माण किया है । कुछ डिंगल गीत बारह भागों में उदयपुर से और दो पुस्तकें बीकानेर से प्रकाशित हुई हैं। राजस्थानी गद्य में बातें और ख्यातें विशेष उल्लेखनीय हैं। सैकड़ों सुन्दर कहानियाँ-ऐतिहासिक प्रेम, नीति एवं व्रत-कथादि बातों के नाम से मिलती हैं। राजवंशों व व्यक्तियों का इतिहास 'ख्यातों' के नाम से प्राप्त है। राजस्थानी बातो' का एक संग्रह सत्ताईस वर्ष पहले सूर्यकरण पारीक ने निकाला था । अभी 'परम्परा' के विशेषांकों में कुछ 'बातें' प्रकाशित हुई हैं। 'मुंहणोत नैणसी की ख्यात' को मूल रूप में स्व० राजवरण जी ने छपाना आरम्भ किया था, पर वह अधूरा ही रहा। यह राजस्थान पुरातत्व मंदिर में छप रही है और प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। इसी तरह 'दयालदास की ख्यात' का मध्यम अंश अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर से प्रकाशित हुआ है। पृथ्वीराज वेलि, जैतसी छंद, राजस्थानी ख्याल ग्रंथों की सूची,

ढोला मारू रा दूहा, बाकींदास-ग्रथावला, हरिरस, राजरूप के रघुनाथ रूपक आदि राजस्थानी काव्य हिन्दुस्तानी अकादमी, नागरी प्रचारिणी सभा तथा एशियाटिक सोसायटी, बँगाल से प्रकाशित हुए हैं। प्राचीन जैन रचनाओं के कई संग्रह तथा ग्रन्थ गुजरात से भी निकले हैं। हमारे सम्पादित ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह 'समय सुन्दर कृति कुसुमांजलि' आदि कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर जोधपुर से सूरज प्रकाश, रघुवर जसप्रकाश, भक्तमाल, राजस्थानी गद्य संग्रह (भाग 1 और 2), राजस्थानी ग्रंथ सूची, वीर वाणी आदि ग्रंथ छप चुके हैं। राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता व बँगाल हिंदी मंडल ने भी संग्रह एवं प्रकाशन का अच्छा कार्य किया है। सोसाइटी से हरिरस, राजस्थानी लोकगीत-भाग एक और दो, राजस्थानी कहावतें एवं मंडल से वीर सतसई, राजस्थानी कहावतें आदि ग्रन्थ छपे हैं।

राजस्थानी साहित्य-सेवी संस्थाएँ

राजस्थानी साहित्य के संबंध में कई संस्थाएँ उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। बीकानेर के सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट से 'राजस्थान भारती शोध पत्रिका' निकलती है एवं 'राजस्थानी का विशाल शब्द-कोश' कई वर्षों से तैयार हो रहा है। मुहावरों का कोश भी श्री मुरलीधर व्यास तैयार कर रहे हैं। कहावतों के दो भाग स्वामी जी व व्यास जी ने सम्पादित किए थे, जो कलकत्ता की राजस्थानी साहित्य परिषद् से प्रकाशित हुए हैं। व्यास जी का राजस्थानी कहानी संग्रह, 'बरस गाँठ' के नाम से एवं श्रीलाल जोशी का राजस्थानी उपन्यास 'आमै पटकी' उपर्युक्त इन्स्टीट्यूट से प्रकाशित हुआ है। श्री नानूराम संस्कर्ता का 'कलायण' नामक ऋतुकाव्य भी पहले प्रकाशित हुआ था। अभी इस संस्था को भारत एवं राजस्थान सरकार से राजस्थानी ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ सहायता मिली है। अतः तीस ग्रन्थ कई प्रेसों में छप रहे हैं। नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर से भी कुछ राजस्थानी ग्रंथ छपे हैं।

बीकानेर के भारतीय विद्या मंदिर के नव-स्थापित शोध-संस्थान से संत-साहित्य और लोक-साहित्य के संग्रह एवं सम्पादन का काम अच्छा चल रहा है। जोधपुर के 'राजस्थानी शोध संस्थान' और 'पीपल प्रकाशन' से 'परम्परा' नामक पत्रिका एवं 'साँझ', 'दुर्गादास', 'दोहा संग्रह', 'डिंगलकोशादि' छपे हैं। श्री सीताराम लालस का राजस्थानी व्याकरण पहले प्रकाशित हुआ था। अब उनका राजस्थानी शब्दकोश भाग 1 प्रकाशित होने जा रहा है। 'राजस्थानी साहित्य परिषद्' से श्री मनोहर शर्मा द्वारा सम्पादित 'वरदा' नामक महत्त्वपूर्ण पत्रिका निकलती है। उदयपुर के राजस्थान-विद्यापीठ के 'साहित्य-शोध-संस्थान' से 'शोध पत्रिका' प्रकाशित होती है एव अनेकों ग्रन्थ निकल चुके हैं। जोधपुर के 'राजस्थान पुरातत्व मंदिर' से मुनि श्री

जिनविजय के तत्वावधान में संस्कृत, हिंदी एवं राजस्थानी के पच्चीस, तीस प्राचीन ग्रन्थ निकल चुके हैं, जिनमें बांकीदास री वाताँ, नैणासी ख्यात, रघुवर जस प्रकाश (छन्द शास्त्र), राजस्थानी गद्य संग्रहादि उल्लेखनीय हैं। पिलानी के डॉ० कन्हैयालाल सहल (जिन्होंने राजस्थानी कहावतों पर शोध-प्रबंध लिखा है और वह प्रकाशित भी हो चुका है) अभी राजस्थानी लोककथाओं के अभिप्रायों पर लिख रहे हैं, एवं 'मरु-भारती' पत्रिका निकालते हैं। आपके निर्देशन में कई शोध-स्नातक राजस्थानी राम चरित, पाबूजी का पवाड़ा, राजस्थानी दूहा आदि विषयों पर शोध-कार्य कर रहे हैं। राजस्थानी भाषा प्रचार सभा, जयपुर से 'रावत सारस्वत' 'मरुवाणी' नामक राजस्थानी मासिक पत्रिका, रतनगढ़ से अद्‌भुत शास्त्री 'कुरजां', और 'कवि-कल्पना' किशोर कांत 'ओलमो' नामक राजस्थानी भाषा के पत्र निकाल रहे हैं। राजस्थानी साहित्य अकादमी, उदयपुर से 'मधुमती' पत्रिका निकालने लगी है। अकादमी के राजस्थानी विभाग से शीघ्र ही कुछ ग्रन्थ निकलने वाले हैं।

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से स्थानकवासी कवि जयमल जी की राजस्थानी रचनाओं का एक संग्रह 'जयवाणी' के नाम से गत वर्ष प्रकाशित हुआ था। इस वर्ष जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, कलकत्ता से तेरापंथी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भीखण जी की रचनाओं का संग्रह 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' प्रकाशित हुआ है। 'आचार्य चरितावली' (भाग 2) में इस सम्प्रदाय के आचार्यों की ऐतिहासिक राजस्थानी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इस ग्रन्थ का प्रथम भाग और 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' का तीसरा भाग छपने वाला है। फुटकर रूप से और भी अनेक राजस्थानी नए व पुराने ग्रंथ विभिन्न संस्थाओं और लेखकों द्वारा प्रकाशित हुए हैं, जिनमें रानी लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत के 'राजस्थानी लोक गीत' 'राजस्थानी दोहा संग्रह', 'माँझल रात' आदि कथा-संग्रह उल्लेखनीय हैं। चारण कवि श्री नाथूदीन की 'वीर सतसई' गिरधारीसिंह पड़िहार का कविता संग्रह, डा० रघुवीरसिंह द्वारा सम्पादित 'वचनिका रतन महेस दासोत री' (नया संस्करण) आदि महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हैं।

हस्तलिखित राजस्थानी ग्रन्थों की सूचियाँ

डा० एल० पी० तेसीतोरी ने एशियाटिक सोसाइटी की ओर से जोधपुर और बीकानेर के हस्तलिखित राजस्थानी ग्रन्थों के तीन केटलॉग प्रकाशित करवाए थे। उसके बाद अनूप संस्कृत लायब्रेरी, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर, इंडिया आफ़िस लायब्रेरी, लंडन से राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्र प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशित ग्रन्थों की सूची 'मरुवाणी' में प्रकाशित हुई थी, और जनसम्पर्क विभाग से प्रकाशित राजस्थान ग्रन्थ की सूची में भी राजस्थान

[शेष पृष्ठ 74 पर]

हिंदी में वर्तनी की एकरूपता

● विश्वनाथ अय्यर

राष्ट्रभाषा हिंदी में एकरूपता लाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। विद्वान् इस संबंध में अपनी सम्मति और सुझाव दे रहे हैं। अखिल भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ की अपनी योजना है। भारतीय हिंदी परिषद् भी इस समस्या पर गम्भीरता से विचार कर रही है। पत्रिकाएँ अपनी-अपनी नीति निर्धारित कर रही हैं। इस संक्रांति-दशा में मैं इस समस्या पर द्राविड़-भाषा-भाषियों का सामान्य दृष्टिकोण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। वर्तनी की एकरूपता के निर्णय से पहले हिंदी-भाषा पंडितों को दक्षिण की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

हिंदी भाषा के जिन वर्णों की वर्तनी में कुछ अन्तर है वे ये हैं—क, ख, ग, ज, ड, ढ, फ, ं (अनुस्वार) और ँ (अनुनासिक)। इनमें हर एक के दो-दो रूप हैं—बिंदुयुक्त तथा बिंदुरहित। दोनों स्वरूपों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :

कमल, रखा, गंगा, जल, डाकू, ढक, फल
क़लम, ख़त, ग़ौर, मज़ा, साड़ी, पढ़ा, साफ़

वर्तनी का यह अन्तर भाषा की शुद्धि को बनाए रखने के लिए किया जाता है। परन्तु विशेषज्ञों को छोड़कर अन्य लोग इन वर्णों का असली स्वरूप मुश्किल से ही समझ पाते हैं। आम तौर पर हिंदी-भाषी और अहिंदी भाषी लोग शब्दों का व्युत्पत्ति-क्रम पढ़ने या पहचानने का कष्ट नहीं उठाते। हिंदी जिन प्रान्तों की जनता की भाषा नहीं है वहाँ तो यह समस्या कहीं अधिक उलझ जाती है। भाषा-विज्ञान के नियमों के अनुसार लोग सरलता एवं समानता के द्वारा अभेद की ओर अधिक झुकते हैं। हिंदीतर भाषी लोगों को उपर्युक्त जोड़ों के वर्णों का परस्पर भेद बड़ी मुश्किल से ज्ञात होता है। यद्यपि अनुभव एक बड़ा आचार्य है तो भी यह अन्तर पहचानना और लेख-शैली में सुरक्षित रखना हिंदीतर भाषियों के लिए अत्यंत कठिन है।

अन्य भाषाओं में केवल प्रसंग के अनुसार एक ही चिह्न से कई ध्वनियाँ अभिव्यक्त की जाती हैं, जैसे–अँग्रेज़ी में। उदा० ganges, gigantic। यों इस प्रकार एक ही ध्वनितत्त्व कई वर्णों से अभिव्यंजित है—cat, kite, cold, sky। इस क्रम को सर्वथा शुद्ध नहीं कहा जा सकता। ध्वनियों के उच्चारण के लिए उचित लिपि अनिवार्य है। परन्तु जहाँ भेद अत्यंत सूक्ष्म है, वहाँ अनुभव और जनसम्पर्क से हम सही उच्चारण सीख सकते हैं। यह तर्क उठ सकता है कि लिपियाँ बिन्दुयुक्त एवं बिन्दुरहित रूप से लिखी जाएँ। कहाँ कैसी लिपि हो, इसका निर्णय हिंदी-भाषियों के उच्चारण से हो सकेगा। मगर यह तर्क भी संगत नहीं है। मान लीजिए कि कोई हिंदीतरभाषी सज्जन जिस हिंदी-भाषी के मुँह से पहले पहल 'मजा' शब्द सुनता है वह 'ज' प्रधान 'मजा' शब्द ही कहता है। दूसरा हिंदी-भाषी बिन्दुयुक्त 'ज़' का उच्चारण करता है। बस, गड़बड़ी शुरू हो जाती है कि शुद्ध क्या है, अशुद्ध क्या है।

लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दोनों तरीकों का प्रयोग करते हैं। प्रेस में छपाई भी दोनों ढंग से चलती है। करोड़ों लोग सीखते रहते हैं। अतएव सुविधा को भी भाषा की वर्तनी का एक आधार मानना ही चाहिए। आखिर हिज्जे का कोई बड़ा महत्त्व तो है नहीं। अँग्रेज़ी को ही लीजिए। अमरीका की अँग्रेज़ी इंग्लैंड वालों के लिए उपहास की चीज़ है। फिर भी विलायती लोगों को अमरीका के अँग्रेज़ी-ग्रन्थों का सम्मान करना ही पड़ता है। मेरा मतलब यह नहीं कि हिंदी वर्तनी का स्वरूप विकृत कर दिया जाए परन्तु जहाँ तक हो सके, लेखन-प्रणाली सरल होनी चाहिए।

प्रस्तुत लेख में चर्चित वर्णों के जोड़ों में से एक-एक पर विचार किया जा रहा है।

(1) क–क़

'क़' लिखने का मतलब होता है उच्चारण में थोड़ा-सा अन्तर दिखाना और मूलभाषा अरबी या फ़ारसी के हिज्जे हिंदी में भी दुरुस्त रखना। लेकिन हिंदी में जब विदेशी शब्द आते हैं तब वे हिंदी-मय हो जाते हैं। हिंदी-विद्यार्थी 'क़सम' के 'क़' और 'कसरत' के 'क' में बड़ा फ़रक नहीं देख पाते। 'मौक़ा' और 'हिमाक़त' में बिन्दु लगाने का नियम तो है। लेकिन व्यवहार में यह कम ही दिखाई देता है। स्मरण रखने की बात है कि हिंदी-भाषी प्रदेश के लोग अरबी-फ़ारसी से दूर हैं। वे हिंदी-शब्दों को हिंदी शब्दों के रूप में ही देखा करते हैं। भाषा-विज्ञान के विद्यार्थियों को छोड़ साधारण विद्यार्थी हर एक शब्द के मूलभाषा-रूपों पर ध्यान नहीं दे सकता। उधार के शब्दों की सामान्य प्रवृत्ति यह होती है कि वे जिस भाषा में विदेशी शब्दों के रूप में हिलमिल जाते हैं उसकी आत्मा के अनुसार उनमें थोड़ा-सा परिवर्तन भी होता है। विदेशी-दीर्घान्त-शब्द मलयालम में ह्रस्वान्त हो

जाते हैं—कचहरी-कच्चेरि, मौलवी-मौलवि आदि।

(1) ख—ख़

'क' और 'क़' के उच्चारण में जितना प्रयत्नभेद है उससे भी कम उच्चारण-भेद का अनुभव 'ख' तथा 'ख़' में होता है। इस अन्तर का कोई सक्रिय प्रभाव छन्द या अन्य प्रसंग पर नहीं पड़ता है।

(2) ग—ग़

ग़ुलाम—गड़बड़ी

'ग' के नीचे बिन्दु का प्रयोग फ़ारसी-अरबी शब्दों में ही दिखाई देता है। 'ग' अल्पप्राण मृदुघोष ध्वनि है, जिसके उच्चारण में किसी ज़ोर की संभावना नहीं है। हिंदी में प्रचलित विदेशी शब्दों की मूल ध्वनियों पर सिर्फ़ थोड़े-से भाषा-वैज्ञानिक ध्यान देते हैं। ऐसी दशा में 'ग' के नीचे बिन्दु का प्रयोग बहुत जरूरी नहीं जान पड़ता।

(3) ज—ज़

जाना—ज़रूरत

यह जोड़ा पूर्वोक्त वर्णों के जोड़ों से कुछ भिन्न है। 'ज' का उच्चारण सामान्य ही है। 'ज़' का उच्चारण 'Z' के समकक्ष है। 'Z' अब अरबी-फ़ारसी की ध्वनि के रूप में ही नहीं, अँग्रेज़ी की एक मुख्य ध्वनि के तौर पर भी प्रयुक्त होता है। बोलचाल में 'ज़' का उच्चारण प्रायः 'ज' के रूप में भी होता है। 'कागज', 'मेज' आदि शब्द आम तौर पर चलते हैं। 'ज़' का 'ज' रूप द्राविड़ भाषाओं के कई उधार-शब्दों में मिलता है। उदा०—जोर, जमींदार (तमिल व मलयालम)। इन द्राविड़ भाषाओं में इस ध्वनि के रहने का परिणाम यह हो सकता है कि द्रविड़-भाषा-भाषी लोग हिंदी के 'ज़' ध्वनि वाले वर्णों की जगह 'ज' का प्रयोग करें। अतएव 'Z' का उच्चारण सुरक्षित रखना ज़रूरी है। इसके लिए कोई नया लिपि चिह्न बना लेना ही बेहतर है। या तो नया लिपि-चिह्न बनाना पड़ेगा या वर्तमान 'ज' उच्चारण से सर्वत्र संतुष्ट रहना पड़ेगा।

(4) ड—ड़ तथा ढ—ढ़

'ड' एवं 'ढ' विदेशी ध्वनियाँ नहीं हैं। वे हिंदी-ध्वनियाँ हैं जिनका प्रयोग तत्सम और तद्भव शब्दों में समान रूप से होता है। बिन्दुयुक्त 'ड़' तथा 'ढ़' का उच्चारण लघुतर प्रयत्न से होता है

---

(1) दो लाख वर्ष बाद—(एक ग्रन्थ का नाम—प्र० राजपाल एण्ड सन्स) खाली मेज़ की ओर निहारते रहे (दो लाख वर्ष बाद पृ० 26) 'ख़ाली' शब्द ही उर्दू-हिंदी कोष में मिलता है।

(2) आपका ग़ुलाम हूँ (मधुमंजरी)। गड़बड़ी का एक और कारण (हि०सा० का इतिहास)।

(3) किन्तु **ज़रा** सोचिए, यह इसका तार्किक परिणाम ही है।
(दो लाख वर्ष बाद।)

(4) दे० हिंदी व्याकरण—(कामता प्रसाद गुरु)।

हिंदी-व्याकरण में इनके लेखन और उच्चारण के विषय में नियम हैं।

(1) ड–ढ के कुछ उदाहरण :—

कई बार मुझे **डाँटने** का अवसर पाकर (बड़े भाई साहब—प्रेमचन्द)।

घोड़े मनुष्य आदि डूबने लगे (त्रिवेणी पृ० 13)।

सिगार को जगह-जगह **ढककर** रख दिया जाता था। (चीनी भाई—महादेवी वर्मा)।

महादेव कोढ़ी के वेष में बैल पर चढ़े राजा के पास आए (त्रिवेणी—पृ०10)

जहाँ तक तद्भव और ठेठ हिंदी-शब्दों की बात है, 'ड' व 'ढ' की यह उच्चारण-प्रणाली एवं लेखन-प्रणाली उचित है। परन्तु बहुत से लेखकों ने तत्सम-शब्दों के विषय में भी यह नियम चालू कर रखा है।

गूढ़ (वाङ्मय-विमर्श पृ० 318)।

'हाँ, न हटेंगे' **दृढ़ता** से कुलपुतों ने कहा।

तत्सम शब्दों में 'ढ़' के विशेष उच्चारण की सम्भावना नहीं है। अगर होती भी है तो प्रसंगवश और वक्ता की उच्चारण-प्रक्रिया के फलस्वरूप। ये तत्सम शब्द अन्य भारतीय भाषाओं में विशेषकर द्राविड़ भाषाओं में भी दिखाई देते हैं। उनका उच्चारण सीधे ढंग से होता है; द्राविड़-भाषाओं का थोड़ा-सा प्रभाव भी पड़ता है। वैसे 'ढ' द्राविड़ वर्ण ही है जो किसी समय आर्यभाषाओं में आ गया था। 'ढ' के नीचे बिन्दु का प्रयोग केवल उर्दू में होता हो तो कोई बात नहीं क्योंकि उर्दू में 'ढ़' अलग अक्षर है, लेकिन तत्सम शब्दों में 'ढ' का प्रयोग उचित नहीं लगता। किसी द्राविड़ भाषा में हम 'ढ' को ज़रा भी नहीं बदलते। 'गूढ' आदि तत्सम शब्दों में बिन्दुयुक्त प्रयोग भ्रामक ही हो सकता है। बिन्दुयुक्त 'ढ' (ढ़) मामूली 'ढ' की तुलना में न साधक है, न बाधक। वह भी एक मामूली व्यंजन ही है।

(6) फ–फ़

[1]फेरा–फ़ुरसत

'फ' जहाँ मुख्य रूप से तद्भव और देशी वर्ण है वहाँ 'फ़' अरबी ध्वनि है। 'फ़' का उच्चारण 'F' का सा है। इसके सहारे अँग्रेज़ी के भी बहुत से शब्द देवनागरी लिपि में लिखे जा सकते हैं। अँग्रेज़ी से परिचय के कारण दक्षिणभारत के अधिकांश विद्यार्थी 'F' उच्चारण से परिचित हैं। लेकिन इस चिह्न की विपरीत प्रतिक्रिया भी हुई है। बहुत से 'फ' ध्वनि के बदले 'फ़' का उच्चारण कर डालते हैं। 'फल' के लिए 'Fal' और 'फिर' के बदले 'Fir' कहते हैं। अतएव उचित यही है कि या तो 'F' के लिए कोई नया चिह्न बना लें या केवल वर्तमान 'फ' से संतुष्ट रहें और यथा-प्रसंग 'F' उच्चरित करें।

(1) सैनिक ने घोड़े की पीठ पर हाथ फेरा।
जज ने फ़ुरसत पाई।

(7) अनुस्वार और अनुनासिक

²गुंजाइश, मुँह

अनुस्वार तथा अनुनासिक के चिह्नों की अव्यवस्था हिंदीतर भाषियों को चक्कर में डाल देती है। कामताप्रसाद गुरु ने इन दोनों के प्रयोग के विषय में जो नियम बनाए हैं वे अत्यंत शिथिल हैं। उदाहरणार्थ हिंदी में अनुस्वार के बदले अनुनासिक लिखा जाता है। अनुस्वार का उच्चारण सानुनासिक होता है। 'वाङ्मय विमर्श' में प्रत्येक पद में सानुनासिकता दीखती है—'नहीं', 'जिसमें', 'कहानियाँ' आदि। उलटी बात भी मिलती है। आधुनिक टंकन-यंत्र में जो असुविधा है उससे प्रायः सारी पांडुलिपियाँ सानुस्वार लिखी जाती हैं। अनुनासिकता कम रहती है। आजकल छपनेवाली पुस्तकें प्रायः टंकित पांडुलिपि पर ही आधारित हुआ करती हैं। अतएव अनुनासिक की जगह पर अनुस्वार का प्रयोग सदोष घोषित नहीं हो पाता।

कहीं-कहीं पदांत अनुस्वार अगले-पदारंभ के व्यंजन को प्रभावित करता है। इसलिए अनुस्वार के बदले वर्ग का पंचम अनुनासिक वर्ण भी आता है, जैसे—गान्धीजी, कुण्ठा, पञ्चायत। इस प्रसंग में द्राविड़ भाषाओं की दशा उल्लेखनीय है। इन भाषाओं में अनुस्वार के बदले पंचम वर्ग ही आता है—'चारम्, पन्तयम्, शम्पलम्' आदि। इस प्रवृत्ति के कारण दक्षिणी लोगों के हिंदी लेखन में भी यह सदोष प्रणाली आ सकती है।

हिंदी लेखकों ने अनुनासिक और अनुस्वार के लिए अलग-अलग चिह्नों की आवश्यकता पर दो विशेष कारणों से ज़ोर डाला है। एक कारण है—मात्राभेद एवं दूसरा है अर्थ-भेद। सानुस्वार ह्रस्व गुरु होता है। सानुनासिक ह्रस्व स्वर तो 'गुरु' होने के बदले 'लघु' ही रहता है। यों 'हंस' शब्द का अर्थ कुछ होता है, 'हँस' का कुछ और। परन्तु छन्द-बन्धन की समस्या कठिन नहीं। इसमें कई जगह पर दीर्घ—'ई', 'ऊ', 'ए' और 'ओ' का उच्चारण ह्रस्व ही किया जाता है। सानुस्वार तथा सानुनासिक स्वर का उच्चारण-भेद तो अभ्यास से ही जाना जा सकता है। अतएव अनुस्वार और पंचम वर्ण का ऐच्छिक प्रयोग ही होना चाहिए—जैसे—धीरेंद्र और धीरेन्द्र। दोनों तरह लिखने की सहूलियत होनी चाहिए। कारण यह कि दक्षिणी भाषाओं में—ख़ासकर मलयालम तथा तमिल में संधि-प्रसंग पर अनुस्वार का स्थान अधिकतर वर्ग का पंचम वर्ण ग्रहण करता है। उदा०—पंकजाक्षन (मल०), तम्पटि (तमि०, हिंदी-दमड़ी) चंचलम् सुन्दरम् आदि।

---

(1) हिलने की गुंजाइश कम होती जाती है (हिंदी प्रचार समाचार)।
उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं (मधुमंजरी)।
संपादक ने **आपत्तियाँ** उठाईं (दो लाख वर्ष बाद)।

संक्षेप में निष्कर्ष ये हैं—

(1) क, ख, ग, ड, और ढ के नीचे बिन्दु का प्रयोग आवश्यक नहीं।

(2) 'ज़', 'फ़' के लिए या तो अलग चिह्नों का प्रयोग हो या 'ज', 'फ' से ही संतोष किया जाए !

(3) अनुस्वार से अनुनासिकता का बोध हिंदी में हो सकता है। अतएव विशेष अनुनासिक चिह्न हर जगह अलग लिखना ज़रूरी नहीं है।

वर्तनी में एकरूपता लाते समय ऐसे सुधारों का प्रयोग करने से हिंदी लिपि सारी भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि बन सकेगी। अब इन नियमों के पूर्णतया पालन से बहुतेरे इतर भाषा-भाषी झिझकते हैं। इन्हीं कारणों से पर्याप्त प्रगति नहीं हो पा रही है।

●

[पृष्ठ 68 का शेषांश]

के प्रकाशनों के नाम हैं। जैनगुर्जर कवियों के तीन भागों में हजारों राजस्थानी रचनाओं का विवरण है।

संक्षेप में, राजस्थानी साहित्य की वर्तमान प्रगति आशाजनक कही जा सकती है। मातृभाषा-प्रेमी कवि एवं लेखक विविध प्रकार के साहित्य का सृजन बड़ी तेज़ी से कर रहे हैं। संस्कृत, हिंदी, बँगला के अनेकों ग्रन्थों का राजस्थानी में गद्य एवं पद्य-अनुवाद हो रहा है। उनमें से गीता, मेघदूत, उमर खैयाम, जिनवाणी, बुद्धवाणी आदि के कुछ अनुवाद तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। गीतांजलि आदि के राजस्थानी ग्रन्थ छप रहे हैं। सैंकड़ों एकांकी, कहानियाँ तथा कविताएँ राजस्थानी में लिखी गई हैं। खण्ड काव्य और महाकाव्य भी लिखे जा रहे हैं। 'रामदूत' महाकाव्य तो छप भी चुका है। प्राचीन राजस्थानी रचनाओं का सम्पादन और प्रकाशन भी अच्छे रूप में हो रहा है। राजस्थानी भाषा की तीन चार पत्रिकाएँ और राजस्थानी साहित्य-संबंधी पाँच महत्त्वपूर्ण त्रैमासिक पत्र निकल रहे हैं और भविष्य में तो और भी अधिक प्रगति होती नज़र आ रही है। यदि राजस्थान सरकार राजस्थानी भाषा को अपने प्रांत की राजभाषा स्वीकार करले और शिक्षा का माध्यम बना दे तो थोड़े ही दिनों में शतमुखी प्रगति होगी और अब तक जो कमियाँ हैं वे सब पूर्ण हो जाएँगी।

●

ध्वनि-अनुरूप वर्तनी की समस्या

बाबूराम सक्सेना

भाषा के पिछले अंक (नवम्बर, 61) में इस विषय पर दो उपयोगी लेख प्रकाशित हुए हैं, एक श्री राजेन्द्र द्विवेदी का और दूसरा डा० हरदेव बाहरी का। पहले भी इन बातों पर विचार हो चुका है और आज से तीस पैंतीस वर्ष पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने कुछ मान्यताएँ स्थापित की थीं। भारतीय हिंदी परिषद् ने भी अपने अधिवेशनों में कई बार इस बात पर विचार किया और समय-समय पर 'कल्पना' आदि पत्रिकाओं में इधर ब्योरे-वार एक-एक सूक्ष्म विवरण को लेकर मनीषियों ने चर्चा की है और अपने मन्तव्य प्रकाशित किए हैं। यदि हिंदी की कोई सर्वमान्य मूर्धन्य संस्था एक सम्मेलन बुलाकर इस विषय पर सर्वांगीण निर्णय कर दे, तो हिंदी का उपकार ही होगा। केन्द्रीय सरकार इस विषय में यथेष्ट मदद कर सकती है और मुझे विश्वास है कि वह इसमें संकोच न करेगी। आज से पच्चीस-तीस साल पूर्व मैंने भी अपने विचार 'हिन्दुस्तानी' और 'सम्मेलन-पत्रिका' आदि में व्यक्त किये थे। केवल एक बात पर फिर विचार प्रकट कर रहा हूँ।

देवनागरी लिपि अक्षरात्मक है, ध्वन्यात्म नहीं, किन्तु उसको अब हम बदल कर ध्वन्यात्मक नहीं कर सकते। सबसे भारी भ्रम व्यंजन वर्णों के विषय में संभव है। उदाहरणार्थ **क** का अभिप्राय (मूल्य) कहीं **क+अ** (कमल) है तो कहीं केवल **क** (कि)। यदि ह्रस्व अकार स्वर की भी कोई मात्रा होती तो हम इतना कह कर समाधान कर लेते कि यदि व्यंजन के साथ स्वर-मात्रा लगी हो तो उस व्यंजन का मूल्य स्वर रहित समझना चाहिए। पर अकार की कोई मात्रा अभी तक नहीं खोजी जा सकी है और हमारी कठिनाई जहाँ की तहाँ मौजूद है। वर्णमाला को समष्टिरूप में देनेवाले माहेश्वर सूत्रों में भी यह समस्या उठी थी पर व्याकरणकार ने यह कहकर कि **ह्यवरट्** आदि सूत्रों में हकार आदि वर्णों में अकार उच्चारण के निमित्त है (हकारादिष्व-कारस्तूच्चारणार्थः) समाधान कर दिया। क्या हिंदी की वर्तनी में संशोधन कर हम कुछ भ्रम निवारण कर सकते हैं?

एक पुराना सुझाव यह है कि व्यंजन वर्णों को हम निःस्वर समझें और अकार को बराबर लेख में प्रकट करें (**कअमअलअ**)। इसका उल्लेख श्री रा० द्विवेदी ने किया है। इस सुझाव का कार्य में परिणत होना दुःसाध्य है।

यह भी प्रस्ताव किया गया था कि जहाँ अ का उच्चारण न होता हो वहाँ हल् का चिह्न लगाया जाया करे, जैसे **सकता** के स्थान पर **सक्ता** लिखा जाए

जैसा कि बोला जाता है। **र** वर्ण के कई रूप (र, ˚ ,׀, ‸—**रत्न, धर्म, प्रेम, ह्रास**) लेखन में प्रचलित हैं जो देवनागरी की वैज्ञानिकता पर कुठाराघात करते हैं, और इनमें ˚ (रेफ) सबसे अधिक भ्रम उत्पन्न करता है क्योंकि यह उच्चारण क्रम से न लिखा जाकर शब्द के अन्तिम अंश पर अंकित किया जाता है। जब व्यंजनों को ऊपर नीचे लिखने का क्रम था तब यह शायद ठीक भी था, पर आज जब व्यंजन अगलबगल लिखे जाते हैं, तब **कार्त्स्न्य, गर्हा** आदि में रेफ का प्रयोग भ्रम ही प्रस्तुत करता है और देवनागरी लिपि के विरुद्ध इस आरोप को बल देता है कि इस में एक ही ध्वनि को व्यक्त करने के लिये अनेक संकेत हैं और वे संकेत उच्चारण क्रम से नहीं अंकित होते। इसीलिए देवनागरी समिति ने 1953 में यह निश्चय किया था कि **र** का एक ही रूप रहे और विभिन्न रूपों के प्रकट करने के लिए हल् चिह्न का प्रयोग किया जाए (**धर्‌म, प्‌रेम, ह्‌रास**)। उत्तर प्रदेश में यह प्रयोग थोड़े ही दिन चल पाया था कि भिन्न भिन्न वर्गों द्वारा विरोध प्रकट होने लगा और इस संशोधन को छोड़ देना पड़ा। मुख्य तर्क यह था कि व्यवहार में लोग हल् का चिह्न लगाएँगे नहीं और शिष्ट शब्द रूपों (**धर्म, प्रेम, ह्रास**) के स्थान पर गँवारू शब्द रूप (**धरम, परेम, हरास**) घर कर लेंगे।

हिंदी के परिनिष्ठित (मानक) रूप में शब्दों के अन्त का अकार उच्चरित नहीं होता, केवल संयोग (संयुक्त व्यंजन) के उपरान्त सुनाई पड़ता है, विशेषकर तत्सम शब्दों में, यथा **राम, बात, किताब, हार** आदि में अन्तिम **अ** का उच्चारण नहीं है, किन्तु **कृष्ण, प्रद्युम्न** आदि में है। इसलिए लेखन में बिना संशोधन किए हम हिंदी के उच्चारण का, शब्दान्त **अ** के विषय में, यह नियम स्पष्ट रूप से समझा दें, तो हिंदी भाषा-भाषी अथवा हिंदीतर भाषा-भाषी को कोई कठिनाई नहीं होगी।

जटिल समस्या शब्द के मध्य के अकार की है जहाँ कभी तो उसका उच्चारण होता है, कभी नहीं। उदाहरणार्थ, **कमल** में **क** और **म** दोनों के अकार का उच्चारण होता है, किन्तु **बकता, सकता** आदि में **ब, स.** के अकार का **अ** तो बोला जाता है, किन्तु **क** का अकार नहीं। सूक्ष्म अध्ययन करके शायद यह कह सकते हैं कि विवृत अक्षर के व्यंजन के अकार का उच्चारण कहीं होता है, कहीं नहीं, पर संवृत अक्षरों में अकार का उच्चारण नहीं होता। ऊपर उदाहरणों **बकता, सकता** में **ब, स** संवृत अक्षर है, किन्तु **क** विवृत। **कमल** में **क** विवृत अक्षर है, पर उसमें अकार बोला जाता है, यद्यपि **बकता, सकता** में नहीं। इस भेद को भी अक्षर की मात्रा (लघु, गुरु) और शब्द के अक्षरों की संख्या के निर्धारण पर कसकर नियमबद्ध कर सकते हैं, पर वे नियम ऐसे होंगे जिनका बोध सामान्य जन (पाठक और वक्ता) को कराना मुश्किल होगा।

इसलिए मेरी समझ में तो यही आता है कि शब्द के मध्य में आने वाले

[शेष पृष्ठ 78 पर]

दफ़्तरी भाषा कैसी हो

गेंदालाल राजावत 'राजीव'

जब से हिंदी को संविधान में राष्ट्र-भाषा घोषित कर दिया गया है, तभी से यह समस्या भी उत्पन्न हो गई है कि क्या हिंदी सरलता से अँग्रेज़ी का स्थान ग्रहण कर सकेगी। मैं नहीं समझ पाता कि आख़िर यह ख्याल हमारे मन में उठता ही क्यों है? जब एक विदेशी भाषा हमारे यहाँ सौ वर्ष तक बड़ी आसानी से कार्य कर सकती है तो फिर देशी भाषा क्यों सफल नहीं हो सकती?

प्रश्न उठता है कि हमारी राष्ट्रभाषा का क्या रूप हो? इसका सीधा सा यही उत्तर है कि किसी भी साहित्य की भाषा का निर्माण उसके लेखकों और कवियों द्वारा होता है उसी तरह देश भाषा का निर्माण वहाँ की जनता द्वारा ही किया जाएगा। अगर हम ज़रा शान्ति से सोचें तो हमारे कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाली भाषा के रूप का भी उत्तर हमें मिल जाएगा। सही बात तो यह है कि कार्यालय की भाषा कार्यालय में काम करने वाले कर्मचारी स्वयं ही बनाएँगे।

अँग्रेज़ी का दफ़्तरी रूप अँग्रेज़ी के साहित्यिक रूप से कितना बदला हुआ है यह किसी से छिपा नहीं है। केवल एक बार हिंदी को पूरी तरह अपनाने की आवश्यकता है। हाँ, इसके पूर्व सभी कर्मचारियों को लिपि-ज्ञान व साधारण लेखन-शक्ति अवश्य अर्जित करनी होगी। हमें अपने दिलों को बड़ा करना

होगा कि हम हिंदी के इस रूप को साहित्यिक या वैज्ञानिक ढंग से आँकने का प्रयत्न न करें। जिस तरह आज दफ़्तरों की अँग्रेज़ी बाबुओं की अँग्रेज़ी कहलाती है उसी तरह अब आफ़िस की हिंदी बाबुओं की हिंदी जैसी वस्तु होगी। पर इतना अवश्य है कि जो हालत आज दफ़्तरी अँग्रेज़ी की है उससे कार्यालय की हिंदी का रूप ज़्यादा सुधरा हुआ और परिष्कृत होगा।

अतः हमें प्रारम्भ में तो ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो सभी लोगों की समझ में आ सकें। उसमें रोज़ के काम में आने वाले अँग्रेज़ी, उर्दू, देशी व अन्य प्रान्तीय भाषाओं के व्यावहारिक शब्दों का चुनकर प्रयोग किया जाए। ख़ास कर नोट तो बहुत ही सरल भाषा में लिखे जाने चाहिए। पत्रों में अगर कठिन भाषा भी प्रयुक्त की गई तो कुछ हद तक व्यावहारिक साबित हो सकेगी।

अक्सर देखने में आता है कि हम लोग किसी भी कार्यक्रम को पूरी तरह लागू नहीं करते। अतः वह न इधर का रहता है न उधर का। इस प्रकार हमारी अच्छी से अच्छी योजना असफल हो उठती है। अगर हिंदी को दफ्तरों में अपनाना है तो उसे पूरी तरह से अपनाना होगा। हो सकता है इससे कुछ समय के लिये कठिनाई महसूस हो, पर भविष्य के लिए वह काफ़ी सरल हो जाएगा।

हम उसे अगर अधूरेपन या केवल कुछ विभागों तक ही सीमित रखेंगे तो वह अपने सुचारु ढंग पर आने के लिए काफ़ी समय ले लेगी। फिर हम स्वभाव से ही 'कन्ज़रवेटिव' हैं, नूतन कार्यक्रम चाहे वह कितना ही स्वाभाविक और आसान क्यों न हो कुछ ज़्यादा ही अटपटा लगता है। लेकिन समय शीघ्र ही किसी भी कार्यक्रम को अपने स्वाभाविक रूप में ला बैठाता है।

अंत में यही निवेदन है कि प्रारंभ में नए बने हुए समासयुक्त शब्दों को काम में न लाया जाए ताकि कम पढ़े-लिखे या साधारण हिंदी जाननेवाले उनसे भय न खाएँ। आशा है भारत सरकार हिंदी को अपने स्वाभाविक रूप में प्रसारित करने का प्रयत्न करेगी। हिंदी हिंदी ही बनी रहे, न वह संस्कृत-बहुला हो और न अत्यधिक विदेशी शब्दों से लदी हुई।

●

[पृष्ठ 76 का शेषांश]

व्यंजन की वर्तनी उच्चारणानुकूल हो, तथा शब्दान्त के विषय में हम नियम बता दें और परम्परागत वर्तनी चलने दें।

मैं जानता हूँ कि इस सुझाव के विरोध में भी तर्क उपस्थित किए जा सकते हैं, जो मेरे विचार में अभी भी हैं पर उनका विवेचन अन्य मनीषियों का अभिप्राय जानने के उपरांत ही किया जा सकेगा।

●

भारतीय भाषा विद्

सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर

कांतिमोहन

पंडितों की परम्परा में महाराष्ट्र के प्राच्य विद्या-महार्णव डॉ० सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर का नाम शिखर पर आता है। भांडारकर महोदय उन महाराष्ट्रीय विद्वानों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो किसी कार्य-विशेष में जुट जाने पर उसी की सिद्धि को अपने जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। विद्या के क्षेत्र में ध्येय के प्रति समर्पण, चित्त की एकाग्रता और भगीरथ प्रयत्न के अभ्यास की दृष्टि से तिलक, भांडारकर, काणे, वामन, शिवराम आप्टे, रानाडे, राजवाडे, सातवलेकर आदि महाराष्ट्रीय विद्वानों को हम सहज ही मैक्समूलर, रूथ, विंटरनित्ज़ और गायगर जैसे महान् जर्मन विद्वानों की श्रेणी में रख सकते हैं। भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता, धर्म और इतिहास आदि विभिन्न शाखाओं में जर्मन या अँग्रेज़ विद्वानों द्वारा किए गए कार्य के महत्त्व को अस्वीकार करना या उसकी अवमानना करना कृतघ्नता है, किन्तु फिर भी यह सत्य है कि उनके इस प्रचण्ड पराक्रम से भारतीयों के मन में एक विनाशकारी हीनभावना का जन्म हुआ।' 'घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध' वाली कहावत हमारे यहाँ युगों तक चरितार्थ होती रही है। जिन लोगों ने इन पाश्चात्य विद्वानों का अनुचित खण्डन या छिद्रान्वेषण किए बिना अपने जीवन-पर्यन्त महार्घ श्रम से भारतीयों की इस हीन भावना को निकाल फेंकने का सफल प्रयास किया है उनमें सर भांडारकर का नाम अग्रणी है।

सर भांडारकर का जन्म सन् 1837 ई० में हुआ। इनके पिता का नाम गोपाल लाल भांडारकर था। गोपाल लाल भांडारकर ने मैट्रिक परीक्षा एलफ़िन्स्टन कॉलिज, बम्बई से पास की। इस परीक्षा

में इन्होंने सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार-'दक्षिणा' प्राप्त किया । इस कालिज में किशोर भांडारकर को उस समय के संस्कृत भाषा के महान पंडित गोविन्द शास्त्री लेले, अप्पाशास्त्री खाडिलकर और अनन्त शास्त्री पंढकर से संस्कृत भाषा का सूक्ष्म तथा गहन अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । बाल्य-काल से ही भारत की महान् सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के प्रति इनके मन में अगाध प्रेम था, जो इन गुरुजनों के सम्पर्क से दृढ़तर हो गया । मैट्रिक के बाद इन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय से क्रमशः एफ० ए०, बी० ए०, तथा एम० ए० परीक्षाएँ पास कीं ।

सन् 1864 में इन्होंने फ़ेलोशिप छोड़ कर हैदराबाद (सिंध) के एक विद्यालय में प्रधानाध्यापक का पद ग्रहण किया । इसके बाद बम्बई के एल्फ़िंस्टन कालिज में आप संस्कृत के सहायक प्रोफ़ेसर नियुक्त किए गए । कुछ दिनों बाद इस कॉलिज में प्रधानाध्यापक का स्थान खाली हुआ और सम्भावना इस बात की थी कि इस पद पर आपकी नियुक्ति कर दी जाएगी, किन्तु कालिज के अधिकारियों ने ऐसा न करके उसी कालिज में काफ़ी बाद में नियुक्त किए गए पीटर्सन नामक एक अँग्रेज़ को कालिज का प्रधानाध्यापक नियुक्त किया । इस घटना से इनके मन को क्लेश हुआ, किन्तु कुछ ही समय बाद आपकी नियुक्ति पूना के दकन कालिज में हो गई और कीलहॉन महोदय के उपरान्त आप इस कालिज में प्रोफ़ेसर बना दिए गए । भांडारकर महोदय इस कालिज में आ कर कीलहॉन जैसे असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् तथा शोधकर्ता के सम्पर्क से लाभान्वित हुए । भांडारकर महोदय की गणना कालिज के सर्वाधिक लोकप्रिय प्राध्यापकों में की जाती थी ।

एक महान् विद्वान् के रूप में आपकी ख्याति का प्रारम्भिक आधार आपका वह लेख माना जाता है जो 'इंडियन एंटीक्वैरी' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था । इस लेख में भांडारकर महोदय ने अनेक यूरोपीय विद्वानों के विभिन्न मतों का खण्डन करते हुए अकाट्य तर्कों और सबल प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया था कि पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' की रचना ईसा पूर्व दूसरी शती में की थी । इस स्थापना को मान्यता प्राप्त हो जाने के अनन्तर भांडारकर महोदय को यह बात प्रमाणित करने में सुविधा हो गई कि कृष्ण और 'श्रीमद्भगवद्गीता' की स्थिति ईसा से बहुत पहले की है । स्मरण रहे कि हमारे धर्म-शास्त्र, इतिहास-पुराण आदि की अनिश्चित स्थिति का लाभ उठा कर कुछ ईसाई मिशनरियों ने इस प्रकार का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था कि 'कृष्ण' 'क्राइस्ट' शब्द का ही अपभ्रंश रूप है और गीता बाइबिल के कुछ अंशों का अनुवाद मात्र है । भांडारकर महोदय ने पतंजलि के 'महाभाष्य' में कृष्ण और 'गीता' के संदर्भों का विवरण देते हुए इस भ्रांति का निराकरण किया ।

अपने अन्तिम समय में आप एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद पर काम कर रहे

थे। बम्बई सरकार ने प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के संशोधन-सम्पादन का एक स्वतंत्र विभाग खोला था और उसमें आपकी नियुक्ति की थी। इसी विभाग में कुछ दिनों बाद आप पीटर्सन महोदय के साथ प्रधान बनाए गए। यहाँ रह कर आपने अनेक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों का पांडित्यपूर्ण संपादन किया। सन् 1884 में आपने 'अर्ली हिस्ट्री ऑव् दकन' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में आपने दक्षिण के राजाओं का अत्यंत प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया है। दक्षिण के इतिहास पर इस पुस्तक को विशेष मान्यता प्राप्त है। 1913 ई० में आपने बूलर के साथ 'एनसाइक्लोपीडिया ऑव् इंडोआर्यन रिसर्च' में काम किया।

6 जुलाई सन् 1917 को बम्बई के गवर्नर लॉर्ड विलिंगडन के प्रयत्नों के फलस्वरूप 'भांडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट' की स्थापना की गई। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की लुप्त सामग्री को हस्तगत कर उसे सुसंपादित रूप में प्रकाशित करना है। इस संस्थान के तत्वाधान में सम्पन्न प्रथम 'ओरियंटल कान्फ्रेंस' के आप अध्यक्ष बनाए गए। बम्बई सरकार के प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के संशोधन-संपादन-विभाग तथा भांडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट में रह कर आपने जो महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य किया तथा अन्य सहयोगी शोधकर्ताओं को जो प्रेरणा दी, उसके कारण आपको शोध-कार्य में एक नवीन युग-प्रवर्तक माना जाता है।

सर रामकृष्ण का अनुसंधान-क्षेत्र अत्यंत विस्तृत था। वे विभिन्न विषयों में रुचि रखते थे और शोध के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा असाधारण रूप से बहुमुखी थी। इतिहास, पुराण, धर्म, दर्शन, पुरातत्त्व आदि अनेक विषयों में उनकी समान गति थी, और इन अनेक क्षेत्रों में उन्हें मान्यता प्राप्त थी। सर भांडारकर उस युग के कितने सम्मानित विद्वान् थे इसका पता हमें कुछ उच्चतम संदर्भ-पुस्तकों में आए हुए उनके संदर्भ से लगता है। 'भांडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना' ऐसे महान् विद्वान् का गौरवपूर्ण स्मारक है। सर भांडारकर का देहावसान जून 1925 ई० में ऋषि-पंचमी के दिन हुआ था। इस संस्थान में यह दिन उनकी श्राद्ध-तिथि के रूप में मनाया जाता है और देश के मर्द्धन्य विद्वान् स्वर्गीय सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हैं। 'वाङ्मय-श्राद्ध' के रूप में इस दिन यह संस्थान अपने वर्ष भर के प्रयत्नों का विवरण प्रस्तुत करता है। इसी संस्थान ने भांडारकर महोदय के समस्त ग्रन्थों को 'कलेक्टेड वर्क्स ऑव् सर आर० जी० भांडारकर' शीर्षक से चार भागों में (अँग्रेज़ी में) प्रकाशित किया है। इसके तीन खंडों (2,3,4) का सम्पादन मराठी भाषा के यशस्वी सम्पादक स्व० नारायण बापू उतगीकर जी ने किया था। प्रथम खंड का प्रकाशन सबसे अन्त में किया गया था, और बीच में ही श्री उतगीकर महोदय का देहान्त हो जाने के कारण श्री

वासुदेव गोपाल परांजपे ने इसे पूर्ण किया । संस्थान भांडारकर की एक प्रामाणिक जीवनी भी, इस ग्रंथ-माला के पाँचवें भाग में, प्रकाशित करना चाहता था, और जीवनी लिखने का यह कार्य सर रामकृष्ण के सुपुत्र कलकत्ता-निवासी प्रो० डी० आर० भांडारकर को सौंपा गया था, किन्तु प्रो० भांडारकर की लम्बी बीमारी के कारण यह सम्भव न हो सका ।

सन् 1877 में आपने संस्कृत तथा उससे निःसृत अन्य भाषाओं पर सात अत्यंत विद्वत्तापूर्ण भाषण दिए थे, जो बाद को 'विल्सन फ़ाइलॉलॉजिकल लेक्चर्स ऑन संस्कृत ऐण्ड दी डिराइव्ड लैंग्वेजेज़' शीर्षक से 'कलैक्टेड वर्क्स' में तथा स्वतंत्र रूप में भी, प्रकाशित किए गए । चार सौ से अधिक पृष्ठों में फैले हुए इस भाषा-विषयक प्रामाणिक विवेचन से ज्ञात होता है कि भाषा शास्त्र पर उनका असाधारण अधिकार था । इन भाषणों से यह भी प्रतीत होता है कि सर भांडारकर इस विज्ञान की अद्यतन प्रगति से अपना सम्पर्क बनाए रखते थे । इस विषय में एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए —सर रामकृष्ण को आज के संकीर्ण या विशिष्ट अर्थ में भाषा वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता । उनका प्रकांड पांडित्य तथा बहुमुखी कृतित्व भाषा-विज्ञान की सीमाओं में आबद्ध नहीं हो सकता था । इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उनके युग में भारतवर्ष में तो भाषा-विज्ञान का नाम ही इने-गिने लोग जानते थे । विदेशों में भी यह विज्ञान अपने शैशव में था । इस बात को दृष्टि में रखते हुए हम सर भांडारकर की गणना उस युग के शीर्षस्थ भाषाविदों में कर सकते हैं । 'विल्सन फ़ाइलॉलॉजिकल लेक्चर्स' के अध्ययन से विदित होता है कि सर रामकृष्ण संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं के महान् पंडित तो थे ही, अर्वाचीन उत्तरी भाषाओं—हिंदी, गुजराती पंजाबी, सिंधी, और बँगला तथा उड़िया आदि पूर्वी भाषाओं पर भी उनका असाधारण अधिकार था । अध्ययन की सुविधा के लिए भाषा-विषयक उनके योगदान को हम तीन भागों में रख सकते हैं:—

(क) वैयाकरणों का समय-निर्धारण; प्राचीन व्याकरण के अवशिष्ट रूपों का अर्वाचीन भाषाओं में शोध ।

(ख) संस्कृत के प्राचीनतम रूप से उन्नीसवीं शती तक के भाषा-विकास का क्रमबद्ध तथा प्रामाणिक इतिहास-लेखन ।

(ग) विभिन्न भाषाओं का अनेक दृष्टिकोणों से तुलनात्मक अध्ययन तथा ध्वनिविज्ञान, व्युत्पत्ति शास्त्र आदि की दृष्टि से भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रस्तुतीकरण ।

अत्यन्त खेद का विषय है कि स्व० भांडारकर महोदय की इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक का न तो अभी तक हिंदी में अनुवाद ही हुआ है और न हिंदी के भाषा-वैज्ञानिकों ने इसमें बिखरी प्रचुर एवं उपादेय सामग्री का उचित उपयोग ही किया है । भांडारकर महोदय के ग्रन्थों का हिंदी अनुवाद देश के इस मूर्धन्य विद्वान् के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि का द्योतक होगा । ●

शब्द-श्री

- ज्यौतिष या ज्योतिष
- पंजाबी बोलियाँ : परास और उत्स
- गणित शब्दावली की परम्परा

ज्यौतिष या ज्योतिष

रामशंकर भट्टाचार्य

आजकल कुछ लोग 'ज्योतिष' न लिखकर 'ज्यौतिष'[1] लिखते हैं। हिंदीविदों के साथ-साथ संस्कृतज्ञ भी 'ज्यौतिष' लिख रहे हैं। यह प्रवृत्ति कुछ वर्ष पहले नहीं थी और पहले के मान्य विद्वान् (भारत के सभी प्रान्तों के) 'ज्योतिष' ही लिखते थे। बँगाल, महाराष्ट्र तथा दक्षिणस्थ अन्यान्य प्रान्तों के सभी संस्कृत विद्वान् 'ज्योतिष' ही लिखते हैं, 'ज्यौतिष' नहीं। पता नहीं उत्तर प्रदेश में कुछ वर्षों से 'ज्यौतिष' शब्द का प्रचलन कैसे हो गया ? बिहार आदि में भी यह प्रवृत्ति अब देखी जा रही है। उत्तर प्रदेश में अनेक संस्कृतविद् आज भी 'ज्योतिष' ही लिखते हैं। आधुनिक शोधशास्त्री भी 'ज्योतिष' लिखते हैं।

मैंने यह भी देखा है कि संस्कृत ग्रन्थों के नवीन संस्करणों में 'ज्यौतिष' छपाने वाले विद्वान् सम्पादक मूल संस्कृत पाठ को बदल कर 'ज्यौतिष' लिख देते हैं। एक प्रसिद्ध शास्त्र के चिर-प्रसिद्ध नाम की आनुपूर्वी को इस प्रकार बदल देना अशोभनीय कार्य है। काशी में कुछ ज्योतिर्विद् 'ज्यौतिष—ज्यौतिषी' लिखते हैं, अतः यह विषय अवश्यमेव विचार्य है। चूँकि यह शास्त्र हिंदी में भी प्रचलित है और संस्कृत भाषानुमत प्रयोग भी यहाँ हिंदीभाषी को लेना होगा (शास्त्र नाम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है), अतः हिंदी के विशिष्ट विद्वानों को भी इस पर ध्यान देना चाहिए।

जो व्यक्ति यह समझते हैं कि 'ज्यौतिष' शब्द ही साधु है, 'ज्योतिष' नहीं, उनका कहना है कि 'ज्यौतिष' शब्द ही व्याकरण से बनता है, 'ज्योतिष' नहीं।

---

(1) इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि 'ज्यौतिष' शब्द 'ज्योतिर्विद्यावद्' अर्थ में भाषावृत्ति 4/2/59 में मिलता है, जिसको मैं भी ठीक मानता हूँ। ज्योतिर्विद्या या ज्योतिः शास्त्र के अर्थ में 'ज्यौतिष' शब्द असमीचीन है, यह मेरा पक्ष है।

'ज्योतिष' शब्द (जिसका अर्थ ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्मय पदार्थ है) से 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' (4/3/87) इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार अण् प्रत्यय करने से आदिवृद्धि होकर 'ज्यौतिष' पद बनता है और प्रचलित पाणिनीय प्रक्रिया से 'ज्योतिष' बनाने की सम्भावना नहीं होती। ज्यौतिषवादी यह भी कहते हैं कि व्याकरण से अनभिज्ञ होने के कारण ही लोग 'ज्योतिष' लिखते हैं।

इस पर हमारा वक्तव्य इस प्रकार है—

(क) वेदांगों का नाम (ज्योतिष एक वेदांग है) प्राचीन काल से चला आ रहा है, अतः पाणिनि व्याकरण से निष्पन्न न होने मात्र से ही वह शब्द (जो सर्वत्र शिष्ट प्रयुक्त है) अपशब्द न हो जाएगा।[1] हम बाद में 'ज्योतिष' शब्द के प्राचीन शिष्ट प्रयोगों को दिखाएँगे। इतने स्थलों में पाठ प्रमादजन्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। भारत के सभी प्रान्तों के सब शास्त्रों के विद्वान् भ्रमवश 'ज्योतिष' का प्रयोग चिरकाल से करते आ रहे हैं—ऐसा कहना सर्वथा असंगत होगा।

(ख) यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वैयाकरणों ने इस शब्द पर ध्यान नहीं दिया है। शरणदेव ने अपनी 'दुर्घटवृत्ति' में दो स्थान पर 'ज्योतिष' शब्द की सिद्धि दिखाई है (पृ० 91; 126)। 'प्रक्रियासर्वस्व' में नारायणभट्ट ने भी 'ज्योतिष' की सिद्धि दिखाई है (तद्धित खण्ड, पृ० 88)। 'दुर्घटवृत्ति' से ज्ञात होता है कि सुभूति, भवभूति आदि भी 'ज्योतिष' रूप को ही मान्य समझते थे। यदि यह 'ज्योतिष' शब्द अशुद्ध होता तो शरणदेवादि को इसको शुद्ध मानने के लिए आग्रह नहीं करना पड़ता, वे सरलता से कह सकते थे—'यह शब्द प्रमादजन्य है', 'यह कालदुष्ट अपशब्द है', 'कवि लोगों ने भ्रान्ति से ऐसा कहा है', 'यह छान्दस प्रयोग है' या 'यह प्रयोग केवल अमुक आचार्य का अनुमत है' इत्यादि। वस्तुतः इन वैयाकरणों ने देखा था कि 'ज्योतिष' शिष्टप्रयुक्त शब्द है, पर पाणिनि-व्याकरण में इसकी सिद्धि विशदरूप से नहीं मिलती, अतः किसी न किसी रूप में उन्होंने पाणिनिशास्त्र से इस शब्द की सिद्धि की है। वे समझते थे कि पाणिनि-अनुमत शब्द ही साधु है, अतः वे किसी न किसी प्रकार इस शब्द को पाणिनि संमत बनाना चाहते थे।

---

1. पाणिनि से अस्मृत शब्द असाधु है, यह चिन्ता असंगत है। यह निश्चित है कि पाणिनिस्मृत सभी शब्द साधु अवश्य हैं, पर पाणिनि से जो अस्मृत है वह साधु नहीं, ऐसा कहना पूर्वाचार्यों का ही विरोध करना होगा। सोचना चाहिए कि प्राक्पाणिनीय आचार्यों की स्मृति अप्रमाण क्यों है, जबकि स्वयं पाणिनि उनका प्रामाण्य मानते ही हैं। फिर 'ज्योतिष' तो पाणिनि के अनुसार साधु है, यह पाणिनि संप्रदाय के वैयाकरणों ने ही दिखाया है।

हम इस दृष्टि को नहीं मानते। संस्कृत भाषा के सभी शब्द पाणिनि द्वारा व्युत्पन्न नहीं हैं, और न कोई एक वैयाकरण ऐसा कर ही सकता है। पाणिनि से अस्मृत सहस्रों साधु शब्द हैं।

(ग) शायद किसी को यह संशय हो कि कुछ प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों में भी तो 'ज्यौतिष' का प्रयोग है, अतः यह शब्द अशुद्ध क्यों है ? उत्तर में वक्तव्य है कि आधुनिक अज्ञ संपादक-प्रकाशकों के द्वारा ऐसा ग़लत पाठ मुद्रित किया गया है। यथा, छान्दोग्य उपनिषद् (7/1/2) के शांकर भाष्य के एक आधुनिक संस्करण में 'ज्यौतिष' मुद्रित हुआ है, पर अन्यत्र प्रकाशित (तथा प्राचीन मुद्रित) संस्करणों में सर्वत्र 'ज्योतिष' पाठ मिलता है। काशी में ज्योतिष संबंधी प्राचीन ग्रन्थ (जो आजकल छप रहा है) में 'ज्यौतिष' पद छपाया जाता है, जबकि उस ग्रन्थ के प्राचीन हस्तलेख और मुद्रित पाठ में 'ज्योतिष' रूप मिलता है।

हमें यह स्पष्ट कहना है कि स्मृतियों और महाभारत के सब प्राचीन हस्तलेखों में 'ज्योतिष' पद ही मिलेगा, उसी प्रकार सूत्रग्रन्थों में भी। कोई भी व्यक्ति परीक्षा कर इसकी सत्यता देख सकता है। काव्य, नाटक आदि में भी यही बात है। पुराणों के प्राचीन मुद्रित संस्करणों में (जो बँगाल, महाराष्ट्र, दक्षिण में प्रचलित हैं) 'ज्योतिष' ही मिलेगा. हाँ अधुना मुद्रित कुछ पुराणों में 'ज्यौतिष' छपाया गया है, यह मैं देख चुका हूँ।[1]

(घ) ज्योतिष का प्रयोग मुण्ड उपनिषद् (1/1/5) में है यह वैदिक प्रयोग नहीं है; यदि होता तो इस उपनिषद् का कोई न कोई व्याख्याकार ऐसा अवश्य कहता। तैत्तिरीय उपनिषद् (1/1/2) में शिक्षा के स्थान पर 'शीक्षा' पद है, यहाँ शंकराचार्य ने कहा है कि यह छान्दस प्रयोग है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि सर्वत्र छान्दस प्रयोगों के लिए व्याख्याकार छान्दसत्व का उल्लेख अवश्य ही करता रहे, पर इतने व्याख्याकारों में कोई तो 'ज्योतिष' रूप को छान्दस कहकर 'ज्यौतिष' रूप को साधु लौकिक पद कहता। खेद है कि कहीं भी ऐसा नहीं मिलता है।

(ङ) ज्योतिर्विद्या संबंधी अनेक ग्रन्थों के नामों में भी 'ज्योतिष' शब्द ही मिलेगा, 'ज्यौतिष' कहीं नहीं मिलेगा (दे० शंकरबालकृष्ण दीक्षित कृत ग्रन्थ में उद्धृत अनेक ज्योतिर्विद्या संबंधी ग्रन्थों के नाम)। क्या कहीं भी किसी प्राचीन ग्रन्थ के नाम में 'ज्यौतिष' पद गुरुपरम्परा से पढ़ा जाता है ?

(च) अन्त में हम उन मुद्रित ग्रन्थों से 'ज्यौतिष' पद का उल्लेख करेंगे, जिनका मुद्रण प्रामाणिक माना जाता है या अकारण जिन ग्रन्थों में पाठभ्रष्टता की कल्पना नहीं की जा सकती है।

1. 'ललितसहस्र नाम' भाष्य में लिंग पुराण के कुछ श्लोक उद्धृत हैं; इन श्लोकों में भी 'ज्योतिष' ही पठित है (पृ० 160, निर्णयसागर संस्क०)।

(1) चरणव्यूह—(बर्लिन से प्रकाशित, पृ॰ 36) (इस ग्रन्थ के 1938 के चौखम्बा संस्करण में भी यही पाठ है)।

(2) वेदाङ्ग ज्योतिष—श्लोक 3 (इसका कोई भी प्राचीन मुद्रित संस्करण)।

(3) याजुष ज्योतिष–(आर्षज्योतिष का कोई भी प्राचीन संस्करण)।

(4) वराहमिहिरकृत वृहत्-संहिता।

(5) ऋक्प्रातिशाख्य वर्गद्वय वृत्ति पृ॰ 13 (मंगलदेवशास्त्रि संस्करण)।

(6) दुर्गाचार्यकृत निरुक्त टीका, पृ॰ 2 (आनन्दाश्रमसंस्करण)।

(7) ऋग्वेदभाष्यभूमिका (सायण-कृत) का प्राचीन संस्करण।

(8) याज्ञवल्क्यस्मृति 1/3 (वीरमित्रोदय टीका)।

(9) भाट्टदीपिकाप्रभावली, पृ॰ 44 (निर्णयसागर)।

(10) चौखम्बाप्रकाशित शब्द-कौस्तुभ (नवाह्निक) पृ॰ 11

(10) प्रस्थानभेद, पृ॰ 1 (मधुसूदनसरस्वती कृत)।

(12) मनु 4/19 (मेधातिथि टीका), इसके सब संस्करणों में 'ज्योतिष' पाठ है, इत्यादि।[1]

मेरे पास इस प्रकार के प्रयोगों का विपुल संग्रह है, जहाँ यह मुद्रण-प्रमाद नहीं कहा जा सकता है। विभिन्न शास्त्रों के विद्वानों का समान भ्रम होने का प्रमाण नहीं है, अतः 'ज्यौतिष' रूप सन्दिग्ध है। ज्यौतिष-वादी समझते हैं कि अण् प्रत्यय करने पर 'ज्योतिष' कैसे बन सकता है? पर 'ज्योतिष' रूप को हम अण् प्रत्यय से भी बना सकते है। क्या व्याकरण अनिष्ट शब्द की निष्पत्ति कर सकता है?

इस विषय में एक अन्य बात भी सोची जा सकती है। 'ज्योतिष' पद ऋक्परिशिष्ट में प्रयुक्त हुआ है (2/1/4, पृ॰ 924, वैदिक संशोधन-मण्डल संस्करण) हो सकता है, यहाँ 'ज्योतिष' का अर्थ ज्योतिः पिण्ड हो, अर्थात् ज्योतिस् शब्द की तरह 'ज्योतिष' शब्द भी हो और उपचार के द्वारा 'ज्योतिष' शब्द का प्रयोग ज्योतिर्विद्यापरक ग्रन्थ पर भी होता हो (यथा 'शारीरिकं भाष्यम्)। अथवा यह भी हो सकता है कि यहाँ 'ज्योतिष' शब्द 'ज्योतिस्+अच्' से बना हो और वह अच् प्रत्यय मत्वर्थीय हो, जिससे ज्योतिष का अर्थ ज्योतिर्मय पदार्थ प्रतिपादक शास्त्र से हो। दुर्घटवृत्ति, पृ॰ 91 में 'ज्योतींषि नक्षत्राणि अस्य सन्ति गणनीयत्वेन' कह कर इसी मत की पुष्टि की गई है। इस प्रकार 'ज्योतिष' शब्द की उपपत्ति सोची जा सकती है।●

---

1. ग्रन्थान्ताधिकेच (6/3/79) इस पाणिनिसूत्र की व्याख्या में सिद्धान्त कौमुदी में 'सुमुहुर्तं ज्योतिषम्' उदाहरण दिया गया है (तद्धितखण्डसूत्र संख्या 1010) यहाँ 'ज्योतिष'—पाठ सर्वत्र दीख पड़ता है। ज्योतिष = ज्योतिः शास्त्र (बालमनोरमा)।

पंजाबी बोलियाँ, परास और उत्स

विपिनचन्द्र बन्धु

कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, भारत वर्ष में शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसकी अपनी बोलियाँ न हों। किसी भी भाषा को सम्पन्न बनाने के के लिए बोलियों का प्रमुख और सक्रिय व्यापार रहता है। बोलियाँ भाषा की आत्मा होती हैं। अर्थाभिव्यंजना की मनोहारिता और सूक्ष्मतम भावों की विविधता बोलियाँ अपने पद-समूहों में समोए रहती हैं।

पंजाब की भाषा पंजाबी है। इस भाषा के अन्तर्गत मुख्यरूप से पाँच बोलियाँ हैं—1 दोआबी, 2 माझी, 3 मालवी, 4 लहँदी और 5 पहाड़ी। इन प्रधान बोलियों के भी अनेक भेद और उपभेद हैं जिनका परिचयात्मक विवरण यहाँ दिया जाता है।

1. दोआबी—

यह ब्यास और सतलुज के मध्य की बोली है और इस के तीन भेद हैं—जालन्धरी, होशियारपुरी और कपूरथली। इनका परास इस प्रकार है :—

(क) जालन्धरी—जालन्धर, मुकेरियाँ, दसूआ, नंगल और कर्तारपुर।

(ख) होशियारपुरी—होशियारपुर, नकोदर, गढ़शंकर और फ़िल्लौर

(ग) कपूरथली—कपूरथला की रियासत। इस पर जालन्धरी और अमृतसरी बोलियों का विशेष प्रभाव है।

2. माझी—

यह रावी और चनाब नदियों के बीच की बोली है और पंजाबी की केन्द्रीय बोली मानी जाती है। इसके चार भेद हैं जिनका परास इस प्रकार है:—

(क) लाहोरी—लाहोर, कसूर, शेखूपुरा, तलवंडी, गुजराँवाला और ईमनाबाद।

(ख) अमृतसरी—अमृतसर और तरनतारन का वर्गीय क्षेत्र।

(ग) गुरदासपुरी—गुरदासपुर, बटाला, जंडियाला और पठानकोट का दक्षिणी अंचल।

(घ) स्यालकोटी—स्यालकोट, वज़ीराबाद, डस्का, शकरगढ़, चविंडा, पसरूर, कंजरूड़ दत्तां और वीरम।

3. **मालवी—**

इसके तीन भेद हैं—लुधियानवी, पटियालवी और फ़िरोज़पुरी—

(क) लुधियानवी—लुधियाना, खन्ना, जगराँव और राजकोट।

(ख) पटियालवी—पटियाला, नरवाणा, भटिंडा, और कैथल।

(ग) फ़िरोज़पुरी—मोगा, फ़िरोज़पुर शहर और उसके आस-पास साढ़े आठ वर्गमील का परास।

4. **लहँदी—**

इस बोली के कई भेदोपभेद हैं और इस का परास पंजाबी की सभी बोलियों से अधिक है। इसके छः भेद हैं—पोठोहारी, धन्नवी, थली, झंगी, मुलतानी और डेरावाली। परास इस प्रकार है:—

(क) पोठोहारी—इसके छः उपभेद हैं—मीरपुरी, जेहलमी, गुज्जरख़ानी, रावलपिंडवी, हज़ारी और कैमलपुरी।

1. मीरपुरी का परास—मीरपुर, मंगला, अलीबेग, कल्लरी, चौमुख, सहँसा, सिरसावा, नाड़, कैणी, बल्ल, खुइरट्टा, पंजणी, समाहणी और कोटली।
2. जेहलमी—जेहलम, भिंबर, गुजरात, डिंगा, खारियाँ, काला और दीना।
3. गुज्जरख़ानी—गुज्जरखान, चोहा-भक्ताँ, तरक्की, सोहावा, दोमेली, धंगदे, बेवल, दुभेरनी, मंदरा, हरनाल, हरयाल, सुक्खो, डुढियाल, कहूटा और कौंतरीला—(केन्द्रीय पोठोहारी)।
4. रावलपिंडवी—रावलपिंडी, चकलाला, कोहमरी, वाह, टैक्सला (तक्षशिला) और हसन-अब्दाल (पंजा साहब)।
5. हज़ारी—हज़ारा, हरिपुर, ऐबटाबाद, नत्थागली, घोड़ागली, झिक्कागली और मानसेरा।
6. कैमलपुरी—कैमलपुर, टई, तलागंग, फ़तेजंग, थट्टा और बसाल।

(ख) [1]धन्नवी—इस का क्षेत्र धन्नी[2] कहलाता है और इसका परास इस प्रकार है:—चकवाल, भोण, भल्ला-करियाला, ततराल, डलवाल,

---

[1] न जाने क्यों, हार्नलि, बीम्स और ग्रियर्सन आदि भाषा-वैज्ञानिकों ने इस बोली (धन्नवी) की चर्चा नहीं की?

[2] यह वह क्षेत्र है जिसमें यक्ष-युधिष्ठिर के परस्पर प्रश्नोत्तर हुए थे (कटास का अमर कुंड), और जहाँ की धरती ने पद्मभूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा और डा० हरदेव बाहरी सरीखे प्रकाण्ड पण्डितों को जन्म दिया है।

दोम्यॅलि, कटास, चोहा सैदनशाह, कल्लर–कहार, नूरपुर सिहत्थी, डंडोत और करंगल (सुरमे का पहाड़) का उत्तरी अंचल।

(ग) थली–खीवड़ा, हरनपुर, मलकवाल, पिंडदादनख़ान, भेरा, म्याणी और खुशाब।

(घ) झंगी—झंग, मघियाणा, चिनयोट, शोरकोट, सरगोधा, गोजरा, लायलपुर, चकझूमरा और मिंटगुमरी।

(ङ) मुलतानी–मुलतान, मियाँवाली, मुज़फ्फ़रगढ़, खानेवाल और शुजाबाद।

(च) डेरावाली–डेरा ग़ाज़ीखां, डेरा इस्मईल खां, तहसील जामनगर तथा बन्नू–कोहाट का पूर्वी अंचल।

5. **पहाड़ी–**

इसके सात भेद हैं–डोगरी, कांगड़ी, कुल्लुई, चंबई, शिमलई, पाडरी और पुंछी।

(क) डोगरी–कठूआ, हीरानगर, साँबा बसोली, जम्मू, अख़नूर, सुन्दरबनी, रियासी, कटड़ा, ऊधमपुर, रामनगर, चनैणी, कुद्द, बटोत और रामबन।

(ख) कांगड़ी–नूरपुर, धर्मशाला, कांगड़ा, हमीरपुर, बैजनाथ-पपरोला और योगेन्द्रनगर।

(ग) कुल्लुई–कुल्लू, मंडी, मनाली और सुकेत।

(घ) चंबई–डलहौज़ी, चंबा और उसका उत्तरी अंचल।

(ङ) शिमलई–सोलन, शिमला, बघाट, नाहन, सिरमौर और विलासपुर।

(च) पाडरी–पाडर, पाँगी, लाहोल, डोडा और भद्रवाह।

(छ) पुंछी–सेहड़ा, राजोरी, मंगलदई, मेंढर और पुंछ।

कुछ विद्वानों ने इन पाँच बोलियों के अतिरिक्त इसी कोटि के अन्तर्गत कुछ सीमान्ती बोलियों को भी रखा है। जैसे-पूर्वी सीमा में पुआधी (लुधियाना के आसपास की) और अंबालवी; पश्चिमी सीमा में बहावलपुरी (सिंधी), बिलोची और पश्तो; उत्तरी सीमा में पहाड़ी और दक्षिणी सीमा में मेवाती, बाँगरी, हिसारी, राठी, भटियाली और करनाली आदि। हमारे विचार में उत्तर सीमांती पहाड़ी (कोहाला, मुज़फ़्फ़राबाद, गढ़ी और ऊड़ी) बोली के सिवा शेष तीनों (पूर्वी–पश्चिमी और दक्षिणी) सीमान्ती बोलियाँ पंजाबी की परिधि में नहीं आतीं, क्योंकि ये शुद्ध न होकर मिश्रित सी हो जाती हैं और इन पर क्रमशः पश्चिमी हिंदी, सिंधी और पश्तो का सीधा प्रभाव है। इसी लिए इस लेख में अंबाला, करनाल, हिसार, रोहतक, गुड़गाँव; कोयटा, चमन, बहावलपुर; नौशहरा और पेशावर की बोलियों के विषय में चर्चा नहीं की गई।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से पंजाब एक महत्त्वपूर्ण प्रदेश है। आर्यजाति का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद है जिसकी रचना पंजाब में हुई। ऋग्वेद के मंत्रों में 'दिवोदास, और 'सुदास' आदि तत्कालीन

राजाओं का वर्णन मिलता है। दिवोदास गान्धार (वर्तमान कंधार) का राजा था और सुदास सिंधुतट पर बसे आर्यों का राजा। गान्धार तब पंजाब में था जब पंजाब पंचाल कहलाता था। ऋग्वेद उस समय की बोल-चाल की भाषा में रचा गया, और उस समय बोल-चाल की भाषा प्राकृत थी। प्राकृत का अर्थ होता है स्वाभाविक या जन्मजात। जिस भाषा को बोलने के लिए किसी प्रकार के पठन-पाठन या किसी पुस्तक आदि की आवश्यकता न हो वह भाषा प्राकृत कहलाती है।

प्राकृत में रचे गए वेदमंत्र प्रारंभ में अक्रमस्थ थे। आर्यों ने उन्हें क्रम में रखा, उनका संस्कार किया-सुधार किया। तब मंत्रों की भाषा संस्कृत (सुधरी हुई) भाषा कहलाने लगी। धीरे-धीरे यह सुधरी हुई भाषा साहित्यिक रूप लेने लगी। कालान्तर में यह भाषा यास्क आदि भाषा-वैज्ञानिकों तथा व्याडि और पाणिनि आदि धुरन्धर वैयाकरणों के नियमन से व्यवस्थित और परिष्कृत हुई। फिर कुशल वार्त्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतंजलि ने इसे साहित्यिक रूप दिया। **देवासः** (वैदिक) का **देवाः** और **जनासः** (वैदिक) का **जनाः** आदि रूप संस्कृत रूप हैं—साहित्यिक रूप हैं जो आज हमें काव्य-ग्रन्थों में मिलते हैं।

यह सब कुछ हो जाने पर भी बोल-चाल की भाषा में कोई अन्तर नहीं आया। हाँ, यह अवश्य हुआ कि नए-नए शब्दों और नई-नई ध्वनियों के समावेश से यह (प्राकृत) दो धाराओं में बँट गई। एक वह जो साहित्यिक या संस्कृत भाषा समझी जाने लगी, और जिसे शहरी जनता—शिष्ट जनता प्रयोग में लाने लगी, और दूसरी वह जिसे जन-साधारण, देहाती अथवा अशिष्ट जनता बोलती ही थी। यह दूसरी प्राकृत (बोल–चाल की भाषा) कालान्तर में अपभ्रंश नाम से पुकारी जाने लगी। प्राकृत भाषा की यही दो धाराएँ (देहाती प्राकृत और शहरी प्राकृत) पंजाबी बोलियों का उत्स है—स्रोत है। इन्हीं दो प्राकृतों (धाराओं) को पाणिनि-शास्त्र में **भाषायामित्येके** और **छन्दसि बहुलम्** आदि स्थलों में यत्र-तत्र **भाषा** (शिष्ट प्राकृत) और **छन्द** अर्थात् वेद (अशिष्ट प्राकृत) की संज्ञा दे कर प्रस्तुत किया गया है।

दोनों प्राकृतों की शब्दावली में से कुछ शब्दों का नमूना प्रस्तुत है। पहले अशिष्ट प्राकृत को लेते हैं:—

अशिष्ट	**शिष्ट**	**अर्थ**	**परास**
अक्क	अर्क	आक	समस्त बोलियाँ
अखोड़	अक्षोट	अखरोट	पोठोहारी
अत्थरा	अस्थिरः	नटखट	पोठो०, मुल०, धन्नवी
अहुँ	अहम्	मैं	डोगरी
कुक्कड़	कुक्कुट	मुर्गा	लहँदी

अशिष्ट	शिष्ट	अर्थ	परास
गब्भे	गर्भे	बीच में	दोआबी
गुप्फ	गुल्फ	टखना	मीरपुरी
ग्रां	ग्राम	गाँव	पोठी०
चम्म	चर्म	चाम	लहँदी
तत्ता	तप्तः	गरम	,,
पक्खरू	पक्षालु	पक्षा	पोठो०
पिन्नी	पिण्डी	पिण्डली	,,
पील्ही, पेल्ही	पिपीलिका	चींटी	मीरपुरी, पुंछी
[1] पोश	पश्य	देख	पोठो०
बहुँ	बहु	बहुत	मीर०, पुं०
बुन्ह	बुध्न	नीचे	,, ,,
लूण	लवण	नमक	समस्त बो०
वच्छा	वत्सः	बछड़ा	लहँ०
वहुटी	वधूटी	नववधू	,,
सब्बे	सर्वे	सभी	लहँ०
सलूणा	सलवणः	पकी हुई भाजी	,, आदि ।

अब कुछ शिष्ट (शहरी प्राकृत) शब्दों का नमूना देखिए जिनका प्रयोग आज भी उसी रूप में होता है जिस रूप में प्रारंभ में होता था–

शब्द	अर्थ	परास
आसन	आसन	समस्त बोलियाँ
कज्जल	काजल	,,
करण्ड	छोटी डलिया	मीर०, डोग०
काणः	काना	समस्त बो०
कुम्भी	जलीय जीव	पोठो०
कूण	भीगी खाट में आई हुई काण	पोठो०
खण्ड	खाँड़	समस्त बो०
खल्ल	खाल, चमड़ा	,,
खोडः	लंगड़ा	मीर०, पुं०
गच्छ	जा	पोठो० पुं०
गण्ड	गाँठ, जोड़	पोठो०

[1] इस शब्द का प्रयोग गधों और घोड़ों पर माल ढोने वाले लोग करते हैं ।

शब्द	अर्थ	परास
गल्ल	गाल	माझी
गोणी	बोरी	धन्न०, पोठो०
चंग:	अच्छा, सुन्दर	,, ,,
चंगेरी	टोकरी	पोठो०, धन्न०
चेत:	याद	डोग०, मीर०
जातक	बालक	लहँ०
टंग	टाँग	सम० बो०
डोर	रस्सी, धागा	,,
ताप	ज्वर	पोठो०
त्रय	तीन	लहँ०
दात्री	दाँती, हँसिया	,,
पटोल:	गुड़िया का कपड़ा	सम०
पट्ट	रेशम	पोठो०
पाली	पंक्ति	,,
पित्तल	पीतल	सम०
पिप्पल	पीपल	,,
फाल	हल का लोहा	,,
फुल्ल	फूल	,,
भण्ड	भाँड़	लहँ०
भाण्ड:	बरतन	सम०
भेड	भेड़	,,
मन्द:	बुरा	,,
वेला	समय	सम०
स:	वह	कांगड़ी
हट्टी	दुकान	सम०
हड्ड	हाड़	लहँ०

●

गणित-शब्दावली की परम्परा

हरीश्वरप्रसाद सिन्हा

भारतीय वाङ्मय में गणित का स्थान बहुत ऊँचा रहा है और सभी विज्ञानों तथा कलाओं में यह सर्वोपरि माना जाता रहा है।

यथा शिखा मयूराणां
नागानां मणयो यथा।
तदवद् वेदांगे शास्त्राणां
गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥

(मोर के शीश पर कलँगी और नाग के फन पर मणि की तरह गणित वेदांग नामक विज्ञानों के ऊपर शोभायमान है)। —वेदांग ज्योतिष

रेखागणित और ज्योतिष में भारतीय विद्वानों की विशेष अभिरुचि थी। गणित में हिन्दुओं की सबसे बड़ी देन 'शून्य' की खोज, 'ऋण संख्याएँ' तथा 'स्थानिक मानवाली दशमिक पद्धति' हैं। दशमिक अंकन पद्धति भारत में पाँचवीं शताब्दी में ही अपना ली गई थी। आर्यभट्ट ने अपने गणित के ग्रन्थ में इस पद्धति को अपनाया था। इसी प्रकार बीजगणित में व्यापीकरण, त्रिकोणमिति में ज्या, कोज्या, फलन तथा ग्रेगरी श्रेणी और अनिर्धारित विश्लेषण का प्रारंभ भी भारत में ही हुआ।

हमारे प्राचीन गणितज्ञों की शब्दावली बहुत उन्नत थी। आज जब कि हमारे यहाँ वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण-कार्य हो रहा है तो इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों से पारिभाषिक शब्द एकत्रित किए जाएँ। नागरी प्रचारणी सभा द्वारा 'गणितीय शब्दावली' नामक पुस्तक में प्राचीन ग्रन्थों में आए हुए कुछ उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों को लेने का प्रयास अवश्य श्लाघ्य है, पर उसमें भी

अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण शब्द रह गए हैं जिन्हें लेना आवश्यक है।

प्राचीन भारत के गणितज्ञों में भास्कराचार्य (जन्म 1114 ई०) का स्थान प्रमुख है। इनकी सबसे महत्त्वपूर्ण खोज प्रथम और द्वितीय घात (सेकंड डिग्री) के अनिर्धारित समीकरणों को हल करने की व्यापक विधियाँ हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लीलावती' में बहुत-से गणितीय पारिभाषिक शब्द मिलते हैं जैसे समचतुर्भुज (रोम्बस), समान लंब-चतुर्भुज (ट्रपेजियम), अवधा (सेगमेंट), धनुष (आर्क), अपवर्तनांक (कॉमन फैक्टर), जात्य त्रिभुज (राइट एंगल्ड ट्राइएंग्ल), आसन्न मान (एप्रोग्जिमेट वेल्यू), सूक्ष्म भिन्न (प्रॉपर फ्रेक्शन) तथा स्थूल भिन्न (इमप्रापर फ्रेक्शन) आदि। इनके अतिरिक्त कुछ अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण गणितीय शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण के लिए 'लीलावती' में 'मूलप्रद अंक' ऐसे अंकों के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिनसे पूर्णांकों में मूल निकल सकें; 'अग्र' तथा 'शिर' शब्दों का किसी रेखा के सबसे ऊँचे बिन्दु के लिए एवं 'मूल' शब्द का किसी रेखा के सबसे निचले बिन्दु के लिए व्यवहार हुआ है। इसी प्रकार 'क्षेप' शब्द का प्रयोग जोड़ी जाने वाली संख्या के अर्थ में हुआ है।

भास्कर के प्रसिद्ध ग्रंथ 'बीज-गणितम्' में 'वर्ण' शब्द का प्रयोग अंक-गणितीय संख्याओं के लिए, 'रूप' शब्द का बीजीय संख्याओं के लिए तथा 'मूलानयन' का मूल निकालने के अर्थ में हुआ है।

हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य पर्याप्त-समृद्ध नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक हिंदी में वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण नहीं हो सका था। पिछले सत्तर वर्षों में इस दिशा में थोड़े बहुत प्रयत्न होते रहे हैं, परन्तु अभी तक हमारी वैज्ञानिक शब्दावली न तो पर्याप्त समृद्ध हो पाई है और न ही उसमें अभीष्ट परिशुद्धता एवं प्रामाणिकता आ पाई है। 1950-51 से केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय इस अभाव को पूरा करने के प्रयास में संलग्न है।

भारतीय भाषा में वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण का प्रथम प्रयास 1888 में बड़ौदा में हुआ था। इस कार्य के लिए महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने पचास हज़ार रुपए दान दिया। प्रो० गज्जर ने कई वर्ष तक यह कार्य किया तथा कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। परन्तु भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों के अभाव के कारण यह संस्था अभीष्ट सफलता प्राप्त न कर सकी।

वैज्ञानिक शब्दावली का दूसरा प्रयास बंगीय साहित्य परिषद् ने किया। इस संस्था ने खगोल, भूगोल और रसायन की शब्द सूचियाँ प्रकाशित कीं।

1898 में काशी नागरी प्रचारणी सभा ने ज्योतिष, भूगोल, गणित, अर्थ-शास्त्र, भौतिकी, रसायनशास्त्र और दर्शनशास्त्र की हिंदी शब्दावली के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी,

बाबू भगवानदास, पं० माधवराव सप्रे और बाबू ठाकुर प्रसाद जैसे विद्वानों के आठ साल से अधिक के अथक परिश्रम के पश्चात् यह कार्य पूरा हुआ। इस पारिभाषिक शब्दावली में 10,330 अँग्रेज़ी के तथा 16,269 शब्द हिंदी के हैं। इसमें पुराने ग्रंथों में आए हुए उपयुक्त शब्दों को ले लिया गया है और साथ ही कुछ नए शब्दों का भी निर्माण किया गया है, जैसे संसृति (कनवरजेन्स), अवकल (डिफरेन्शियल) तथा सारिणिक (डिटरमिनेन्ट) आदि।

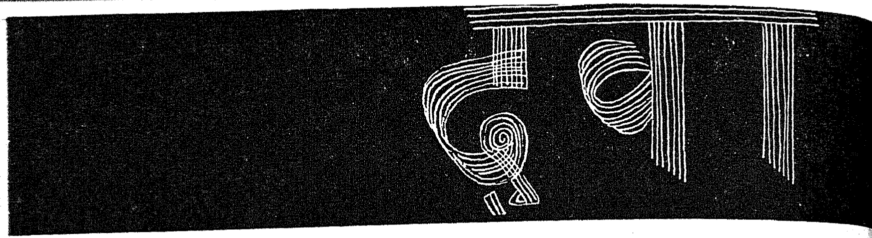
डॉ० ब्रजमोहन द्वारा निर्मित 'गणितीय कोश' भी गणित संबंधी पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसमें प्राचीन संस्कृत साहित्य से अनेक शब्द ले लिए गए हैं उदाहरण के लिए 'भूयिष्ठ' (मैक्सिमम), 'अल्पिष्ठ' (मिनिमम) इत्यादि।

गणित शब्दावली के निर्माण के लिए डा० रामबिहारी की अध्यक्षता में 1952 में विशेषज्ञ-समिति की स्थापना हुई। इस समिति ने अब तक पाँच सूचियाँ तैयार की हैं और छठी सूची प्रेस में है। इनमें पूर्व स्नातक तक के पारिभाषिक शब्द हैं।

इन शब्दों के निर्माण में प्राचीन ग्रंथों में आए हुए उपयुक्त शब्दों को ले लिया गया है। उदाहरण के लिए 'संकलन' शब्द एडीशन के लिए, 'श्रेढ़ी' प्रोग्रेशन के लिए, 'परिधि' सरकमफरेन्स के लिए, 'करणी' सर्ड के लिए, 'समीकरण' इक्वेशन के लिए, 'लीलावती' तथा 'बीजगणितम्' नामक ग्रंथों से ज्यों के त्यों ले लिए गए हैं। अतिप्रचलित अन्तरराष्ट्रीय शब्दों को लिप्यंतरित रूप में ले लिया गया है, साथ ही कुछ शब्दों के लिप्यंतरण के अतिरिक्त विकल्प के रूप में उनके हिंदी पर्याय भी दे दिए गए हैं जैसे, 'पिरेमिड' तथा 'सूचीस्तंभ' शब्द 'पिरेमिड' के लिए; 'प्रिज़्म' तथा 'समपार्श्व' शब्द 'प्रिज़्म' के लिए; 'वेज' तथा 'स्फ़ान' शब्द 'वेज' के लिए निश्चित किए गए हैं।

कुछ शब्दों का, जिनकी संकल्पनाएँ प्राचीन गणित साहित्य में नहीं मिलतीं, नए सिरे से निर्माण किया गया है जैसे 'आगम' शब्द इन्डक्शन के लिए, 'चर' वेरीएबिल के लिए, 'संवेग' मोमेन्टम के लिए, तथा 'बंधनी' शब्द ब्रैकिट के लिए, इत्यादि।

इसमें सन्देह नहीं कि गणित शब्दावली की वर्तमान स्थिति काफ़ी सन्तोषजनक है। इस दिशा में शिक्षा मंत्रालय का तथा देश के गण्यमान्य विद्वानों का प्रयास जारी है और आशा है कि निकट भविष्य में हिंदी में गणित-संबंधी शब्दावली तथा गणित-संबंधी साहित्य विश्व की किसी भी भाषा की तुलना में कम सम्पन्न नहीं रहेंगे।



[हिंदी के यशस्वी कवि दिनकर के प्रबंध काव्य 'कुरुक्षेत्र' से यहाँ कुछ अंश उद्धृत हैं। 'कुरुक्षेत्र' का कथानक द्वापरयुगीन चरित्रों को एक नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत अंश में मानवमन की सूक्ष्मतम भावनाओं को अत्यंत कुशलता से व्यक्त किया गया है। मनुष्य की ज्ञान-पिपासु बुद्धि कितनी विराट् कल्पना या वैज्ञानिक क्षमता रखती है, इसका अत्यंत काव्यात्मक वर्णन इन पंक्तियों में मिलेगा। इसका काव्यानुवाद श्री चावलि रामचंद्रराव तथा हिंदी लिप्यंतरण श्रीमती कमल नारायण ने किया है।]

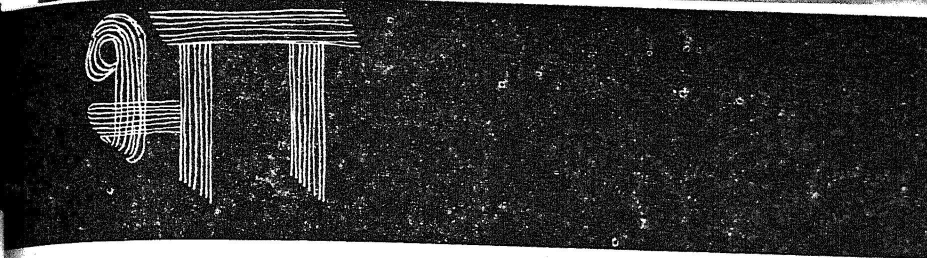
यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे
भूमि या आकाश।
यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम,
कर रहे जिसको चराचर
भक्तियुक्त प्रणाम।
यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार।
ज्ञान का, विज्ञान का,
आलोक का आगार।

विश्व सुन्दर प्रकाश मी नरूडु
अन्नि अंबरा लिकपै
दाचलेबु नलुस्तैना
नरूनि कल्लु गप्पि
ई नरूनि तीक्ष्ण दृष्टि कडलि
चेस्तुन्नवि प्रणामालु
समस्त चराचरालु
सामान्यडु काडी नरूडु
सृष्टिकि शृंगारं; अमुल्याभरणं।
ज्ञान मन्दिरं विज्ञानपु केन्द्रं
उज्ज्वल जाज्वल्यमान प्रकाशागारं।

* * *

पर, सको सुन तो सुनो,
मंगल-जगत के लोग।
तुम्हें छूने को रहा जो जीव कर उद्योग–
वह अभी पशु है; निरा पशु,
हिंस्र, रक्त-पिपासु,
बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु।
कड़कता उसमें किसी का
जब कभी अभिमान,
फूँकने लगते, सभी, हो मत्त,
मृत्यु-विषाण।

अमायक प्राणुलार ! अंगारक वासुलार
वीसुलुन्न विनडि
मी लोकं चेरूकोनग
पडरानि पाटलु पडे ई
नरू डिंका नरूडु काडु
जन्तुबु केवलं जन्तुबु
स्थूल जगत्वरि शोधनोन्माद लो
मुनिगिन रक्कस मेध स्वीतनदि
दुरभिमानोन्कत्तनर, जेक्कडु
गरजिस्तै चालु
मरूक्षणं ध्वनिस्तायि
लक्ष लक्ष मृत्यु वाद्यालु।



విశ్వ సుందర ప్రకాశ మీ నరుడు.
అవని, అంబరా లికపై
దాచలేవు నలుసైనా,
నరుని కళ్ళు గప్పి.
ఈ నరుని తీక్ష్ణదృష్టి కడలి
చేస్తున్నవి ప్రణామాలు
సమస్త చరాచరాలు.
సామాన్యుడు కా డీ నరుడు.
సృష్టికి శృంగారం; అమూల్యాభరణం.
జ్ఞాన మందిరం; విజ్ఞానపు కేంద్రం.
ఉజ్వల జాజ్వల్యమాన ప్రకాశాగారం.

... ...

అమాయక ప్రాణులార!అంగారక వాసులార!
వీనులున్న వినండి !
మీ లోకం చేరుకొనగ
వడరాని పాట్లు పడే ఈ
నరు డింకా నరుడు కాడు.
జంతువు కేవలం జంతువు.
స్థూల జగ త్పరిశోధనోన్మాదంలో
మునిగిన రక్కస మేధ స్సితనిది.
దురభిమానోన్మత్త నరు డొక్కడు
గర్జిస్తే చాలు;
మరుక్షణం ధ్వనిస్తాయి
లక్షలక్ష మృత్యువాద్యాలు.

... ...

यह मनुज ज्ञानी, शृगालों,
कुक्कुरों से हीन—
हो, किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।
देह ही लड़ती नहीं, हैं जूझते मन-प्राण
साथ होते ध्वंस में इसके कला-विज्ञान।
इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,
वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।

पेरूकु विज्ञानि नरूडु
नक्कलु कुक्कलु नयम वीडिकन्न
नरू ड्रोडिगहानि क्रूरकर्म
लिंके मुन्नवि धरणि पैन।
मनस्सू प्राणं तनवु लोडा जतयै
ओक्कुमडि चेस्तुन्नवि संग्रामं
ई विध्वंसानिकि पूर्ण होमानिकि
कडलु विज्ञानं,
चेस्तुन्नवि पायम
ई नरूनि दुष्टाहस्तगतमयी
विज्ञान प्रसुनालु
विस्मरिंचि तम विश्वक ळ्याण धर्म
रूपोन्दैनु कर्मश कठोर वज्रालुग

* * *

यह मनुज, जो ज्ञान का आगार।
यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार।
नाम सुन भूलो नहीं, सोचो-विचारो कृत्य।
यह मनुज, संहार-सेवी, वासना का भृत्य।
छद्म इसकी कल्पना, पाषण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य, मनुष्यता का
घोरतम अपमान।

विज्ञान खजाना नरूडु
सृष्टिकेलल शृंगारं मानवुडु।
ऐते विरुदु गानंचि भ्रमचेन्दकु
अभारणनु तरचि चुडु
संहारप्रियु डी नरूडु
पिपासा दासु डी मानवुडु
वीडि ऊहा कुहकं
पाषंड ज्ञानी विडु
वीडिनि नरु डनटम् घोरं
अवमानं मानवतक्

పేరుకు విజ్ఞానీ నరుడు:
నక్కలు, కుక్కలు నయం వీడికన్న.
నరు డొడిగట్టని క్రూరకర్మ
లింకే మున్నవి ధరణిపైన.
మనసూ, ప్రాణం తనువుతోడ జతయై
ఒక్కుమ్మడి చేస్తున్నవి సంగ్రామం.
ఈ విధ్వంసానికి మారణ హోమానికి
కళలూ, విజ్ఞానం,
చేస్తున్నవి సాయం.
ఈ నరుని దుష్టహస్తగతమై
విజ్ఞాన ప్రసూనాలు
విస్మరించి తమ విశ్వకళ్యాణ ధర్మం,
రూపొందెను కర్కశ, కఠోర వజ్రాలుగ.

... ...

విజ్ఞాన ఖజానా నరుడు!
సృష్టి కెల్ల శృంగారం మానవుడు!
ఐతే బిరుదు గాంచి భ్రమ చెందకు.
ఆచరణను తరచి చూడు.
సంహారప్రియు డీ నరుడు.
పిపాసా దాసు డీ మానవుడు.
ఏడి ఊహా కూహాకం.
పాషండ జ్ఞాని వీడు.
వీడిని నరు డనటం ఘోరం;
అవమానం మానవతకే!

... ...

"व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय"
पर, न यह परिचय मनुज का,
यह न उसका श्रेय।
श्रेय उसका, बुद्धि पर
चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत;
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान
तोड़ दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही :

अंबरँ मोदु लधोलोकं वरकू
समस्तं ज्ञातं नरूनुकु
ऐते मानवु-किन्ते कादु
केवल मी ज्ञानं लोने
लभिचंदु मानव श्रेयं
मेधनु जयिचांलि
चैतन्यं निंडिन हृदयं
नाडे नरूनुकु क्षेमं
नरूनि नरूनि मध्य पेरगालि
सीमले लेनिक्रम
नाडे मानवक कळ्याणं
नरूनि नरूनि मध्य अन्तराल
छेन्दिचिन नरूडे मानवुडु
विद्वांसडु विज्ञानी वाडे।
निजं! वाडे मानवु डनदगि निवाडु।

*   *   *

जो जीव बुद्धि-अधीर
तोड़ता अणु ही,
न इस व्यवधान का प्राचीर;
वह नहीं मानव; मनुज से उच्च,
लघु या भिन्न
चित्र-प्राणी है किसी
अज्ञात ग्रह का छिन्न।

बुद्धिकि मृत्युडे
परमाणुपु मात्रं छेदिंचे नरूडु
अन्तराल छेदिंचनि नरूडु
कादु वाडु मानवडु।
कावच्चु नरधिकुडु;
काकुटे नराधमुडु;
काने कादे मानवडु
एदो ज्ञात ग्रह खडं;

అంబరం మొద లధోలోకం వరకూ
సమస్తం జ్ఞాతం నరునకు.
ఐతే మానవు డింతే కాదు.
కేవల మీ జ్ఞానంతోనే
లభించదు మానవ శ్రేయం.
మేధను జయించాలి
చైతన్యం నిండిన హృదయం.
నాడే నరునకు క్షేమం.
నరుని నరుని మధ్య పెరగాలి
సీమలే లేని ప్రేమ.
నాడే మానవ కళ్యాణం
నరుని నరుని మధ్య అంతరాల
ఛేదించిన నరుడే మానవుడు.
విద్వాంసుడు, విజ్ఞానీ వాడే.
నిజం ! వాడే మానవు డనదగినవాడు.

... ...

బుద్ధికి భృత్యుడై
పరమాణువు మాత్రం ఛేదించే నరుడు
అంతరాల ఛేదించని నరుడు
కాదు వాడు మానవుడు.
కావచ్చు నరాధికుడు ;
కాకుంటే నరాధముడు ;
కానేకాడు మానవుడు.
ఏదో అజ్ఞాత గ్రహ ఖండం ;

स्यात्, मंगल या शनिश्चर

लोक का अवदान,

अजनबी करता सदा

अपने ग्रहों का ध्यान ।

विचित्रयु जीवं ।
अंगाकरक लोकं नुंडे ।
शनिचरलोकं नुंडे ।
पारपट्टुन जारिपड्डु बायंतु ।
अन्दुकने अहरहम्
अन्दुकोनग तन ग्रहालु
अन्तुलेनि आयास

*   *   *

रसवती भू के मनुज का श्रेय,

यह नहीं विज्ञान,

विद्या-बुद्धि का आग्नेय;

विश्व-दाहक मृत्यु-वाहक, सृष्टि का संताप,

भ्रान्त पथ पर अन्ध बढ़ते

ज्ञान का अभिशाप ।

भ्रमित प्रज्ञा का कुतुक यह

इन्द्रजाल विचित्र;

श्रेय मानव के न, आविष्कार ये अपवित्र ।

रत्नगर्भ धात्रिपुत्र श्रेयं
का दी विज्ञानं---
इदि अग्निगर्भ प्रतिभ ।
विश्व दग्धकारी विज्ञानं ।
मृत्युदेवि पल्लाविं बोयी यिदि ।
सृष्टिकेल्ल विचार चित्त
दारि ताप्यि अड्डुँ पडि ।
अडेरुगडं ग्रुड्डिग नडचे
अभिशापं मी विज्ञानं ।
भ्रमित प्रज्ञा कुतूहलं ।
विचित्र महेन्द्रजालं
ई अवति त्राविष्करणल्लो ।
शून्य नरजातिकि श्रेयं

*   *   *

सावधान मनुष्य,
यदि विज्ञान है तलवार,

खबर्दार मानवडा !
विज्ञानं कृपाणमैते

విచిత్రపు జీవం.
అంగారకలోకం నుండో,
శనీచరలోకం నుండో,
పొరపాటున జారిపడ్డ బాపతు.
అందుకనే అహరహమూ
అందుకొనగ తన గ్రహాల
అంతులేని ఆయాసం.

... ...

రత్నగర్భ ధాత్రీపుత్ర శ్రేయం
కాదీ విజ్ఞానం.
ఇది అగ్నిగర్భ ప్రతిభ.
విశ్వదగ్ధకారీ విజ్ఞానం.
మృత్యుదేవి పల్లకిబోయీ యిది.
సృష్టికెల్ల విచార చిహ్నం.
దారి తప్పి, అడ్డం పడి,
అడ్డెరుగక, గుడ్డిగ నడచే,
అభిశాప మీ విజ్ఞానం.
భ్రమిత ప్రజ్ఞా కుతూహలం.
విచిత్ర మహేంద్రజాలం.
ఈ అపవిత్రావిష్కరణల్లో
శూన్యం నరజాతికి శ్రేయం.

... ...

ఖబర్దార్ మానవుడా !
విజ్ఞానం కృపాణమైతే

तो इसे दे फेंक, तज कर मोह,
स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध,
है तू शिशु अभी अज्ञान;
फूल काँटों की तुझे
कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।

विसर्जिचु विज्ञानान्ने।
व्यार्जिचि व्यामोह
विस्मरिंचुं विज्ञानशब्दं स्वैंत।
विस्पष्ट बण्यनु निश्यंकग
कुसुम कण्टकाल कन्तर
मिसुमन्तयु तेलियनि
पसिपापडि वनि
इदि खड्गन्तो चेलुगाटं।
तेगनु अवयवालु।
पदुनैन दी कृपाणं;
जाग्रत !

* * *

* * *

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
नहीं यह विज्ञान कटु, आग्नेय।
श्रेय उसका, प्राण में
बहती प्रणय की वायु,
मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।
श्रेय उसका, आँसुओं की धार,

रत्नगर्भ धात्रिपुत्र श्रेयं
ले दी सेगलु ग्रक्कु विषविज्ञान लो।
प्रज्वलिचुं मानव श्रेयं
नरूनि जीवनाडुल्लो
विद्युतवले प्रवहिंच
उज्ज्वल अनुरागंलो।
प्रकाशिच मानवकळयाणं
साटि नरूनि श्रेयानिकि
आत्मार्पण चेसेडि मानव बलिदान लो।
नरजातिकि श्रेयं--
एद करिगि प्रवहिंचे
कस्निलि प्रवाहंलो;

విసర్జించు విజ్ఞానాన్నే.
త్యజించి వ్యామోహం,
విస్మరించు విజ్ఞాన శబ్దం సైతం.
విస్పష్టం బయ్యేను నిశ్శంకగ
కుసుమ కంటకాల కంతర
మిసుమంతయు తెలియని
పసిపాపడి వని.
ఇది ఖడ్గంతో చెలగాటం.
తెగును అవయవాలు,
పదునైన దీ కృపాణం;
జాగ్రత !

... ...

రత్నగర్భ ధాత్రీపుత్ర శ్రేయం
లే దీ సెగలు గ్రక్కు విషవిజ్ఞానంలో
ప్రజ్వలించు మానవ శ్రేయం
నరుని జీవనాడుల్లో
విద్యుత్తువలె ప్రవహించే
ఉజ్వల అనురాగంలో.
ప్రకాశించు మానవ కళ్యాణం
సాటి నరుని శ్రేయానికి
ఆత్మార్పణ చేసెడి మానవ బలిదానంలో.
నరజాతికి శ్రేయం —
ఎద కరిగి ప్రవహించే
కన్నీటి ప్రవాహంలో;

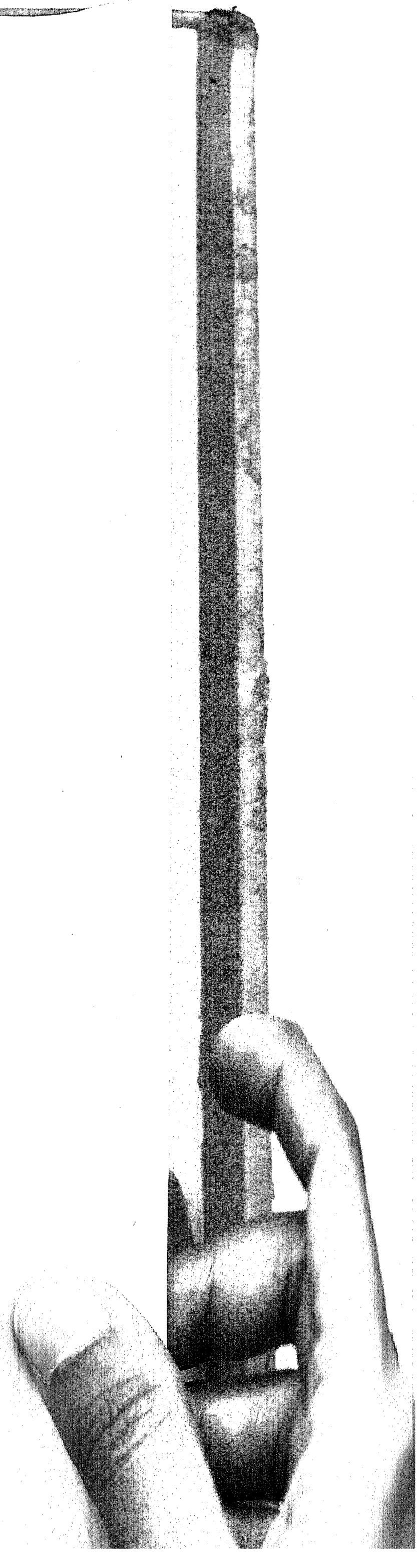
श्रेय उसका, भग्न वीणा की अधीर पुकार।	भग्नवीण व्याकुल तन्त्रिनादलो;
दिव्य भावों के जगत में जागरण का गान,	उन्नत उत्तम भावजगत्
मानवों का श्रेय, आत्मा का	प्रबोध गीतंलो
किरण-अभियान।	नरजातिकि श्रेयं
यजन, अर्पण, आत्मसुख का त्याग,	ज्योतिर्मय आत्मकिरणं रेखल्लो;
श्रेय मानव का, तपस्या की दहकती आग।	आहुतिलो; अर्पण लो; आत्मत्यागं लो;
बुद्धि-मन्थन से विनिर्गत	उज्ज्वल तपस्याग्नुल्लो।
श्रेय वह नवनीत-	नरजातिकि श्रेयं––
जो करे नर के हृदय को	सर्वनरल हृदयालनु
स्निग्ध सौम्य, पुनीत।	स्निग्ध-साम्य पुनीत मोनर्चिडि

*   *   *   *   *   *

श्रेय वह विज्ञान का वरदान,	बद्धियधित नव सतिलो
हो सुलभ सबको सहज जिसका	अन्दु बटु नुडा लन्दरिकि
रुचिर अवदान।	विज्ञान वराल प्राकारं।
श्रेय वह नर-बुद्धि का	मानवमेध मंगळाविष्करणल्लो
शिवरूप आविष्कार,	निविडमैन्दि मानव श्रेयं
ढो सके जिससे प्रकृति	सर्वजनुल सौख्यालकु
सबके सुखों का भार।	अपल कावलि सृष्टि।
मनुज के श्रम के अपव्यय की	नशिचा ली नरश्रम
प्रथा रुक जाय,	दुर्विनियोग व्याधि
सुख-समृद्धि-विधान में नर के,	मानवसुख संपदाभिवृद्धि
प्रकृति झुक जाय।	पथं लो
	पुरोगमि चालि
	प्रकृति समस्त शक्तुलु

భగ్నవీణ వ్యాకుల తంత్రీనాదంలో;
ఉన్నత, ఉత్తమ భావజగత్
ప్రబోధ గీతంలో,
నరజాతికి శ్రేయం —
జ్యోతిర్మయ ఆత్మకిరణ రేఖల్లో;
ఆహుతిలో; అర్పణలో; ఆత్మత్యాగంలో;
ఉజ్వల తపస్యాగ్నుల్లో.
నరజాతికి శ్రేయం —
సర్వ నరుల హృదయాలను
స్నిగ్ధ, సౌమ్య, పునీత మొనర్చెడి
బుద్ధిమథిత నవనీతంలో.
అందుబాటు నుండా లందరికీ
విజ్ఞాన వరాల ప్రాకారం.
మానవ మేధ మంగళావిష్కరణల్లో
నిబిడమైంది మానవ శ్రేయం.
సర్వ జనుల సౌఖ్యాలకు
ఊయెల కావాలి సృష్టి.
నశించాలీ నరశ్రమ
దుర్వినియోగ వ్యాధి.
మానవ సుఖసంపదాభి
వృద్ధిపథంలో
పురోగమించాలి
ప్రకృతి సమస్త శక్తులు.

... ...



श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह-सिंचित न्याय पर
नव विश्व का निर्माण।
एक नर में अन्य का निःशंक, दृढ़ विश्वास,
धर्मदीप्त मनुष्य का उज्जवल
नया इतिहास--
समर, शोषण ह्रास की
विरुदावली से हीन,
पृष्ठ जिसका एक भी
होगा न दग्ध, मलीन।
मनुज का इतिहास जो होगा सुधामय कोष,
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष

मानव कळ्याणं
समतनु चाटे ज्ञानं लो
प्रेमपूर्ण न्यायं पुनादैन
नव्य जगत् निर्माणं लो;
व्यक्तिपैनि व्यक्तिकि हृदिनिजंचु
अन्तुर्लेनि दृढविश्वासं लो।
मानव कळ्याणं--
संग्रामं पीडन पतनं
गच्चुकैन कानरावि
विध्वंसलो दग्ध मवनि
कुट्रल कुहकालु काहु तनवनि,
चरित्रपुट समुदाय समन्वित
धर्मदीप्त मानव उज्ज्वलेतिहासं लो।
मानव कळ्याणं—
प्रति ओक मानव हृदयं
सन्तुष्टानन्द महासन्द्र लो
तेलि ओललाड वी लुंडे
सुधापूर्ण मानवेतिहासं लो।

* * *

युद्ध की ज्वर-भीति से हो मुक्त,
जबकि होगी सत्य ही वसुधा सुधा से युक्त।
श्रेय होगा सुष्ठु विकसित
मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा
नर के रुधिर से लाल।
श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोड़ेगा मनुज से
जब उचित संबंध।

युद्ध ज्वरान्त मे ना डौनो
निजं सुधासिक्त मौतुन्दि वसुन्धरा।
नर रक्तसिक्त मे ना डनदो धरित्रि
नाडे, आनाडे
पुरोगामी नरजातिकि भविष्यत्तु।
नरूनि नरूनि मध्य अरमर लेरुगनि
सरळ, सरस, समरस सम्बन्धं
स्थापित मे ना डगुनो
नाटिनुंडे अनाटिनुंडे
धर्मदीप्त विद्युत्प्रभ
औतुन्दि मानवुंनकु मार्गदर्शी।

[कुरुक्षेत्र के सप्तम सर्ग से]

మానవ కళ్యాణం
సమతను చాటే జ్ఞానంలో
ప్రేమపూర్ణ న్యాయం పునాదైన
నవ్యజగత్ నిర్మాణంలో;
వ్యక్తిపైని వ్యక్తికి హృది జనించు
అంతు లేని దృఢవిశ్వాసంలో.
మానవ కళ్యాణం —
సంగ్రామం, పీడన, పతనం,
మచ్చుకైన కానరాని
విధ్వంసంతో దగ్ధ మవని,
కుట్రల, కూహకాల కాహుతవని,
చరిత్ర పుట సముదాయ సమన్విత,
ధర్మదీప్త మానవ ఉజ్వలేతిహాసంలో.
మానవ కళ్యాణం —
ప్రతిఒక మానవ హృదయం
సంతుష్టానంద మహాసంద్రంలో
తేలి ఓలలాడ వీలుండే
సుధాపూర్ణ మానవేతిహాసంలో.

... ...

యుద్ధజ్వరాంత మే నాడౌనో
నిజం! సుధాసిక్త మౌతుంది వసుంధర.
నరరక్తసిక్త మే నాడవదో ధరిత్రి
నాడే, ఆనాడే
పురోగామి నరజాతికి భవిష్యత్తు.

నరుని నరుని మధ్య అరమర లెరుగని
సరళ, సరస, సమరస సంబంధం
స్థాపిత మే నాడగునో
నాటినుండె, ఆనాటినుండె
ధర్మదీప్త విద్యుత్ప్రభ
ఔతుంది మానవునకు మార్గదర్శి.

... ...

तुम और मैं

—'निराला'

[आधुनिक कविता की रहस्योन्मुखी धारा के उन्नायकों में महाकवि निराला का विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत कविता में दार्शनिक अभिव्यक्ति का सहारा ले आत्मा और परमात्मा, प्रकृति और पुरुष का शाश्वत संबंध प्राकृतिक प्रतीकों द्वारा नानारूपों में चित्रित किया गया है। कविता का पद्यानुवाद तथा लिप्यंतरण श्री सोम शेखर 'सोम' ने किया है।]

तुम तुंग - हिमालय - शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता
तुम विमल - हृदय - उच्छ्‌वास
और मैं कान्त-कामिनी-कविता;
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरापान-घन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।
तुम दिनकर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान,
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान;
तुम योग और मैं सिद्‌धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप
मैं शुचिता सरल समृद्‌धि।
तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजनी भाषा;
तुम नंदन- वन - घन - विटप
और मैं सुख-शीतल-तल शाखा,
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्‌ध सच्चिदानंद ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।

नीनु हागू नानु

"ನೀನು ಹಾಗೂ ನಾನು"

ಮೂಲಕವಿ: 'ನಿರಾಲಾ'

ಅನುವಾದಕ: ಪ್ರೊ. ಸೋಮಶೇಖರ 'ಸೋಮ'

ನೀ ತುಂಗ-ಹಿಮಾಲಯ-ಶೃಂಗ
ನಾ ಚಂಚಲಗತಿ ಸುರಗಂಗಾ
ನೀ ವಿಮಲ-ಹೃದಯದುಸಿರು
ನಿನ್ನ ಸಿರಲಿ ಮೂಡಿದ ಕವಿತೆಯು ನಾ;
ನೀ ಪ್ರೇಮ, ಸುರಪಾನ, ಘನ ಅಂಧಕಾರ
ನಾ ಶಾಂತಿ ಉನ್ಮತ್ತ ಭ್ರಾಂತಿ,
ನೀ ದಿನಕರ ಪ್ರಖರತರ ಕಿರಣಯೋಗ
ವತ್ಸರ-ವಿಲಸಿತ-ವಿಯೋಗ;
ನಾ ಸರಸಿಜ ಮಂದ ಸ್ಮಿತ ರಾಗ
ಗತ ಕಾಲದ ಪರಿಚಯ ದೋಷ:
ನೀ ಯೋಗ,
ನಾ ಸಿದ್ಧಿ.

ರಾಗವಿರಾಗದ ನಿಶ್ಚಲ ತಪ ನೀ
ಸರಲ ಸಮೃದ್ಧಿಯ ಶುಚಿ-ರುಚಿ ನಾ,
ನೀ ಮೃದು ಮಾನಸ ಭಾವ
ನಂದನ-ವನ-ಘನ-ವಿಟಪ;
ನಾ ಮನೋರಂಜನಿ ಭಾಷಾ ಜೀವ,
ಸುಖ-ಶೀತಲ-ತಲ-ಶಾಖಾ,
ನೀ ಜೀವ
ಶುದ್ಧ ಸಚ್ಚಿದಾನಂದ ಬ್ರಹ್ಮ;
ನಾ ದೇಹ,
ಮನಮೋಹಿನೀ ಮಾಯಾ.

नी तुंग - हिमालय - श्रृंग
ना चंचल-गति सुर-गंगा
नी विमल-हृदयदुसिरू
निन्नु सिरली मूडिद कवितेयु ना;
नी प्रेम, सुरपान, घन अंधकार
ना शांति, उन्मत्त भ्रान्ति,
नी दिनकर प्रखर तर किरण योग
वत्सर विलसित वियोग;
ना सरसिज मंद स्मित राग
गत कालद परिचय दोष
नी योग,
ना सिद्धि ।
राग विरागद निश्चल तप नी
सरल समृद्धिय शुचि रूचि ना,
नी मृदु मानस भाव
नंदन-वन-घन-विटप
ना मनोरंजनी भाषा जीव
सुख-शीतल-तल-शाखा;
नी जीव
शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म;
न देह,
मन मोहिनी माया ।

तुम प्रेममयी के कण्ठहार,
मैं वेणीं काल-नागिनी,
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार
मैं व्याकुल विरह-रागिनी।
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु,
तुम हो राधा के मन-मोहन,
मैं उन अधरों की वेणु।

तुम पथिक दूर के श्रांत
और मैं बाट-जोहती आशा,
तुम भवसागर दुस्तार,
पार जाने की मैं अभिलाषा।
तुम नभ हो, मैं नीलिमा,
तुम शरत-काल के बाल-इन्दु,
मैं हूँ निशीथ-मधुरिमा।

तुम गंध-कुसुम कोमल पराग
मैं मृदुगति मलय समीर,
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष,
मैं प्रकृति, प्रेम-जंजीर।
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति,
तुम रघुकुल-गौरव रामचंद्र,
मैं सीता अचला भक्ति।

तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक-कल-कूजन-तान,
तुम मदन - पंच - शर - हस्त
और मैं हूँ मुग्धा अनजान।
तुम अंबर, मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन-पटल-श्याम,
मैं तड़ित्तूलिका रचना।

तुम रण-तांडव उन्माद-नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद- वेद- ओंकार - सार
मैं कवि- शृंगार- शिरोमणि।
तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति,
तुम कुंद - इंदु- अरविंद - शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

ಕದಲಿಯ ಕಂಠದಲಿ ಮಣಿಹಾರ ನೀ
ನಾ ವೇಣೀ-ಕಾಲ-ನಾಗಿನೀ,
ನೀ ಕರಪಲ್ಲವ-ಝಂಕೃತ ವೀಣೆ
ವ್ಯಾಕುಲ ವಿರಹದ ರಾಗಿಣಿ ನಾನೆ;
ನೀ ಮಾರ್ಗ, ನಾ ರೇಣು,
ನೀ ರಾಧಾ ಮನಮೋಹನ ಮುಕುಂದ,
ನಾನವನಧರದಿ ಉಲಿಯುವ
ವೇಣು ವಿನಂದ;
ದುಸ್ತರ ಭವಸಾಗರ ನೀ,
ಸಾಗರ ದಾಟುವ ಹೆಬ್ಬಯಕೆಯೇ ನಾ;
ನೀ ನಭ
ನಾ ನೀಲಿಮೆ.
ಶರದ ಕಾಲದ ಬಾಲಚಂದ್ರ ನೀ
ಶೀತಲ ರಜನಿಯ ಮಧುರಿಮೆ ನಾ;
ನೀ ಗಂಧ-ಕುಸುಮ ಕೋಮಲ ಪರಾಗ
ನಾ ಮೃದು-ಪದ-ಗತಿ ಮಲಯ ಸಮೀರ,
ನೀ ಸ್ವೇಚ್ಛಾಚಾರಿಯು, ಮುಕ್ತ ಪುರುಷ,
ನಾ ಮಮತಾ-ಬಂಧಿತ ಪ್ರಕೃತಿ;
ನೀ ಶಿವ,
ನಾ ಶಕ್ತಿ.
ನೀ ರಘು-ಕುಲ-ಗೌರವ ಶ್ರೀರಾಮ
ಅಚಲಿತ ಭಕ್ತಿಯ ಸೀತೆಯು ನಾ;
ನೀ ಆಸೆಯ ಮಧುಮಾಸ
ಮದನ-ಪಂಚ-ಶರ-ಹಸ್ತ,
ನಾನೀ ಲೋಕವ ಅರಿಯದ ಮುಗುದೆ
ಮೇಣ್ ಶುಕ-ಪಿಕ-ಕೂಜನ ತಾನ,
ನೀ ಚಿತ್ರಕಾರ, ಘನ-ಪಟಲ-ಶ್ಯಾಮ,
ನಾ ತಟತ್ ತೂಲಿಕಾ ರಚನಾ,
ನೀ ಅಂಬರ,
ನಾ ದಿಗ್ವಸನೆ.

ನೀ ರಣ-ತಾಂಡವ ಭೈರವ ನೃತ್ಯ
ನಾ ಮುಖರ ಮಧುರ ನೂಪುರ ಕಿಂಕಿಣಿ
ನೀ-ನಾದ-ವದ-ಓಂಕಾರ ಸಾರ
ನಾ ಕವಿ ಶೃಂಗಾರ ಸಾಕಾರ;
ನೀ ಕುಂದ-ಇಂದು-ಅರವಿಂದ-ಶುಭ್ರ
ಅಂತಿರೆ ನಾ ನಿರ್ಮಲ ವ್ಯಾಪ್ತಿ.
ನೀ ಯಶ
ನಾ ಪ್ರಾಪ್ತಿ.

कदिलेय कंठदलि मणिहार नी
ना वेणी काल-नागिनि,
नी कर-पल्लव-झंकृत वीणे
व्याकुल विरहद रागिणि नाने;
नीनु मार्ग, ना रेणु,
नी राधा मनमोहन मुकुंद,
नानवनधरदि उलि युव वेणु विनन्द;
दुस्तर भवसागर नी
सागरदाटुव हेब्बयकेये ना,
नी नभ
ना नीलिमे ।
शरदकालद बालचंद्र नी,
शीतल रजनिय मधुरिमे ना;
नी गन्ध-कुसुम कोमल पराग
ना मृदु पद गति मलय समीर,
नी स्वेच्छाचारियु, मुक्त पुरुष,
ना ममता बंधित प्रकृति;
नी शिव,
ना शक्ति ।

नी रघुकुल-गौरव श्रीराम
अचलित भक्तिय सीतेयुना;
नी आसेय मधुमास
मदन-पंच-शर-हस्त,
नानी लोकव अरियद मुगुदे
मेण शुक पिक कूजन तान;
नी चिलकार, घन पटल श्याम,
ना तटत् तूलिका रचना;
नी अंबर,
ना दिग्वसने ।

नी रण-तांडव भैरव-नृत्य
ना मुखर मधुर नूपुर-किंकिणि;
नी नाद-वद-ओंकार-सार
ना कवि-शृंगार-साकार,
नी कुंद-इंदु-अरविंद-शुभ्र
अंतिरे ना निर्मल व्याप्ति;
नी यश,
ना प्राप्ति ।

[आधुनिक हिंदी कविता में प्रपद्यवाद् के प्रवर्तक स्व० नलिनविलोचन शर्मा की दो छोटी कविताओं के कश्मीरी पद्यानुवाद यहाँ प्रस्तुत हैं। पहली कविता 'धारा रेखन' में यह प्रतिपादित किया गया है कि हम भावी जीवन के प्रति आश्वस्त नहीं हैं और महज़ धाराओं पर रेखाएँ खींचने के असफल प्रयत्नों में संलग्न हैं। अस्तित्व की खोज में हम सब व्याकुल हैं। दूसरी कविता 'सिद्धि' में शर्मा जी का व्यंगकार का रूप परिलक्षित होता है। आधुनिक सिद्धों की उन्होंने बहुत कुशलता से खिल्ली उड़ाई है। कविताओं का कश्मीरी पद्यानुवाद श्री मोहनलाल शर्मा ने किया है।]

धारा-रेखन

सत्तावन की हवा गाड़ी
लक्ष्य तक पहुँच कर रह गई।
दो चार वर्षों में
दो मुँह होंगे या दो पूँछे,
एक मुँह और एक पूँछ
नहीं होगी, जैसा आज भी
कुछ-कुछ रह गया :
धारा-रेखन ने मोटर को
यथार्थ हवा-गाड़ी बना दिया :
हिंदी का शब्द ज्यादा ठीक है।

धारि-रखॅ

सन्नह् सतवंजाह्च हवागॉड्य
माठस वातिथ गपि क्या रूज़िथ।
दोन चोन वरियन ताँथ थोव वूज़िथ आसन–
अथ् लट ज़ोरा नत हट ज़ोरा।
कुन लोट––कुन होट अज़ यिथ पॉडिन
छिस केह् बाकी
अथ् नो रोज़न।
बनोवमुत मोटर अद्दह्‌ पॉज़ि पॉठिन
'हवागॉड्य' छु धारा-रेखन।
हिंदी लफ़ज़ई छुस् ज़्यादह् मौज़ून्।

●

सिद्धि

सिद्धों के भी कैंसर होता है
उनके दिलों की भी धड़कनें
बन्द होती हैं। हम बगुला
बगल झाँकते। वे हंस
हो जाते हैं।

सिद्धि

स्यद्धन ति नोसुर गछान्
ब्रुबराय दिलन तिहंद्यन
ति गछान थामे।
ब्रग् अस्–अस्सि न इवान् वत्
प्रावान छि तिम् हंस गत्॥

स्रोतस्विनी

अप्सरांची भेंट

अप्सराओं के दर्शन

कुसुमावती देशपांडे

अनु:—श्याम परमार

मी होय ? मी या पलीकडे दिसणाऱ्या खेड्यांतल्या शाळेंत शिक्षक आहें, मन फार वैतागलं म्हणून कोसभर चालत येऊन या तलावाच्या कांठाशीं बसलों आहें जरा. मी कसला हो कवि ? मराठी सात इयत्ता व एक वर्ष ट्रेनिंगचं—एवढंच आमचं शिक्षण. त्यांत कुठें कविता करतां येतात ? पण मनांतलं बोलून दाखवायला काव्यमय वाणी देवानं दिली नसली, तरी समोर घडेल तें पाहायला—नीट निरखून पाहायला दृष्टि मात्र दिली आहे. म्हणून तर ही जिवाची आटापीट. मी बसलों आहें, हें ठिकाण तुम्हालां फार

क्या मैं ? मैं उस ओर दिखाई देने-वाले गाँव की पाठशाला में शिक्षक हूँ। मन बहुत उद्विग्न हो गया, इसीलिए कोस भर चल कर इस तालाब के किनारे कुछ क्षण के लिए आ बैठा हूँ। मैं वहाँ का कवि ! सात जमात मराठी और एक वर्ष का प्रशिक्षण—इतनी ही मेरी शिक्षा है। उसमें कविता का ज्ञान कहाँ ? अन्तर की बात व्यक्त करने के लिए काव्यमयी वाणी ईश्वर ने चाहे न दी हो, पर जो प्रत्यक्ष घटित हो उसे ठीक तरह से निरखने-परखने की दृष्टि माल उसने अवश्य दी है। इसीलिए यह जीवन की दौड़धूप है। जहाँ मैं बैठा हूँ यह

सुंदर वाटत असेल नाहीं ? मावळत्या सूर्याच्या नाजुक छटांनीं हें समोरचं सगळं पाणी रंगून गेलं आहे. त्यावरून वाऱ्याची एकेक झुळूक किती हलुवारपणें तरंगत जाते ! भोवतालच्या बंधाऱ्यांत अडकून पडलेलं, शेवालानं त्रस्त झालेलं उदास पाणीदेखील तिच्या स्पर्शांनं उचंबळून येतं, त्याच्यावर रोमांच उभे राहतात. ती एकेक झुळूक काय सांगते त्याला ? स्वातंत्र्याचा संदेश देते ? आपलीच अंतः शक्ति सांठवून, बंधाऱ्याच्या पलीकडे उडी घ्यायचा कानमंत्र देते ?

स्थान तुम्हें बहुत सुन्दर लगता है न ? अस्ताचलगामी सूर्य की मृदुल किरणों से सामने की सम्पूर्ण जलराशि रंगीन हो गई है। उस पर हवा की एक-एक लहर कितनी कोमलता से फिसल जाती है ! और इस ओर बाँध में काई से त्रस्त होकर रुका हुआ उदास जल उसके स्पर्श से चंचल होकर रोमांचित हुआ जाता है। उसकी एक-एक लहर उससे क्या कहती है ? क्या स्वतंत्रता का संदेश दे रही है ? अथवा अपनी ही अन्तर्शक्ति को गठित कर बाँध के उस ओर उछल जाने का मंत्र फूँक रही है ?

तसं होईलहि—या तलावांत झरे असले तर आपल्या अंतः प्रवाहांच्या जोरानं हें पाणी बंधारा ओलांडून वाहूं लागेल. नाहीं तर पावसाला येईल. नदीनाल्यांना पूर येईल आणि हें तळंहि कांठोकांठ भरून वाहूं लागेल. किती तरी पाटांनीं त्याचं पाणी थुई थुई नाचत गाऊं लागेल—आणि हसेल, आणि भोवतालच्या सर्व वनश्रीला हसवील, तिच्यांत जीवन ओतील. पण सध्यांची त्याची ही स्थिति किती केविलवाणी आहे. अगदीं आमच्या खेड्यासारखी. तिथलंहि जीवन असंच या डबक्यासारखं झालं आहे. परिस्थितीनं गति मारली, मनं मारलीं, उत्साहाच्या ज्योति मालवल्या. शेतीचे सर्व व्यवहार चालू असतात, पण किती निर्जीवपणें ! एकेकाचे चेहरे पहावे तर कसे विझल्या-

यह तो होगा ही—इस ताल में यदि झरने होगें तो अपने अन्तर्प्रवाह के दबाव से यह जल बाँध तोड़ कर रिसने लगेगा। या फिर वर्षा होगी। नदी नालों में बाढ़ आएगी। कितने ही पाठों से भरपूर हो यह जल थेई-थेई नाचने लगेगा, गाने लगेगा—और उस ओर की समस्त बनश्री को पुलकित कर देगा, उसे जीवन प्रदान करेगा। किंतु इस समय की स्थिति कितनी दयनीय है ठीक हमारे गाँव जैसी। वहाँ का जीवन भी इसी डबरे जैसा है। परिस्थितिवश गति रुद्ध हो गई, मन मुरझा गए और, उत्साह की ज्योति बुझ गई है। कृषि के समस्त व्यवहार चल रहे हैं, किंतु कितने निर्जीव बनकर ! हर एक का चेहरा बुझे दीपक सा लगता है।

सारखे दिसतात. एकामागून एक वाईट हंगामाचीं इतकीं वर्षं गेलीं, कीं पुन्हा आशेचं रोपटं लागायला त्यांना मनंच राहिलीं नाहींत. त्यांचे दगड बनून गेले ! सकालीं उठून तरणीं पोरं मोट सुरू करायला विहिरीवर जातात. बैल चालूं लागतात. मोटेचं किरकिरणं, पाण्याचा सलसलाट सुरू होतो, पण त्या पोरांच्या तोंडून गाण्याची एक लकेरहि बाहेर पडत नाहीं. तरुणांची मनं इतकीं कोलपून गेलीं; मग ज्यांच्या शिरावर शेतीवाडीचा सर्वच भार, शेतसान्याबद्दल जे सर्वस्वी जबाबदार, अशा कर्त्यासवरत्यांची काय अवस्था असेल ! सकाल-संध्याकाल भोवतालच्या या कालोखाकडे मी पाहत बसतों अन् दुपारीं एवढयाएवढ्या मुलांना घेऊन शिकवत बसतों—ग—गरुड ! दर वेलीं मनांत येतं कीं, या दीनवाण्या पोरांना गरुडपक्षी कधीं डोल्यानीं दिसणं तर शक्य नाहीच; पण त्याच्या भरारीचं, त्याच्या त्वेषाचं मनानं आकलनसुद्धां करणं जन्मभरांत शक्य होणार नाहीं. मग कशाला त्यांना शिकवूं ग—गरुड ? त्यापेक्षां त्यांना आपला ग—गणपतीच बरा नाहीं का ? त्याच्यासारखेच तेहि गुळाचे गणोबा होऊन बसले तर त्यांचा धडपडाट तरी बंद होईल. त्यांच्या जीवनांत निर्विकार, अचेतन कां होइना, पण शांति तरी येईल. हें झगडणं, हा प्रयत्नवाद हवा कशाला ? जिथं आशेला जागा आहे, जिथं कुठून तरी सहाय्याची अपेक्षा आहे भोवतालीं कुणाला तरी जाणीव होण्याचा संभव आहे, तिथं

दारुण परिस्थितियों के लगातार इतने वर्ष व्यतीत हो गए कि अब आशा के पौधे लगाने के हेतु उमंगें ही नहीं रहीं, जड़वत् हो गए। प्रातः उठकर जवान लड़के मोट चलाने के लिए कुओं पर जाते हैं। बैल काम में जुट जाते हैं। मोर का संगीत, पानी की छलछलाहट शुरू होने पर भी इन बच्चों के कंठ से गीत की एक कड़ी भी नहीं फूटती। जब युवकों के अन्तस् इतने मुरझा गए तब जिनके कंधों पर खेती बाड़ी का पूर्ण भार एवं लगान भरने की समस्त ज़िम्मेवारी है ऐसे वयस्कों की क्या अवस्था होगी। प्रातः सायं सभी दिशाओं में व्याप्त अन्धकार की ओर देखता हूँ-ग-गरुड़। हर बार मन में विचार जाता है कि इन दीन बालकों को अपने नेत्रों से गरुड़ पक्षी के दर्शन तो क़तई सम्भव नहीं, किंतु यदि वह दिख भी गया तो जिस अपरिमित शक्ति से वह आकाश में उड़ता है उस त्वरित वेग की कल्पना भी करना उनके लिए आयु पर्यन्त सम्भव नहीं। तब क्यों उन्हें मैं व्यर्थ ही सिखाऊँ—ग—गरुड़। अच्छा है अपना 'ग—गणपतिका' ही उन्हें बताऊँ। उसके अनुसार यदि वे गुड़ के गणपति होकर भी बैठ जाएँ तो उनकी भागदौड़ तो शान्त हो जाएगी। उनके जीवन में निर्विकार, अचैतन्य क्यों न हो उन्हें शान्ति तो मिलेगी। ये झंझटें, यह प्रयास क्यों? जहाँ आशा के लिए स्थान है, जहाँ कहीं से सहायता की अपेक्षा है, जहाँ आसपास किसी के जानकार होने की

प्रयत्नवादाला जागा आहे. पण जिथं माणुसकीची नीचतम परिसीमा झाली, तिथं झगडून काय करतां ? तिथं मग निर्विकार, अचेतन शांतीच बरी !

सम्भावना है, वहीं प्रयत्नवाद सार्थक है। किन्तु जहाँ मनुजता की निम्नतर स्थिति आ पहुँची वहाँ संघर्ष से क्या लाभ ? वहाँ फिर वही निर्विकार, अचैतन्य शान्ति ही ठीक है।

असं काय झालं म्हणतां ? सांगतों– अगदीं गेल्या आठवड्यांतलीच गोष्ट. एके दिवशीं संध्याकाळीं आम्ही नेहमींचीं बैठीकीचीं माणसं मारुतीच्या देवळास-मोरच्या पिंपळाच्या पारावर बसलों होतों. तिथं आमच्या गांवचे कामदारहि नित्या-प्रमाणं आले. गांवच्या एकंदर बातम्यांची चर्चा चालली असतां त्यांनीं सांगितलं कीं, आमच्या मालगुजाराच्या बगीच्यांत साफ सुफाईचा हुकूम सुटला आहे. हा बगीचा म्हणजे चांगलाच मोठा आहे. मधोमध दोन मोटा चालतील एवढी विहीर आहे. चांगलं शंभर केळींचं बन आहे. तीनचारशे संत्र्यांचं झाड आहे, पेरू आहे. या गांवालगतच्या त्याच्या साऱ्या शेतांची वाहीत करणाऱ्या सर्व गुरांसाठीं प्रशस्त गोठे, कडब्याचीं साठवणं आहेत. अन् शिवाय फुलांचे ताटवे तर कितीकच आहेत. बगीच्याच्या मागच्या बाजूनं एक लहानसा ओढ़ा वाहतो. विहिरीच्या पाण्याशिवाय या ओढयानंहि खूप आबादी केली आहे. अन् त्यांचा माळीहि हौशी. त्यानं या ओढ्यालगत फुलांचे हे सुंदर ताटवे केले आहेत. आपली देशी फुलंच, पण बहराला आलीं कीं तेवढा भाग स्वर्गासारखा शुभ्र न् पवित्र करून

ऐसी क्या बात हो गई ? कहता हूँ– पिछले सप्ताह की बात है। एक दिन संध्या समय हम रोज़ के मित्रगण हनुमान मंदिर के सामने पीपल के नीचे के ओटले पर बैठे थे। वहाँ गाँव के कुछ खेतिहर मज़दूर सदा की भाँति आए। गाँव की अनेक बातें चल रही थीं। तभी उन्होंने बताया कि मालगुज़ार जी के बगीचे की साफ़-सफ़ाई का हुक्म हुआ है। यह बाग़ पर्याप्त रूप से बड़ा है। बीच में दो मोट चलाने लायक बावड़ी है, लगभग सौ केलों की बाड़ी और तीन चार सौ संतरे के झाड़ हैं, अमरूद हैं। मालगुज़ार जी की खेती-बाड़ी में काम आने वाले ढोर डंगरों के लिये गाँव से लगे हुए बड़े-बड़े गोठान और कड़बी रखने के लिए गोदाम हैं। इनके अतिरिक्त फूलों की तो अनेक क्यारियाँ हैं। बगीचे के पिछवाड़े छोटा-सा झरना बहता है। कुएँ के पानी के बाव-जूद इस झरने ने भी समुचित समृद्धि प्रदान की है। माली बड़ा हौसले वाला है। उसी ने इस झरने से फूलों की ये क्या-रियाँ बनाई हैं। पर अपने देशी फूलों पर जब बहार आती है तब वे उतना स्थान स्वर्ग के समान धवल और पवित्र

सांडतात. मी पुष्कलदां खूप संध्याकाळीं तिकडे भटकायला जातों. कालोखांतल्या संधिप्रकाशांत तो कुंदाचा ओथंबला बहर अन् मोगन्याच्या उमलत्या कल्या ढगा-आडून डोकावणान्या लहानशा चांदण्यां-सारख्या चमकतात ! त्यांच्या सुवासानं मला तरी भोवतालच्या वस्तुस्थितीचा थोडा वेल पूर्ण विसर पडतो. पण त्याबरोबरच नेहमीं वाटतं, हें तरी सुख या इथल्या गांवकन्यांनीं कां लुटूं नये ? त्यांचा खरोखरच श्रमपरिहार होईल. या नाजुक, लाजालू फुलांच्या सहवासांत राहून त्यांच्या अंतःकरणाचं स्वाभाविक मार्दव कायम राखलं जाईल; त्यांत आशेचा जोम लुकलुकत राहील. रात्रीच्या त्या शांत आकाशाखालीं पडून त्यांना शांति लाभेल. त्यांचं हृदयाकाशहि तसंच विशाल होईल. . .पण त्या वेलीं कोण जागं असतं ? अन् कोणीहि कसं जागं राहील ? सारे बिचारे जिवापाड कष्टून, थकून निजलेले असतात. कधीं कालीं त्यांनाहि वाटत असेल कीं, निवांत वेलीं गप्पागोष्ठी कराव्या, मनरंजन करावं. . . पण कित्येकांजवल तर दिव्यांत जालायला तेलहि नसतं. मग त्यांनीं निद्रेंतच आपल्या सर्व सुखदुःखांचं विसर्जन केलं तर काय आश्चर्य ! कोणी जागे असती-लच, तर ते चोरून मोहाची दारू गालून पिणारे ! त्यांच्या विचारानं मन विषण्ण

कर देते हैं । मैं प्रायः विलम्ब से साँझ को उधर टहलने जाता हूँ । घनी साँझ के सन्धि-प्रकाश में फूलों की उमड़ती बहार और मोगरे की प्रस्फुटित होती हुई कलियाँ ऐसी लगती हैं ज्यों बादलों के आँचल से चाँदनी झाँकती हो । उनकी सुगन्धि, कम से कम मुझे कुछ क्षण के लिए वर्तमान वस्तुस्थिति से पूर्ण विमुख कर देती है । साथ ही मुझे नित्य यह विचार भी आता है कि यह सुख यहाँ के ग्रामवासी क्यों न लूटें ? इससे निश्चय ही उनका श्रम परिहार होगा । इन मृदुल, लजीले फूलों की संगति में रहकर उनके अन्तःकरण का स्वाभाविक मार्दव स्थिर रहेगा, उनमें आशा का ओज दमकता रहेगा । शान्ति के उस निरभ्र आकाश के नीचे विश्राम कर उन्हें शान्ति प्राप्त होगी । उनका मन आकाश वैसा ही विशाल होगा––परन्तु उस समय कौन जागता है, और कोई भी कैसे जागता रहेगा ? सभी वेचारे जी तोड़ कष्ट एवं श्रम से श्लथ होकर सोए रहते हैं । कभी-कभी उन्हें भी लगता होगा कि खाली समय में बातचीत करें मनोरंजन करें––किंतु अधिकांश के घर दीया जलाने के लिए तेल भी नहीं होता । तब निद्रा में ही उन्होंने अपने समस्त सुखदुखों का विसर्जन कर दिया तो क्या आश्चर्य है ? यदि कुछ जागते होंगे तो वे चोरी से महुए की शराब बनाकर पीने वाले ही होंगे । उनके विचार-माल से मन विषण्ण हो जाता है । मानवीय

होत. मानवी शक्ति चा एवढा अपव्यय चाललेला पाहून जीव कासावीस होतो. माझ्या भोवतालच्या मोगऱ्याच्या सुवासापुढें तिथल्या दुर्गंधींची कल्पनाहि सहन होत नाहीं. . पण पुन्हां वाटतं, जीवनाच्या निकषावर पारखून पाहिलं तर दुर्गंधींत लोळणारे ते व सुवासावर तरंगणारा मी सारखाच नाहीं का ठरणार ? दोघेहि सारखेच अगतिक, किंकर्तव्यतेनं विमूढ बनलेले, कोणत्या तरी उपायानं वस्तुस्थितीचा विसर पाडूं इच्छिणारे ! त्यांना दारूपासून मीं बगीचांत आणलं तरी त्यांची विवंचना थोडीच सुटणार, किंवा सुटण्याचा मार्ग दिसणार ! असो; मी मास्तरकीला साजेशी वटवट तुमच्याजवळहि करायला लागलों, सांगायचा मथितार्थ असा, कीं त्या दिवशीं मारुतीच्या देवळांत कामदारानं येऊन सांगितलं कीं, आमच्या मालगुजाराच्या बगीच्यांत साफसुफाई चा हुकूम सुटला आहे. तिथं मोठा मांडव पडणार आहे. अन् जंगी हुर्डापार्टी होणार आहे. कामदार म्हणे, "मजा येईल मास्तर. आमच्या बाईसाहेबांच्या हुर्ड्याचा थाट कांहीं न्याराच राह्यतो पगा. . ." अन् मग त्यानं खूप रंगांत येऊन वर्णायला सुरुवात केली. त्याच्या जीवनाच्या त्या कंटाळवाण्या एकच-एकपणांत केवढी पर्वणी आल्यासारखी त्याला वाटत होती. त्यानं बाईसाहेबांच्या टेबल-खुर्च्यांचं वर्णन केलं,

शक्ति का इतना बड़ा दुरुपयोग देखकर हृदय पीड़ित हो जाता है। मेरे लिए निकटवर्ती मोगरे की सुगन्ध के सन्मुख वहाँ की दुर्गन्ध की कल्पनामात्र ही असह्य है—पर फिर सोचता हूँ कि जीवन की कसौटी पर परखने के बाद दुर्गन्ध में लोटने वाले वे और सुवास पर झूमने वाला मैं दोनों में अन्तर ही क्या है ? दोनों ही एक जैसे जड़, किंकर्तव्य-विमूढ़ बने हुए और किसी भी उपाय से वास्तविकता को विस्मृत करने वाले। उन्हें वारुणी से उठाकर यदि मैं बगीचे में ले भी आऊँ तो वे विवंचना से थोड़े ही छूटेंगे और न उससे मुक्त होने का कोई मार्ग ही पा सकेंगे ! अस्तु; मैं अपनी अध्यापकीय बकवास तुम्हारे सन्मुख भी करनें लगा। कहने का तात्पर्य है कि उन दिन हनुमान मंदिर में खेतिहरों ने कहा कि उनके मालगुज़ार जी के बगीचे की साफ़-सफाई का हुक्म हुआ है। वहाँ एक विशाल मंडप खड़ा किया जाएगा जिसमें एक बड़ी मुट्ठा-पार्टी होगी। एक खेतिहर कहने लगा, "बड़ा आनन्द आएगा मास्टर जी, हमारी मालकिन की इस मुठ्टापार्टी की शान कुछ और ही रहती है" और तब उसने मौज में आकर सविस्तर वर्णन आरम्भ किया। उसके लिए उबा देने वाली नीरस जीवन-व्यवस्था में यह अवसर एक पर्व की भाँति आया प्रतीत हो रहा था। उसने मालकिन की टेबल-कुर्सियों और कपब-

कपबशांचं केलं; त्यांच्या शहरवासी पट्टेदार फेटे बांधणाऱ्या नौकरांचेहि मोठ्या आदरपूर्वक गुण गाइले. बाईसाहेबांच्या मैत्रिणींचं वर्णन करतांना तर त्याच्या रसवंतीला कोण बहर आला! इन्द्रधनुष्याच्या बहुविधि रंगांचीं दुकूलं परिधान करून येणाऱ्या अप्सराच जणुं त्या. त्यांच्या नुसत्या आठवणीनं कामदार बिचारा गार झाला.

शियों का विस्तृत वर्णन किया। उसने शहर के साफ़ा बाँधनेवाले पट्टेदार सेवकों का सन्मानपूर्वक गुणानुगान किया। मालकिन की सहेलियों का बखान करते समय उसकी वाणी मुखर हो आई। इन्द्रधनुषी बहुविध रंगों के दुकूल परिधान पहन के सखियाँ अप्सराओं जैसी लग रहीं थीं। उनके स्मरणमात्र से ही वह बेचारा किसान पिघल गया था।

साफसुफाई सुरू झाली. गाई-गुरांच्या गोठ्यापासून सर्व स्वच्छ होऊं लागलं. कारण—हो! कुणी सांगावं? बाईसाहेबांच्या बरोबरच्या एखाद्या मडमिणीला तिकडेच जायची लहर यायची! मांडव घातलां गेला. त्याच्या कामनीपाशीं कोवल्या केलीचे खांब उभे झाले. कमानीवर आम्रपर्णाचीं मंगल तोरणं लागलीं. मी रोज कामाच्या प्रगतीची मनांतच नोंद करून येई. मला वाटे, या खेड्याचं काय बरं मंगल होईल या तोरणांनी अन् केलीच्या खांबांनीं?

साफ़-सफ़ाई आरम्भ हुई। ढोर-डंगरों के गोठानों से लगाकर सब कुछ स्वच्छ किया जाने लगा। कारण किसे बताया जाए? कदाचित् मालकिन की किसी मेम सहेली को उधर जाने की लहर आ जाए। मंडप तैयार हो गया। उसकी कमानियों से सटाकर कोमल कदली खंम्भ बाँधे गए, कमानियों पर आम्रपर्णों के मंगल तोरण सज गए। मैं प्रतिदिन काम की प्रगति का मन ही मन व्यौरा लेने लगा। एक प्रश्न मेरे मन में उठा कि इन तोरणों और कदली खंम्भों से क्या इस गाँव का मंगल होगा?

बाईसाहेबांच्या वन भोजनाचा दिवस उगवला. सकालींच शहरी बैलगाड्यांची रांग आमच्या खेड्याजवल येऊन उभी राहिली. केवढी मयपुरी भरली होती! त्यांत आडव्यातिडव्या रचलेल्या टेबल-खुर्च्यांचे ढीग, कपबशांचे पेटारे, शहरी खाद्यपेयांच्या करंडया, त्याबरोबरच आमच्या त्या कुंदाच्या अखंड धवल वाफ़यांना जणुं हसणाऱ्या, हैटालणाऱ्या

मालकिन की गोठ का दिन उदित हुआ। शहरी बैलगाड़ियों की पाँत गाँव के निकट आकर रुक गई। अद्भुत मायापुरी रचाई गई थी। उसमें एक आड़ा-तिरछा टेबल-कुर्सियों का पसारा, शहरी खाद्य एवं पेय की टोकरियाँ और उनके ही निकट हमारी उन कुंदफूलों की हँसती-सी स्थायी धवल क्यारियाँ तथा

विविधरंगी विलायती फुलांनींहि भरलेला पेटारा ! गांवच्या हुडर्यांचा आस्वाद घ्यायला येऊनहि निव्वल हुडर्यांच्या चवीनं शहरी रसलोलुपतेचं समाधान होणार नाहीं, असं मला वाटलंच होतं; पण आमचीं कुंदा-मोगऱ्याचीं शुभ्र, सुकुमार, सुवासमय फुलं ! त्यामुलंहि, एक दिवससुद्धा त्या शहरी फुलांचा विसर पडूं नये ना ! बाब छुल्लकच असेल, पण किती अर्थगंभीर ! आम्हांला त्या किती दुरावलेल्या होत्या, याचं जणुं प्रतीकच.

अखेर त्या आल्या---आमच्या बाई-साहेब आल्या. त्या आल्याची वर्दी वाऱ्यासारखी गांवांत पसरली. दुपारच्या वेलीं निवडणं-टिपणं करणाऱ्या गांवच्या लक्ष्म्या आपले दाणें सोडून दारांत जमा झाल्या. रस्तात्यालगतच्या शेतांत निंदण करणाऱ्या बाया-बापड्या आपलीं खुरपीं घेऊन रस्त्याकडेस उभ्या ठाकल्या. पोरा-सौरांना तर दिवसभरच नित्याच्या खेलाचा विसर पडला होता. वनभोज-नाच्या मांडवाजवल, आसपासच्या झाडां-खालीं त्यांनीं केव्हांचाच तल दिला होता. त्यांच्या गर्दींत आतां तरण्याताठयांची व मोठयांचीहि भर पडली.

आम्हां खेडवलांची भू-लक्ष्मी जेव्हां हिरव्या रंगानें नटली होती, तैव्हां आमची शहरची लक्ष्मी उषेच्या रंगाची वेषभूषा करून आली. आमच्या ज्वारीचा दाणा कसा पिकतो, या विवंचनेनं पीडिलेल्या आम्हांला मक्याच्या दाण्यासारख्या मौत्यांचा अखंड साज घातलेल्या त्या रूपराणीचं दर्शन

उन्हें ही तुच्छ माननेवाले विविधरंगी विलायती फूलों के गुच्छे । गाँव के भुट्टों का आस्वाद लेने के हेतु आई सहेलियों की केवल भुट्टों के चाव से ही शहरी रसलोलुपता की सन्तुष्टि नहीं होगी, यही मेरा अनुमान था । हमारे कुंद-मोगरे के शुभ्र, सुकुमार, गंधमय फूल ! उन्हें देखकर भी दिवस-मात्र के लिए उन्हें शहरी फूलों का विस्मरण नहीं हुआ न ! बात छोटी है, किंतु कितनी सार्थक ! उन्होंने हमें कितना दूर रखा, उसका यही तो प्रमाण है ।

अन्ततः वे आईं---मालकिन आईं । उनके आगमन की खबर गाँव में हवा की तरह फैल गई । दोपहरी में नाज बीनने-चुनने वाली ग्राम-लक्ष्मियाँ अपने हाथ का अनाज छोड़कर द्वार पर एकत्र हो गईं । मार्ग के खेतों में निराई करती स्त्रियाँ अपनी खुरपियाँ लेकर बाजू से खड़ी हो गईं । छोरे-छापरों तक ने नित्य के खेलकूद विसराकर गोंठ के मंडप के आसपास पेड़ों के नीचे काफ़ी पहले से धरना दे दिया था । उनकी भीड़ में अब तरुण एवं बड़े-बूढ़े भी आ मिले ।

हमारे ग्राम की भूलक्ष्मी जब हरी-तिमा से सजी-सँवरी हुई थीं तब शहरों की लक्ष्मियाँ लाल रंग की वेषभूषा धारण कर आईं । ज्वार का दाना किस प्रकार पक रहा है इस विवेचना में हम लगे ही थे कि इसके पूर्व मक्की के दाने बराबर मोतियों के अपरिमित शृंगार किए रूपांगनाओं के दर्शन हमें हो गए । और

झालं. आणखी काय हवं होतं ? सर्वतन्हेच्या सौंदर्यांत दैवी अंश असतो म्हणतात. खरंहि असेल तें. म्हणूनच कीं काय, बाईसाहेबांना पाहतांच गांवकन्यांची मस्तकं नम्र होत, हात जौडले जात. पण त्या विनम्र मस्तकांवर प्रसादचिन्हांची तरी पाखर झाली का ?. . . उलट कामदार दिसतांच त्या जणुं आकाशवाणीच्या आवाजानं म्हणाल्या, "काय कामदार, इतकी गर्दी कशाला जमली आहे ? तमाशा आहे काय इथं ? आत्तां येतील सान्या पाहुण्या. मोडा पाहूं ही भोवतालची गर्दी. पौरासौरांना राहूं द्या वाटेल तर त्या पलीकडल्या झाडांखाली; पण जरा टोप्या घालून स्वच्छ होऊन या म्हणावं. . .अन् गप्प बसूं देत अगदीं. . ."

उफाळून येणान्या दुधावर पाण्याचा हबका दिला म्हणजे तें कसं एकदम खालीं बसतं ! पर्वणीच्या आनंदानं लगबगून जाणारीं तीं एवढींशीं पोरं, आपल्या मोकल्या डोक्यांच्या, घामट चेहन्यांच्या जाणिवेनं पार हिरमुसून गेलीं. क्षणभर टकमकाँ पाहून हलूच एकेकानं काढता पाय घेतला. कांहीं वेलानं त्यांतील निम्मींशिम्मीं परत आलीं; पण मांडव त्याच्या दृष्टिपथांत येतांच त्यांचीं पावलं मंदावलीं, चेहन्यावर उसनी संभाविती पसरली व तीं गुपचूप एका दूरच्या झाडाखालीं जाऊन रांगेंत बसून राहिलीं ।

मग पाहुण्या आल्या—येऊं लागल्या, मोटारींची रांगच रांग लागली. प्रत्येक मोटारवलणावर फर्रर्र करी, धुलीचे लोट

क्या चाहिए था ? कहते हैं सब प्रकार के सौन्दर्य में दैवी अंश होता है । वास्तव में होता ही होगा । इसीलिए तो मालकिन को देखते ही ग्रामवासियों के मस्तक नमित हो जाते, हाथ जुड़ जाते । किंतु उन विनम्र मस्तकों पर प्रसाद-चिह्न की रचमात्र भी अनुकम्पा हुई क्या?—उलटे किसानों को देखते ही वे आकाशवाणी-सदृश ध्वनि में बोली, "रे किसानों, इतनी भीड़ क्यों लगा रखी है ? क्या यहाँ तमाशा हो रहा है ? अभी सब मेहमान आएँगे । चलो, यहाँ की भीड़भाड़ हटाओ । अगर चाहो तो लड़कों को उस ओर के पेड़ के नीचे रहने दो, किंतु उन्हें नहला-धुलाकर और टोपियाँ पहनाकर भेजो—देखो, वे बिलकुल चुप बैठें—"

उफनते हुए दूध पर पानी का छींटा पड़ते ही जिस प्रकार वह बैठ जाता है, उसी तरह उत्सव के आनन्द में खोए हुए नंगे सिर और घामड़ चेहरों वाले वे थोड़े वे बालक निराश हो गए । क्षण भर टकटकी बाँधकर देखने के बाद जल्दी ही एक-एक ने अपने पाँव बाहर निकाले । थोड़े समय पश्चात् उनमें से कुछ फिर आ गए, किंतु उत्सव-मंडप ज्यों ही उन्हें दिखाई दिया कि उनके पैरों की गति धीमी हो गई, चेहरों पर दयनीय संभावनाएँ फैल गई और वे दूर एक पेड़ के नीचे पंक्ति बनाकर गुपचुप जा बैठे ।

फिर मेहमान आए—आने लगे । मोटरों की क़तारें लग गई । प्रत्येक मोटर मोड़ पर फर्राती, धूल का ग़ुबार उड़ाती

उडवी व इतक्या बेगानें निघून जाई कीं, जमिनीला जणुं तिचा स्पर्शच होत नसावा. ती मांडवाजवळ पोंचली कीं जिचे पाय खरोखरच कधीं जमिनीला लागले नसतील अशी, एकेक नवनवीन रंगाची वेशभूषा केलेली परी तींतून उतरावी व तिचें तें यान पलीकडे एका नेमलेल्या झाडाखालीं जाऊन उभें राहावें.

एवं इतने वेग से निकल जाती कि मानों उनका धरती से स्पर्श ही नहीं होता हो। मंडप के निकट वे पहुँचतीं। फिर उनमें से आधुनिक नए रंगों के परिधान पहने एक के पश्चात् एक ऐसी परियाँ उतरतीं जिनके पैरों ने सचमुच कभी भूमि का स्पर्श ही न किया होगा और तब उनके वे यान उधर पेड़ के नीचे निश्चित स्थान पर जाकर खड़े हो जाते।

मांडव भरला; सर्व पाहुण्या आल्या. ते पटटेदार, बिल्लेवाल्या नोकर तबकं घेऊन हिंडुं लागले. आधुनिक सोमपालं खुलखुलं लागलीं, त्याहूनहि मंजुल अशा भाषणांच्या कलरवानं मांडव दुमदुमून गेला होता. मांडवच काय, जवळच मोटेची विहीर होती, मोटेनं बुचकली मारली म्हणजेच काय ते तिच्या पाण्यावर तरंग उठायचे, एरव्हीं तिथं अक्षुण्ण विषण्णता पसरलेली असायची; पण मांडवांतले हास्यतरंग जणू तिच्या दगडी भिंतीपर्यंत जाऊन पोंचूं लागले—तिला हसवूं, बोलवूं लागले. पाणी भावोर्मींनीं तरलूं लागलं. भोवतालच्या वृक्षांत जणुं नवचैतन्य भरलं —त्यांची पानं संध्यावातानं डोलं लागली. . किती तरी युगांनंतर त्या स्थलाची अखंड शांतता ढळली; अचेतना, उदासीनता क्षणभर तरी नाहींशी झाली !

मंडप भर गया; सभी आमंत्रित सहेलियाँ आ गईं। पट्टेदार एवं बिल्ले-वाले नौकर फेटों पर धवल पट्टी बाँध सामग्री लेकर भीतर से आने लगे। आधुनिक सोमपात्र झलमलाए, मंजुल बातों के कलरव से मंडप गूँज उठा। मंडप ही क्या, उसके पास मोटवाली बावड़ी भी जिसमें मोट के गिरने से पानी में तरंगे उठतीं और अक्षुण्ण विषण्णता पसर जाती, उसकी पथरीली दीवारों तक मंडप के नीचे की हास्य-ऊर्मियाँ पहुँचकर उसे हँसाने-बुलाने लगीं। भावों की लहरों से जल तरंगित होने लगा। आसपास के वृक्षों में नई चेतना संचरित हुई—पल्लव सांध्य-वायु से डोलने लगे—कितने युगों के बाद इस स्थान की बिजड़ शान्ति भंग हुई, अचैतन्य उदासीनता क्षणभर के लिए लुप्त हो गई।

पण हें चैतन्य किती वरवरचं होतं !

पर यह चैतन्य कितना ऊपरी था !

सहजसंवादी निसर्ग त्या वलवासाख्या चैतन्यौघाने प्रफुल्लित झाला; पण त्या लवलवत्या पानांच्या वृक्षांखालीं मानवजात होतीं, त्या विहिरीच्या आसन्यानं, मोटेच्या हौदावरहि मानवजात होतीं. कसे होते त्यांचे चेहरे ! कांहीं से दूरत्वाच्या भावनेनं व्यापलेले...तर कांहींसे विस्मयचकित कुतूहलानं, जिज्ञासेनं एकमेकांशी बोलूं पाहणारे, तर संकोचानं, भीतीनं दडपलेले..अगदीं स्तब्ध, केविलवाणे, उभेच उभे...!

सहज व्यक्त प्रकृति बारिश की पहली फुहार के समान चैतन्यावेग से प्रफुल्लित हो गई। किंतु उन झिलमिलाते पत्तोंवाले वृक्षों के नीचे मानव जाति थी; उस बावड़ी से लगे हुए मोट के हौद पर मनुष्य थे। उनके चेहरे कैसे थे। कुछ परायेपन के भावों से मंडित—कुछ विस्मयचकित, कुतूहल और जिज्ञासावश एक दूसरे से प्रश्न करते हुए से होकर भी संकोच और भय से दबे हुए—एकदम स्तब्ध, लाचार, स्थिर...!

मी दूरच्या एका झाडाआड एक्टाच उभा होतों, मांडवांतील उत्सवपूर्ण दृश्य नीट, निरखतां येईल तितकें, निरखीत होतों, मांडवाबाहेरच्या दृश्याकडे डोले वळले कीं, मला कांहीं निरखणं अशक्यच होई !

मैं दूर के एक पेड़ तले एकाकी खड़ा हुआ था। वहाँ से मंडप के नीचे का उत्सव-दृश्य ठीक से दिखाई दे रहा था। मंडप के बाहर दृष्टि घुमाते ही मेरे लिए कुछ दीख पड़ना असम्भव हो जाता।

संध्याकाल झाली. सूर्यकिरणंहि त्या मांडवापुढं साष्टांग दण्डवत् घालूं लागलीं. निरोप घेऊं लागलीं. त्या असामान्य भूषासुंदरींच्या त्या अप्सरांच्या परतवाटेवर जणुं कांचनवस्त्राच्या पायघड्या घालूं लागलीं.

संध्या हो गई। रवि-किरणें भी उस मंडप के आगे साष्टांग प्रणाम करने लगीं, बिदा लेने लगीं और उन असाधारण अलंकृत सुन्दरियों, अप्सराओं के मार्ग में मानों कंचनवस्त्र के पाँवड़े बिछाने लगीं।

त्यांतली एक उठली. तिनं आपल्या डाव्या हाताकडे नजर टाकली व आमच्या ग्रामस्वामिनीचा निरोप घेतला. दुसरी उठली, तिसरी उठली, साऱ्या उठल्या. सर्वांनीं आपल्या डाव्या, हाताकडे दृष्टिक्षेप केले व लगबगीनं आपलीं दुकूलं नीट केलीं. रंगांत रंग मिलाले, एक झाले, पण विभिन्न राहिले... जणुंसूर्यास्तानं रंगलेला मेघच फर्रर्र—फर्रर्र..यानं सुरू झालीं.

उनमें से एक उठी। उसने अपने बाएँ हाथ की ओर दृष्टि डाली एवं हमारी मालकिन से बिदा माँगी। फिर दूसरी उठी, तीसरी उठी, सभी उठ गईं। सभी ने बाएँ हाथ की ओर दृष्टि-क्षेप किया और लगे हाथ अपने वस्त्र ठीक किए, रंगों से रंग मिले, एक होकर भी वे अलग-अलग रहे—मानो डूबते हुए सूर्य से अनुरंजित मेघ—फुर्रर्र-फुर्रर्र—ध्वनित हुए। एक के बाद एक मोटरें मंडप के

एकामागून एक मांडवापाशीं आलीं. हलूच डोक्यावरील झुलझुलता पदर सावरीत, ओचे उच्लून घेत, एकेकीनं रंगीत पादलाणांतला आपला नाजुक पाय आपल्या यानांत ठेवला. दारं धडाधड बंद झालीं. खिडकीशीं रक्त नखाग्राचीं नाजुक बोटं निरोपासाठीं हललीं व एकेक यानं निघून गेलीं.

एकीनंहि, आल्यापासून जाईपर्यंत, झाडांखालच्या मानवजातीकडे—विहिरीजवलच्या मानवजातीकडे—मान वलवून पाहिलं नाहीं. अप्सरा ना त्या !

कांचनाच्या पायघड्या नाहींशा झाल्या.

अंधार पसरूं लागला. झाडांखालची मानवजात परत गेली. रात्रीचं राज्य सुरू झालं. पुन्हां पूर्वींची उदास शांति . . .

तेव्हांपासून दिवस उगवतो, मावलतो; माझे नित्याचे व्यवहार चालू असतात; पण मानांत खोल एक चित्र पुनः पुन्हा उमटूं लागतं व विरून जातं.

कसल्याशा दिव्य यानांतून अप्सरा येतात, दिसूं लागतात व नाहींशा होतात. त्यांतली एकहि वलून खालीं वाकून मानवजातीकडे पाहत नाहीं !

पास आईं। धीरे से माथे पर झीना पल्ला सँवारतीं एवं एड़ियाँ ऊँची करती हुई अप्सराओं ने रंगीन पदत्राणों वाले अपने नाज़ुक पैर यानों में रखे । दरवाज़े फटाफट बंद हुए । खिड़कियों से लालिमा-मंडित नखाग्रों वाली कोमल उंगलियों के पोर बिदाई के हेतु हिले। एक के बाद एक, मोटरें चली गईं।

एक ने भी आने के पश्चात् और जाने तक वृक्षतले बैठी मानवजाति एवं बावड़ी के निकट जमे हुए मानवों की ओर गरदन उठाकर भी नहीं देखा। अप्सराएँ थीं न वे !

कंचन के पाँवड़े मिट गए।

अंधकार पसरने लगा। पेड़ के नीचे की मानवजाति लौट गई। रात्रि का साम्राज्य आरम्भ हुआ। फिर वही पहले जैसी उदास शान्ति . . .

तब से दिन उगता है, ढलता है, मेरा दैनिक कार्य चलता रहता है। पर मन में एक गहरा चित्र बराबर उभर कर मिट जाता है।

इसी प्रकार के दिव्य यानों में अप्सराएँ आती हैं; वे दिखाई देती हैं और चली जाती हैं। उनमें से एक भी ग्रीवा मोड़ कर मानव-जाति की ओर नहीं देखती।



हिंदी साहित्य : 1961

जगदीश चतुर्वेदी

हिंदी कविता :

आज की हिंदी कविता पर अति-वैयक्तिकता और बौद्धिक जटिलता का आरोप लगाया जा रहा है। किसी हद तक यह सच भी है, किंतु आज की विश्वजनीन परिस्थितियों को देखते हुए यह युग सापेक्ष ही प्रतीत होता है। पिछले दशक से जो काव्य-धारा एक नया मोड़ ले रही है, उसकी श्रीवृद्धि इस वर्ष की कविताओं में दिखाई देती है। यों तो बहुत सा अनर्गल और बहुत सीमा तक अनगढ़ काव्य-सृजन भी हुआ, किंतु पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी अच्छी रचनाएँ देखने में आईं और वह भी कई नए हस्ताक्षरों की—यह बात कविता के भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है। नई कविता में ऐसी कितनी ही प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, जो नई काव्य-दिशाओं के अन्वेषण में रत हैं।

इस वर्ष कुछ बहुत अच्छे काव्य-संग्रह देखने में आए हैं। कुँवरनारायण को अभी तक लोग अति वैयक्तिकता से घिरे हुए कवि के रूप में मानते रहे हैं। किंतु, उनके सद्यःप्रकाशित संग्रह 'परिवेशः हम तुम' की सहज और सरल कविताओं में उस जटिलता का प्रतिबिंब परिलक्षित नहीं होता। अधिकांश प्रेम-संबंधी कविताएँ इसमें हैं—अत्यंत हृदयग्राही, आवेगपूर्ण। जीवन की अत्यंत सहज अनुभूति उनकी कविताओं में दिखाई देती है। दूसरा कविता-संग्रह है—गिरिजाकुमार माथुर का 'शिलापंख चमकीले'–शिल्प की दृष्टि से कई कविताएँ अत्यंत सुंदर हैं। आधुनिक कवि की आकुलता, समाज की विषमता की एक कचोट, जो प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति को यदाकदा विचलित करती है, गिरिजाकुमार में भी दिखाई

देती है। यथा, उनके संग्रह 'शिलापंख चमकीले' की निम्न पंक्तियाँ :—

ऊब, घबराहट
बेचैनी, बोरियत,
आशका, आकुलता, चिंता, अनास्था,
क्षणजीवी, त्वचासुखा,
बदमिजाज, नुक्ताचीं,
अपने में लीन,
किंतु आत्मविश्वासहीन।

किंतु इस वर्ष की बहुचर्चित कृति है–दिनकर जी की 'उर्वशी'। इसमें पुरुरवा तथा उर्वशी की पौराणिक प्रेम कहानी है। इसे काव्य-रूपक की शैली में पाँच अंकों में समाप्त किया गया है। यद्यपि इसका गठन प्रबंध-काव्य के समान है, किंतु इसमें गीति-काव्य के तत्त्व अधिक मात्रा में हैं। वस्तुतः इसमें सौन्दर्य की अगाध पिपासा, स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति सार्थक रूप में व्यक्त हुई है। दर्शन के क्षेत्र में 'उर्वशी' प्रेम की व्याख्या एक समष्टि के रूप में, एक चिरंतन सत्य के रूप में प्रस्तुत करती है। पुरुष और नारी के मिलन, वियोग, आकर्षण, स्पर्श, प्रथम भेंट की तल्लीनता आदि का अत्यंत हृदयग्राही, प्रांजल वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। आकर्षण की तीव्रता एवं माधुरी का सजीव चित्रण दृष्टव्य है—

उफ़ री यह माधुरी !
और ये अधर विकच फूलों-से!
ये नवीन पाटल के दल
आनन पर जब फिरते हैं,
रोम-कूप, जानें भर जाते
किन पीयूष-कणों से !
और सिमटते ही कठोर,
बाहों के आलिंगन में;
चटुल एक पर एक उष्ण
ऊर्मियाँ तुम्हारे तन की
मुझमें कर संक्रमण प्राण
उन्मत्त बना देती हैं।

समूचे काव्य में मनोरम चित्रों की सुष्ठु योजना दिखाई देती है। उर्वशी का माता रूप उतना नहीं उभर सका, जितना प्रेयसि का, पिपासु प्रिया का। प्रेयसि के रूप में वह सौन्दर्य की एक किरण है—एक देदीप्यमान् ज्योति। 'उर्वशी' निश्चय ही काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से दिनकर जी की रचनाओं में श्रेष्ठ समझी जाएगी।

उर्वशी के अलावा बच्चन जी का काव्य-संग्रह 'त्रिभंगिमा' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है। पिछले कुछ वर्षों से लोकधुनों पर आधारित जो गीत हिंदी संसार को बच्चन जी दे रहे हैं, उनमें से कुछ संग्रह रूप में 'त्रिभंगिमा' में प्रकाशित हुए हैं। निश्चय ही उनमें गीत-तत्त्व की प्रधानता है।

दो कवियित्रियों के संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं—कांता का 'जो भी कुछ देखती हूँ' और कुमारी राधा का 'सरयू कछारों की हरिणी'—दोनों में ही प्रेम संबंधी कविताएँ हैं। प्रेमानुभूति कांता में बहुत गहरी है, जीवन के तमाम सुख दुःख की भावनाएँ जो वियोगजन्य एकांतिकता ने उसे दी हैं—अत्यंत तल्लीनता की अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत है। प्रेम के अत्यंत सूक्ष्म चित्र उसकी कविताओं में पाए जाते हैं—स्थूलता के स्थान पर

अनुभूति की गहनता व आत्म संवेदना इनमें मुखरित हुई है। राधा की कविताएँ उतनी प्रभावित नहीं करतीं जितनी कांता की, फिर भी उनमें संभावनाएँ हैं।

जीवन के कटु अनुभवों को, सृजन के अविस्मरणीय, एकांतिक क्षणों को वाणी दी है पुरुषोत्तम खरे ने––

हम छोटे, नए लोग
खोजों के पीछे पागल हैं,
अनस्पर्श छूने को व्याकुल हैं,
अनगढ़ा गढ़ने में रत हैं हम।

('सृजन के पीड़ित क्षणों में' संग्रह से)

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में खरी उतरतीं हैं विनोदचंद्र पांडे की सहज, स्वाभाविक कविताएँ––तमाम कविताएँ, प्रेम संबंधी अपरूप बिंबों की अनूठी कविताएँ। प्रेम को इन्होंने अपने सनातन रूप से पृथक, एक नए संदर्भ में, एक विशिष्ट सौन्दर्य बोध के अर्थ में प्रस्तुत किया है। उनके सद्य:प्रकाशित संग्रह 'लाल फूलों की टहनी' की कुछ रचनाएँ दृष्टव्य हैं :—

कुछ देर ही रहेगी
खुशबू तुम्हारी यहाँ
हवा के हाथ भी
रह जाएँगे खाली
इस जगह था
इतना सौंदर्य-लाल रंग
इतना हर्ष एक हृदय में।

('अक्तूबर में बिदाई'––लाल फूलों की टहनी)

* * *

उसने कहा
कुछ देर में चाँद
खिड़की से निकल जाएगा
ये तुम्हें देखने का
—वसन उतार डालो—
मुहूर्त निकल जाएगा।

(लाल फूलों की टहनी)

श्री नरेन्द्रकुमार सेठी का कविता-संग्रह 'शब्द की छलना' में अधिकतर कविताएँ बहुत गद्यात्मक हो गई हैं। वैसे उनमें सम्भावनाएँ पाई जाती हैं।

इसी वर्ष 'राजपाल एण्ड सन्स' ने 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि' संग्रह-माला में दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर और रामावतार त्यागी की कुछ कविताएँ क्रमश: मन्मथनाथ गुप्त, अमृतलाल नागर, डा० नगेन्द्र तथा क्षेमचंद्र 'सुमन' द्वारा लिखी गई उनकी जीवनियों सहित प्रकाशित की हैं। चूंकि इनमें संकलित कविताओं का सृजन काफी पहले हुआ है, अतएव उनकी समीक्षा यहाँ करना समीचीन नहीं होगा।

हाँ, इस वर्ष कुछ पत्रिकाओं ने कविता विशेषांक निकाले। अलवर से 'कविताएँ : 1961' प्रकाशित हुई और जयपुर से 'कविताएँ' मासिक प्रतिमाह प्रकाशित होती रही। इन तमाम पत्रिकाओं एवं संकलनों तथा कल्पना, लहर, ज्ञानोदय, ज्योत्स्ना आदि में कई अच्छी कविताएँ पढ़ने को मिलीं। कई नए कवियों की प्रौढ़ रचनाएँ देखने में आईं। कैलाश वाजपेयी की कविता 'राजधानी' (कल्पना, अप्रैल, 1961), नागानंद मुक्तिकंठ की 'आज यह सड़क है' (कल्पना, मार्च, 1961), लक्ष्मीकांत वर्मा की 'शीर्षस्थ

लोगों के प्रति एक शीर्षक विहीन कविता' (कल्पना, जून, 1961), राजा दुबे की 'सारी प्रेयसियों के नाम' (कल्पना, जुलाई, 1961) कुछ ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें आधुनिक जीवन की विडंबनाओं, मानव-मूल्यों को नई उद्भावनाओं द्वारा व्यक्त किया गया है।

इसी वर्ष नई कविता का 'संयुक्तांक 5-6' प्रकाशित हुआ। नई काव्य दिशाओं तथा उनके सिद्धांतों के संबंध में इसमें कई परिचर्चाएँ तथा निबंध भी प्रकाशित हुए। 'नई कविता की वर्तमान स्थिति' पर डा० देवराज, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा० शंभूनाथ सिंह तथा कवि गिरिजाकुमार माथुर की परिचर्चा में नई कविता के वर्तमान रूप तथा संभावनाओं पर कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए। श्री विजयदेवनारायण साही के लंबे लेख 'लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस' में छायावाद से अज्ञेय जी तक के काव्यगत् विकास का चित्रण एक विचारपूर्ण दृष्टि से प्रस्तुत किया गया। किंतु, पिछले नई कविता के अंकों की तरह कविताओं का चयन ठीक नहीं किया गया। एक नए कवि—विपिन कुमार अग्रवाल की रघुवंश द्वारा दिए परिचय सहित बहुत सी कविताएँ प्रकाशित की गईं, जो कविताएँ नहीं कही जा सकतीं। वह कौन सी नई शैली के विधायक बनाकर इस रूप में अवतरित किए गए हैं, समझ में नहीं आया।

'लहर' का कवितांक अपेक्षाकृत अच्छा रहा। इसमें श्रीराम वर्मा की आत्मकथ्य सहित प्रेषित कविताओं में ताजगी है। उनकी कुछ अच्छी कविताएँ इसमें प्रकाशित हुई हैं। शकुंत माथुर, अशोक वाजपेयी तथा राजकमल चौधरी की कविताएँ भी अपने शिल्प-सौष्ठव के कारण याद की जाएँगी। विष्णुचन्द्र शर्मा का लेख 'नगर : रचना प्रक्रिया का माध्यम' आज के कवि का, जो वस्तुतः नगर की ओर भाग रहा है, के मानसिक ऊहापोह का चित्रण यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त लहर के अन्य अंकों में, नागार्जुन की कविता 'पलायन' (लहर, मार्च, 1961) अपने नए भाव-बोध के कारण हमारा ध्यान आकर्षित करती है। 'लहर' के अक्तूबर, 1961 के अंक में प्रकाशित शमशेरबहादुर सिंह की कविता 'तब कुछ नहीं होता' की रचना-प्रक्रिया, भावोद्रेक की अनुभूति दृष्टव्य है :—

जब मैं कहानी कहने, बनने—
जब मैं कविता ढालने, ढलने—
जब खेल के इनामात मेरी बाँहों में—
(जब कला के माध्यम से आधी कही
हुई बातें, पूरी हो जाती हैं
अपने आप)
—तब क्या ? कुछ नहीं होता,
मैं जिंदा रहता,
अपने को पाता हूँ जिंदा।

जयपुर से प्रकाशित 'कविताएँ' मासिक के प्रत्येक अंक का चयन सराहनीय है। सभी कवियों की रचनाएँ अच्छे स्तर की हैं—विश्वास है, कविताएँ अपना स्तर कायम रखेंगी। सितम्बर अंक में प्रकाशित अमृता भारती की कविता 'मैं

बहुत परवश हूँ' शब्द-योजना की विशिष्टता तथा अक्तूबर अंक में प्रकाशित राजीव सक्सेना की कविता 'एक सिलहुट का गीत' अनुभूति की तीव्रता तथा अभिव्यक्ति की प्रांजलता के कारण विशेष आकर्षक है। ज्ञानोदय में अजितकुमार की 'झरोखे से झाँकती सूरज-किरण' (फ़रवरी, 1961) तथा इन्दु जैन की 'बाँस का घना झुरमुट' की प्रतीक-योजना सुंदर है।

अलवर से प्रकाशित 'कविताएँ' 1961 एक अच्छा प्रयास है, किंतु कविताओं का स्तर ठीक नहीं है। फिर भी, इन तमाम वर्ष की काव्योपलब्धियों को देखकर यह कहा जा सकता है कि कविताएँ—अच्छी कविताएँ अधिक मात्रा में न सही, लिखी अवश्य जा रही हैं, और उनका उचित मूल्यांकन भी हो रहा है। आज का कवि अपने दायित्व के प्रति पिछली पीढ़ी से अधिक जागरूक है, सचेत है।

कथा साहित्य :

साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में आज का कथा-साहित्य बहुत उन्नत है। इस वर्ष कथा-साहित्य के संबंध में विभिन्न चर्चा, परिचर्चाएँ विभिन्न पत्रिकाओं ने प्रकाशित कीं, और इससे यह पता लगा कि हम कहानी की अति आधुनिक उपलब्धियों के प्रति बहुत जागरुक हैं। 'नई कहानी' के नाम पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने कई प्रसिद्ध समीक्षकों तथा कथाकारों के विचार प्रस्तुत किए किए कि यह नामांकन भ्रमपूर्ण है या इसमें कोई तथ्य भी है। कथासाहित्य के क्रमिक विकास को किसी नाम विशेष में कैद कर देना समीचीन होगा या नहीं, इस पर विस्तृत रूप से विचार किया गया। मुझे स्मरण हो आते हैं 'लहर' और 'बासंती' के कहानी विशेषांक, पटना से मधुकर सिंह तथा सत्यदेव शांतिप्रिय द्वारा सम्पादित संकलन 'कथाकार'। 'लहर' ने अपने विशेषांक के दो खंड किए—पहले में कथा साहित्य के मूल्यांकन पर नए व पुराने कथाकारों की सही राय बताई व दूसरा अंक विभिन्न कथाकारों की रचनाओं से संबद्ध रखा। 'लहर' का प्रयास सफल रहा व उसके परिसंवादों तथा परिचर्चाओं की बहुत चर्चा हुई।

आज की कहानी इतनी संश्लिष्ट हो गई है कि जीवन के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों, अंतर्द्वंदों का चित्रण उसमें होने लगा है। मन के तमाम आरोहों, अवरोहों तथा ऊहापोहों की व्यंजना उसमें पाई जाती है। शिल्प के प्रति भी आज के कथाकार बहुत सचेत हैं।

आज के कथाकार की दृष्टि भी बहुत अंतर्मुखी हो गई है, वह बहुत संवेदनशील हो गया है। जीवन के कई पहलुओं को उसने समीप से देखा है और उसकी रिक्तता की कचोट उसके मन, प्राणों पर छा गई है। गो कि कहीं यह कुंठा की पर्यायवाची हैं, किंतु यह कुंठा सार्वजनीन है, प्रत्येक संवेदनशील प्राणी इसको महसूस करता है। नगर के जीवन में हम एक अजीब सी उदासी अपने में महसूस करते हैं—कोलाहल के बीच एक तटस्थता की अनुभूति। नगर जीवन के तमाम उपन्यास

इसी प्रकार की घुटन, क्षोभ व ऊब से भरे हुए दिखाई देते हैं। मोहन राकेश का उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' आधुनिक जीवन पर लिखा एक उपन्यास है। दिल्ली के वातावरण का, यहाँ के कॉफ़ी हाउस तथा होटलों, पत्रकारों एवं कलाकारों के जीवन का बहुत सजीव चित्रण इसमें है। किंतु इसकी वास्तविक कहानी है तमाम नगर के कोलाहल से दूर बंद कमरों में चलने वाली हरवंश और नीलिमा—आधुनिक पति-पत्नी की कहानी। दोनों एक दूसरे से ऊबे हुए हैं, दोनों एक दूसरे से घृणा करते हैं, फिर भी साथ रहते हैं। लेखक ने इस मानसिक गुत्थी का कोई हल तो नहीं दिया, वह आवश्यक भी नहीं था, किंतु उसके वर्णन बहुत सजीव हैं—मन को छूने वाले, अपनी ऊब, खीझ का प्रभाव मस्तिष्क पर छोड़ने वाले। पत्रकार मधुसूदन, ठकुराइन आदि के चरित्र भुलाए नहीं जा सकते। मधुसूदन जैसा पात्र हमें आत्मीय सा लगने लगता है। निश्चय ही यह उपन्यास इस वर्ष की श्रेष्ठ कृति है।

कलकत्ता व उसके आसपास के अंचल तथा नगर-जीवन पर लिखा राजकमल चौधरी का विनोद में धारावाहिक व सद्य प्रकाशित उपन्यास है—'नदी बहती थी'। इसमें बंगाली समाज का चित्रण लेखक ने गहरी अनुभूति व सफलता के साथ किया है। विमल ठाकुर का व्यक्तित्व—एक सफल पत्रकार के जीवन का बिम्ब, सोनाली का चरित्र-यौवन व प्रेम का प्रतीक, सविता—आधुनिक भद्र, प्रौढ़ा का फ़्रस्टेटेड रूप, सोमेश गांगुली—युवक प्रेमी—सभी का चित्रण कलापूर्ण है, तराशा हुआ। ऐसा लगता है कि चौधरी ने आदिगंगा के आसपास का, बंगाल के अंचल का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह बहुत गहरी अनुभूति से अनुप्राणित होकर—डूबकर।

ज्ञानेन्द्रकुमार भटनागर के दो उपन्यास इस वर्ष प्रकाशित हुए हैं—'सीपी : मेरे प्राण' और 'माटी हमारी माँ।' 'सीपी : मेरे प्राण' में एक व्यक्ति की कुंठा, जो उसने विभिन्न युवतियों के संसर्ग से पाई है—का सुंदर चित्रण है। 'माटी, हमारी माँ' में निर्माणोन्मुख, स्वांतत्र्योत्तर भारतवर्ष का चित्रण, योजनाओं आदि की प्रगति को पृष्ठभूमि में रखकर किया गया है। सोमेश्वर का आदर्शवादी चरित्र, जिस वातावरण में वह पलता है, उसके अनुरूप थोपा गया प्रतीत नहीं होता।

कुछ अच्छे आंचलिक उपन्यास भी इस वर्ष प्रकाशित हुए हैं। शिल्प की दृष्टि से कुमाऊँ की पृष्ठभूमि पर लिखा गया शैलेश मटियानी का उपन्यास 'हौलदार' एक सफल कृति है। डूंगरसिंह का व्यक्तित्व अपनी विशिष्टता—लँगड़ेपन की व्यथा, अतृप्त मन की खीझ तथा अथक संघर्षों में लिप्त जीवन के साथ—मन पर एक असर छोड़ता है। साथ ही भिमुली, रमुवा, जैता, गोबिंदा, पँडित्याणी आदि के चरित्र भी अपने-अपने परिवेश में कुशलता से बढ़े, पनपे हैं। इनके दो और उपन्यास भी प्रकाशित

हुए है—'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' और 'चिट्ठी रसैन'।

गोरखपुर ज़िले के राप्ती और गोर्रा नदियों के भूभाग पर लिखा एक आंचलिक उपन्यास रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' प्रकाशित हुआ है। गो कि यह उपन्यास स्वतंत्रता के पूर्व के कथानक पर आश्रित है, फिर भी इसमें धर्म के ठेकेदारों तथा गाँव के मुखियाओं आदि की खिल्ली उड़ाई गई है। नीरू और संध्या का प्रेम-प्रसंग जातिपाति व ऊँचनीच की थोथी मर्यादाओं को अमान्य कर चित्रित किया गया है। इसी प्रकार का प्रसंग है, बैजू तथा चमारिन के प्रेम पर गाँव मे फैली विद्रोह की लहर।

नारी समस्याओं तथा प्रेम एवं सेक्स पर लिखे कुछ उपन्यासों का ज़िक्र भी समीचीन होगा। यह मनोवैज्ञानिक समस्या आधुनिक कथाकारों द्वारा कई रूपों में निरूपित की गई है। जीवन के अनन्यतम कार्यकलापों के बीच इसका अपना महत्व है। कमलेश्वर का उपन्यास 'डाक बंगला' इरा नामक एक ऐसी युवती की कहानी है, जो कई पुरुषों की प्रेम-पात्री रही। जिसने भावुक कलाकारों, मिलिट्री के अफ़सरों तथा अधेड़, रोगी पुरुषों सभी से प्रेम किया, भोग किया, किंतु जो एक रंगमंच के कलाकार से प्रेम करती रही, उसी को अपना वास्तविक प्रेमी मानती रही। इसमें यह भाव दर्शाया गया है कि औरत जिससे सबसे पहले प्रेम करती है, उसे कभी नहीं भूलती। गो कि यह बात आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है। सारा उपन्यास कश्मीर की सुरम्य घाटियों, पहलगाम के समीप के आड़ू के रास्तों, लिद्दर नदी की बर्फीली खर्राधारों के वर्णनों तथा लिददर-वट के डाक बंगले में एक बर्फानी रात में इरा द्वारा क्लिक को सुनाई अपनी प्रेम कहानी में सीमित है—कई जगह बेतरतीब भी।

वेश्या-जीवन पर अमृतलाल नागर का सशक्त उपन्यास प्रकाशित हुआ है—'ये कोठेवालियाँ'। इसी समस्या पर यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र' का एक उपन्यास देखने में आया है—'गुनाहों की देवी'।

कथाकार चंद्रदेवसिंह का उपन्यास 'आत्महत्या से पहले' में प्रेम-पत्रों, कविताओं तथा फुटकर सूक्त वाक्यों का मुलम्मा बहुत उबानेवाला है। यह उपन्यास अधकचरे प्रेम के उन्माद में 'आत्महत्या' की इच्छा रखने वाले एक भावुक युवक से संबंधित है।

इसके अतिरिक्त, प्रेम समस्या पर कुछ अन्य उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी का उपन्यास 'सपना बिक गया', राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' का 'पाप के परे', रांगेय राघव का 'धरती, मेरा घर' और 'कल्पना' तथा मन्मथनाथ गुप्त का 'देख कबीरा रोया' पुरानी प्रेम-समस्याओं पर आधारित हैं।

कुछ कहानी संग्रह इधर छपे हैं, जिन्हें इस वर्ष की उपलब्धि मानना ठीक नहीं। ये संग्रह मात्र संग्रह भर हैं। उनसे कहीं अच्छी कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं

में इस वर्ष प्रकाशित हुई हैं और पाठकों तथा समीक्षकों द्वारा सराही गई है। फिर भी एक नए कथाकार मनहर चौहान का कहानी-संग्रह 'मत छुओ' की कुछ कहानियाँ उनके भविष्य के प्रति आश्वस्त करती हैं। 'कुरेदन' में स्नेह के अतिरेक में थोड़ा मनमुटाव भी कितना आवश्यक है, इसका मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है। पम्मी और कम्मो के चरित्रों का गठन भी वातावरण-निर्माण में सहायक हुआ है। इसके अतिरिक्त 'कुन्नो', 'नाशपातियाँ' व 'तेतालीसवाँ युधिष्ठिर' कुछ कमज़ोर कहानियाँ होते हुए भी, बुरी नहीं कही जा सकतीं।

शैलेश मटियानी की 'तैतीस कहानियाँ' उनकी 1954 से 1960 के बीच लिखी सभी कहानियों का संग्रह है। सभी कहानियों को छपाने के मोह में कई कमज़ोर व ग़लतफहमी पैदा करने वाली कहनियाँ भी इसमें सम्मिलित हो गई हैं। फिर भी, 'एक कोप चा : दो खारी बिस्किट', 'जिबूका', 'हरकू हौलदार' 'ग़रीबुल्ला' 'बाली-सुग्रीव' आदि कहानियाँ कथ्य व शिल्प की दृष्टि से सुन्दर बन पड़ी हैं। आंचलिक शब्दों के प्रयोग ने उनमें अधिक प्रांजलता भरी है।

एक नए कथाकार हरिप्रकाश का कहानी-संग्रह 'मिट्टी की लोथ' भी देखने में आया है। कहानियों में ग्राम्य जीवन का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। कई कहानियों में ताज़गी है, नयापन है। 'मालिक कौन', 'मिट्टी की लोथ' तथा 'जिन्दगी की माँग' कहानियाँ सुन्दर हैं।

इसके अतिरिक्त श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानियों का संग्रह 'नास्तिक', चतुरसेन जी के तीन कथा-संग्रह, किशोर साहू की ग्यारह कहानियों का संग्रह 'घोंसला' (जो पहले 'टेसू के फूल' नाम से प्रकाशित हो चुका है) तथा हिमांशु श्रीवास्तव का 'मंगलध्वनि' भी प्रकाशित हुए हैं।

अज्ञेय जी का कहानी-संग्रह 'ये तेरे प्रतिरूप' और उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' भी इस वर्ष प्रकाशित हुए हैं। 'ये तेरे प्रतिरूप' की सभी कहानियाँ अपने रंग, रूप तथा गठन की दृष्टि से इस वर्ष की कहानियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। 'सेब और देव' में एक कलाकार के मन की अनुभूति, जब वह एक पुरानी मूर्ति को चुपचाप चुराकर भागता है, का सुन्दर चित्रण है। शिल्प की ताज़गी मिलती है 'नारंगियाँ' और 'हज़ामत का साबुन' नामक कहानियों में। आपका नया उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' हिंदी का प्रथम 'अस्तित्ववादी उपन्यास' कहा जा सकता है। अस्तित्ववाद के सभी उपकरण इसमें सन्निहित हैं। सार्त्र के उपन्यासों की तरह मृत्यु के 'हॉरर' से यह उपन्यास प्रारंभ होता है और मृत्यु ही इसकी चरम परिणति है। सेलमा का अतीत, योके का जीवन सभी कुछ इसी भावना को वहन करने में सहयोगी होते हैं। यह उपन्यास हिंदी संसार की एक नई, अनन्य उपलब्धि है।

कुछ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों की चर्चा भी समीचीन होगी।

इस वर्ष 'लहर' के 'नई-कहानी विशेषांक' में कुछ अच्छी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। धर्मेन्द्र गुप्त की कहानी 'एक आदमी की सल्तनत : छिलई ईंट रोड' का नबाब एक ऐसा चरित्र है, जो विशिष्ट न होते हुए भी अपनापन लिए है—लेखक ने अत्यंत कुशलता से उसका चित्रण किया है। निश्चय ही यह कहानी कई दिनों तक याद की जाएगी। राजेन्द्र किशोर की कहानी 'असुविधा' भी एक भद्र महिला के जीवन के कुछ अत्यंत गोपनीय पहलुओं को कलात्मक रूप में प्रतिभासित करती है। यूँ हरिशंकर परसाई की कहानी 'बैताल की सत्ताईसवीं कथा' असर छोड़ती हैं। उषा प्रियम्वदा की कहानी 'प्रश्न और उत्तर' अत्यंत सहज ढंग से कही गई एक अच्छी कहानी है।

'कल्पना' में भी कुछ अच्छी कहानियाँ इस वर्ष प्रकाशित हुई हैं। रमेश बक्षी की कहानी 'तितली के पंख' (कल्पना : जनवरी, 1961) अत्यंत सहज ढंग से एक पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करती है। घरेलू स्त्रियों के सौन्दर्य-बोध का मज़ाक़ इसमें बहुत कुशलता से उड़ाया गया है। सुशीलकुमार की कहानी 'लालसा' (कल्पना, मार्च, 1961) में एक ताज़गी है, जो मन को छूती है। 'सर्द और सफेद तलवे' : मुद्राराक्षस (कल्पना : अगस्त, 1961) में इला का मानसिक ऊहापोह, उसका लाश के सर्द और पीले तलुवों को देखने के बाद का रुख, उसकी संजीदगी, सब कुछ अत्यंत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत है। शिल्प की दृष्टि से यह कहानी एक उपलब्धि है। मार्कण्डेय सिंह की कहानी 'क्यू' (कल्पना, नवम्बर, 1961) एक अच्छी कहानी है।

'नई कहानी', 'कहानी', 'ज्ञानोदय', 'सारिका' तथा 'लहर' के अन्य अंकों में भी अच्छी कहानियाँ दिखाई दीं। 'कहानी' के मार्च अंक में प्रकाशित रामनारायण शुक्ल की कहानी 'कैलेन्डर का चित्र' बहुत अच्छी कहानी है, गुहा बाबू का चरित्र आज के मध्यमवर्गीय जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। 'नई कहानियाँ' के मार्च अंक में प्रकाशित अमरकांत की कहानी 'मूस' निम्नवर्गीय चरित्रों के उद्घाटन तथा उसके परिवेश के चित्रण में सफल है। कहानी (अक्तूबर, 1961) में प्रकाशित ज्ञान प्रकाश की कहानी 'मज़दूर' में वकील साहब का मनोवैज्ञानिक चित्रण, उनके मन का फ़्रस्टेशन अत्यंत कुशलता से प्रतिपादित किया गया है।

इनके अतिरिक्त मई की 'नई कहानियाँ' में प्रकाशित मन्नू भंडारी की कहानी 'क्षय', कहानी के जून अंक में प्रकाशित शानी की कहानी 'सब कहीं अंधेरा' और प्रयाग शुक्ल की कहानी 'सुबह' तथा 'परम्परा' में प्रकाशित शैलेश मटियानी की कहानी 'माता का हिया, पूत के बचन' अच्छी कहानियाँ हैं।

इस प्रकार, हम यह कह सकते हैं कि आज के कथाकार का दृष्टिकोण बहुत व्यापक हो गया है और जीवन के इतने अनछुए कोनों को वह देख रहा है—ऐसी मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को वह सुलझा रहा है, जैसा पहले कभी देखने

में नहीं आया। इस वर्ष का कथा-साहित्य हिंदी के भविष्य के प्रति आशान्वित करता है।

हिंदी नाटक :

यूँ तो इस वर्ष कोई भी महत्त्वपूर्ण नाटक प्रकाशित नहीं हुआ, किन्तु पिछले वर्षों की तुलना में इस वर्ष कई नामधारी नाटककारों ने रंगमंच के प्रति विशेष रुचि अवश्य दिखाई। प्रसन्नता का विषय है कि देश में विभिन्न स्थानों पर रंगमंचों का निर्माण हो रहा है, और उसके प्रति नाट्यकारों का रुझान बढ़ रहा है। कुछ समय पूर्व तक साहित्यिक नाटक लिखनेवालों से रंगमंच का कोई संबंध नहीं था, अतएव हिन्दी में रंगमंच के उपयुक्त नाटकों की कमी सदैव से बनी रही है।

व्यावहारिक दृष्टि से भी नाटककारों को, व्यवसायी रंगमंच होने के कारण साहित्य की दूसरी विधाओं की तरह कोई उचित लाभ आर्थिक या सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में नहीं मिला। इसी कारण अधिकांश साहित्यकार नाट्य लेखन की ओर से उदासीन ही रहे। किंतु, इस वर्ष कुछ साहित्यिक नाटकों का प्रदर्शन किया गया और वह सफल भी हुआ। इस दिशा में कमलेश्वर ने काफ़ी सक्रिय रूप में योग दिया और टैगोर के नाटक 'नष्टनीड़' का हिंदी नाट्य रूपान्तर प्रस्तुत किया। साथ ही उनके नाटक 'अधूरी आवाज़' का प्रदर्शन भी दिल्ली में किया गया। इसके पहले यह नाटक इलाहाबाद में भी खेला जा चुका है। नाटक–प्रदर्शन में किन दिक्कतों का सामना करना पड़ा, इसके पूरे वर्णन सहित कमलेश्वर का यह संपूर्ण नाटक 'कल्पना' के अक्तूबर, 1961 के अंक में प्रकाशित हुआ।

इलाहाबाद में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल तो एक नाट्य प्रशिक्षण स्कूल भी चला रहे हैं और उनके निर्देशन में उनके विद्यार्थियों द्वारा कई अच्छे नाटक अभिनीत भी किए जा चुके हैं। इन्होंने कुछ नाटक भी लिखे हैं।

इस वर्ष कुछ नए हस्ताक्षरों के अच्छे नाटक देखने में आए। विजयकुमार गुप्त का एक छोटा सा किंतु अभिनय की दृष्टि से पूर्ण नाटक 'मुरदा जी उठा' प्रकाशित हुआ है। इसमें एक ही दृश्य है, पर अत्यंत मनमोहक। कथानक में रंगनाथ नामक एक प्रौढ़ व्यक्ति की पहली पत्नी का देहान्त हो गया है। उसकी पत्नी से एक सुन्दर कन्या मेनका भी है, जो अब बीस वर्ष की है। उसकी दूसरी पत्नी केतकी उसे मूर्ख बनाकर सारी ज़ायदाद अपने नाम लिखा लेना चाहती है। एक वकील भी इस षड्यंत्र में साथ देता है। उनका षड्यंत्र सफल भी होता है, किन्तु दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने के कुछ क्षण पूर्व ही रंगनाथ की मृत्यु हो जाती है। पत्नी उसका अँगूठा दस्तावेज़ पर लगाना चाहती है, किंतु सफल नहीं होती। वह मेनका से कहती है कि अब मैं तुझे देखूँगी, इतने में ही मुरदा जिंदा हो जाता है। वास्तव में रंगनाथ इसमें मृत्यु का

अभिनय करता है, मरता नहीं है।

विशंभरनाथ उपाध्याय का आल्हा-ऊदल की कथा पर आधारित एक ऐतिहासिक नाटक 'कलियुगीन अभिमन्यु' प्रकाशित हुआ है।

श्रीकृष्ण तथा मनमोहन 'सरल' द्वारा संपादित 'प्रतिनिधि हास्य एकांकी' एक अच्छा प्रयास है। इसमें रामकुमार वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, बिमला लूथरा आदि सभी प्रतिष्ठित नाटककारों के एकांकी संकलित किए गए हैं।

उदयशंकर भट्ट की एक पद्य-नाटिका 'नहुष निपात' तथा सात एकांकी 'जवानी और छः एकांकी' नाम से प्रकाशित हुए हैं। राजकुमार का 'पंचमांगी' भारत की सीमावर्ती समस्याओं पर आधारित एक साधारण कोटि का नाटक है।

अभिनय-योग्य कई फुटकर एकांकी 'कल्पना' में भी प्रकाशित हुए। धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने वाला वीरेन्द्रनारायण का 'सूरदास' एक अच्छी कृति है। कल्पना : फ़रवरी, 1961 में मेरा एक नाटक 'पीली-दोपहर' भी प्रकाशित हुआ है। यह एक सामाजिक नाटक है। एक रोगिणी पत्नी के दार्शनिक पति का चरित्र-चित्रण इसमें किया गया है।

रेवतीसरन शर्मा का एक अच्छा एकांकी-संग्रह 'पत्थर और आँसू' भी प्रकाशित हुआ है। इधर-उधर पत्रिकाओं में अश्क के एकांकी भी प्रकाशित हुए हैं।

आज से सौ वर्ष बाद का जीवन कितना यांत्रिक हो जाएगा, इससे संबंधित एक अच्छा रेडियो-नाटक 'कल्पना' के मार्च, 1961 के अंक में गिरिजाकुमार माथुर का 'अवान्तर गृह' प्रकाशित हुआ है। कुछ अन्य रेडियो नाटक ज्ञानोदय में भी प्रकाशित हुए हैं।

इस वर्ष नाट्य-समीक्षा पर भी कुछ अच्छे लेख 'कल्पना', 'ज्ञानोदय' तथा 'कृति' में प्रकाशित हुए। डॉ० रघुवंश का 'नाट्यकला का मनोवैज्ञानिक आधार' (कल्पना, जनवरी 1961), डॉ० सुरेश अवस्थी का 'अभिनेय नाटकों की खोज' (कल्पना, फरवरी, 1961) तथा कल्पना की कुछ टिप्पणियाँ इस दृष्टि से दृष्टव्य हैं। समसामयिक नाट्य-लेखन की समस्याओं पर मार्च, 1961 में एक अखिल भारतीय नाट्य-लेखकों का सेमिनार भी दिल्ली में आयोजित किया गया। इसमें विभिन्न भारतीय नाटककारों ने भाग लिया। इस प्रकार के प्रयत्न भारतीय रंग-मंच तथा नाट्य-लेखन की प्रगति में सहायक होंगे, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

हिंदी समीक्षा :

साहित्य का सृजन और उसकी समीक्षा की गतिविधियाँ बहुत कुछ समानान्तर चलती हैं। रचनात्मक साहित्य और उसके मूल्यांकन की समीक्षा की प्रक्रियाएँ उसके स्वरूप का निर्माण करने में सहायक होती हैं। देश और समाज की परिवर्तनशील प्रवृत्तियाँ ही साहित्य-निर्माण में सहायक होती हैं, दूसरी ओर वही समीक्षा का स्वरूप निर्धारित करती हैं। आज का समीक्षा-साहित्य एक

सचेत बौद्धिक प्रक्रिया का द्योतक है। हमारे सृजनशील साहित्यकार अपने साहित्य के मूल्यांकन तथा उनकी स्थापनाओं के प्रति काफ़ी माला में सचेत हैं।

इस वर्ष यह बात कई क्षेत्रों से उठी कि क्या नई कविता का भविष्य आशाप्रद है? अथवा, उसका भविष्य कैसा होगा? विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इस पर लेख लिखे गए। नई कविता (5-6) में विजयदेवनारायण साही, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकान्त वर्मा ने इसके संबंध में विस्तृत रूप से अपने विचार प्रगट किए। इन पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी चर्चा हुई। एक दूसरा प्रश्न उठा 'नई कहानी' के नामांकन को लेकर, इस पर भी 'लहर' के 'नई कहानी विशेषांक' में काफ़ी विचार हुआ। जैनेन्द्र कुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, शिवदानसिंह चौहान, यशपाल, देवीशंकर अवस्थी, नित्यानंद तिवारी आदि ने इस पर अपनी अपनी राय जाहिर कीं। मैंने भी 'लहर' के माध्यम से अपने सहयोगी मित्रों मुद्राराक्षस, श्याममोहन श्रीवास्तव, राजीव सक्सेना, नरेन्द्र धीर तथा ज्ञानेन्द्र कुमार भटनागर के साथ नई कहानी के नामांकन पर एक परिचर्चा आयोजित की। तीसरा प्रश्न जो इस वर्ष उठा वह था आधुनिकता के स्वरूप के संबंध में। इस पर कल्पना में धर्मवीर भारती का 'आधुनिकता का बोध' शीर्षक निबंध प्रकाशित हुआ। उस पर राजीव सक्सेना तथा ओमप्रकाश 'दीपक' ने अपनी प्रतिकियाएँ 'कल्पना' में ही प्रकाशित कराईं।

साथ ही, इस वर्ष कई अच्छे निबंध-संग्रह भी प्रकाशित हुए। गो कि इनमें से अधिकांश एकेडेमिक स्तर के शोध-प्रबंध ही हैं, किंतु उनमें से अनेकों में एवं अन्य स्वतंत्र ग्रन्थों में आधुनिक साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया। इस दृष्टि से डॉ० देवीशंकर अवस्थी का समीक्षा-ग्रंथ 'आलोचना और आलोचना' एक उपलब्धि है। यह विभिन्न अवसरों पर लिखे गए निबन्धों का संग्रह है। 'साहित्य लेखन: एक व्यावसायिक समस्या', 'रचना और आलोचना' शीर्षक निबन्धों में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं।

उदयशंकर भट्ट के निबन्ध-संग्रह 'साहित्य के स्वर' के कुछ निबन्ध, जैसे 'साहित्य की समस्या', 'साहित्यकार का दायित्व', 'रेडियो नाटक और उसकी उपलब्धि' काफ़ी अध्यवसाय से लिखे गए हैं। 'राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएँ' शीर्षक निबन्ध-संग्रह में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के सामयिक समस्याओं पर अपने विचार संकलित हैं।

कुछ अन्य अच्छे निबंध-संग्रह हैं: डॉ० शम्भूनाथसिंह का 'मूल्य और उपलब्धि', परशुराम चतुर्वेदी का 'साहित्यपथ', डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा का 'काव्य और कला' तथा डॉ० रामदरश मिश्र का 'साहित्य और संदर्भ।

शेष रह जाते हैं, शोध-प्रबन्ध। भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य हो रहा है। प्रति वर्ष हिन्दी में कई अच्छे शोध-ग्रंथ देखने में आते हैं।

इस वर्ष भी कई अच्छे ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। आधुनिक साहित्य पर भी कई शोध-कर्ताओं ने अच्छा कार्य किया है। डॉ० रणवीर रांग्रा का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी उपन्यास में चरित्र–चित्रण का विकास' एक सफल कृति है। इसमें लेखक ने सामग्री का चयन बहुत अध्यवसाय-पूर्वक किया है। इसके अतिरिक्त उपन्यासों पर ही दो प्रबन्ध और प्रकाशित हुए हैं– डॉ० सुषमा धवन का 'हिंदी उपन्यास' और डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री का 'हिंदी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन।'

डॉ० आशा गुप्ता के शोध-प्रबंध 'खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना' में खड़ी बोली काव्य की विविधता तथा 1920 तक की खड़ी बोली कविता का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। यह इस विषय के जिज्ञासुओं के लिए एक अच्छी पुस्तक है। डॉ० श्रीपति शर्मा का शोध-प्रबंध 'हिन्दी नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव' एक सफल कृति है, इसमें लेखक ने पाश्चात्य नाटकों से हिंदी नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

डॉ० रामदीन गुप्त की पुस्तक 'प्रेमचन्द और गांधीवाद' में प्रेमचंद जी की रचनाओं का मूल्यांकन अत्यंत वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादित किया गया है। इस दिशा में काम करनेवालों के लिए पुस्तक बहुत उपयोगी है।

आधुनिक साहित्य से संबंधित अन्य शोध-प्रबंध हैं—डॉ० वेंकट शर्मा का 'आधुनिक हिंदी-साहित्य में समालोचना का विकास' तथा डॉ० रामदरश मिश्र का 'हिन्दी आलोचना का विकास'।

मध्यकालीन साहित्य पर किए गए शोध-कार्य में डॉ० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव का 'मध्ययुगीन रामकाव्य के परिवेश में करुण रस' है। डॉ० श्याम-मनोहर पांडेय के डी० फिल् का प्रबन्ध 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' नाम से प्रकाशित हुआ है। डॉ० त्रिगुणायत का डी० लिट् का प्रबंध 'हिन्दी संत साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि' भी प्रकाशित हो चुका है। मध्यकालीन साहित्य पर किए गए शोधकार्य में प्रभात का मीरा के कृतित्व व व्यक्तित्व पर तथा डॉ० विजय पाल का केशवदास संबंधी शोध ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त डॉ० सावित्री सिन्हा का डी० लिट् का प्रबंध 'ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प' सूरदास से लेकर रत्नाकर तक के कृष्ण काव्य की कलात्मक-अभिव्यक्तियों को उद्भासित करता है।

कुछ अन्य पुस्तकें जो इस वर्ष शोध-प्रबंधों के अतिरिक्त प्रकाशित हुईं, वे हैं: डॉ० रामविलास शर्मा की 'भाषा और समाज', गजानन माधव मुक्तिबोध की 'कामायनी: एक पुर्नविचार' डॉ० जगदीश गुप्त की 'भारतीय कला के पद-चिन्ह', डॉ० रघुवंश की 'नाट्य-कला' तथा डॉ० रांगेय राघव की 'आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और शृंगार।'

कई पुस्तक-समीक्षाएँ भी इस वर्ष

बहुत अच्छी लिखीं गईं। समसामयिक साहित्य का मूल्यांकन सबसे अधिक इसी माध्यम से हो सकता है। कई पत्रिकाओं में बहुत अच्छी पुस्तक-समीक्षाएँ प्रस्तुत हुईं। 'धर्मयुग' में भी कुछ अच्छी समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं। 'कथा-कहानी' मासिक में 'सही राय' स्तम्भ के अन्तर्गत कई उपन्यासों तथा कहानी-संग्रहों की विस्तृत चर्चा की गई। सन् 1961 में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में राजेन्द्र किशोर, राजकमल चौधरी, दूधनाथसिंह, देवीशंकर अवस्थी, सन्हैयालाल ओझा, ओमप्रकाश दीपक, भगवानसिंह आदि ने कुछ अच्छी पुस्तक-समीक्षाएँ प्रस्तुत की हैं।

हिंदी आलोचना पर उसके सभी पहलुओं से विचार करना यहाँ सम्भव नहीं है, किन्तु हम इस बात के प्रति आश्वस्त हैं कि आज का आलोचक समीक्षा को एक ऊँचे धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील है।



सरकारी कामकाज में हिंदी

इस स्तम्भ में सरकारी विज्ञापन, अधिसूचना तथा आदेश के दो-दो नमूने दिए गए हैं। पहला अस्वाभाविक, कठिन और बनावटी है, दूसरा हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल सीधा और सरल।

यदि शब्दानुवाद की शैली अपनाई जाए तो भाषा अस्वाभाविक और दुर्बोध हो जाएगी। यदि हिन्दी के मुहावरों का ध्यान रखते हुए भावानुवाद किया जाए तो भाषा सुबोध और स्वाभाविक होगी।

प्रशासनिक-कार्य के लिए हमें ऐसी भाषा का विकास करना है जो संतुलित हो और भावों को सरलता से व्यक्त कर सके।

दूसरे उदाहरणों में ऐसी ही भाषा लिखने का प्रयत्न किया गया है।

[एक]

राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विद्यालय की 29 वीं पाठचर्या—जनवरी, 1963 में प्रवेश पाने के निमित्त स्थल, जल और वायु सेनाओं की सम्मिलित परीक्षा

इलाहाबाद, बंगलौर, भोपाल, बम्बई, कलकत्ता, कटक, दिल्ली, हैदराबाद, मद्रास, नागपुर, पटियाला, पटना, शिलांग, श्रीनगर और त्रिवेन्दम में दिनाँक 22 और 23 मई, 1962 को केन्द्रीय लोक-सेवा आयोग प्रवेशार्थ परीक्षा आयोजित करेगा।

पात्रता :—परीक्षा में प्रवेश पाने के निमित्त केवल अविवाहित पुरुष-अभ्यर्थी ही आवेदन-पत्र दे सकते हैं।

आयुसीमा—

2 जुलाई, 1945 से पूर्व और 1 जनवरी, 1948 के पश्चात् अभ्यर्थी का जन्म न हुआ हो। किसी भी स्थिति में ये आयु सीमाएँ शिथिल न की जाएँगी।

न्यूनतम शैक्षणिक अर्हताएँ

प्रवेशिका अथवा समकक्ष परीक्षा। इस प्रकार की किसी भी परीक्षा में बैठे हुए या बैठने के अभिलाषी अभ्यर्थियों के आवेदन-पत्र अस्थायी रूप में स्वीकार किए जाएँगे।

सार्वजनिक पाठशालाओं अथवा उन पाठशालाओं के जो विशेषरूप से कैम्ब्रिज विद्यालय प्रमाण-पत्र परीक्षा की ही तैयारी कराती हैं, वे विद्यार्थी भी जो कैम्ब्रिज विद्यालय प्रमाण-पत्र की दिसम्बर 1962 की परीक्षा में बैठने वाले हों, आवेदन-पत्र दे सकते हैं।

प्रवरण--

लिखित परीक्षा में सफलता पाने वाले अभ्यर्थी सेवा-प्रवरण-मंडल के सामने साक्षात्कार और शारीरिक क्षमता-परीक्षा के लिए उपस्थित होंगे।

राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विद्यालय में निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाता है। जिन युवा शिशिक्षुओं के अभिभावकों की मासिक आय 300 रु० से कम हो उन्हें सरकार द्वारा आर्थिक सहायता भी प्रदान की जा सकती है।

आवेदन-प्रपत्र तथा पूर्ण विवरण निकटतम आप्रवेशन कार्यालय, सैनिक उप-क्षेत्रीय मुख्यालय अथवा राष्ट्रीय युवा शिशिक्षु एकक से निःशुल्क प्राप्य हैं।

आवेदन-प्रपत्र तथा अन्य विवरण, सचिव, केन्द्रीय लोक-सेवा आयोग, धौलपुर भवन, नई दिल्ली-11 से भी 1 रु० 'धनप्रेष' (बाद में शुल्क के साथ समायोजित होने योग्य) द्वारा भेजकर प्राप्त किया जा सकता है। प्रेषादेश, धनादेश अथवा चलार्थपत्र स्वीकार्य नहीं हैं। अभ्यर्थी धनप्रेष की पर्णिका पर "राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विद्यालय परीक्षा, मई 1962" को और साथ ही अपने नाम और पूरे डाक-पते को बड़े अक्षरों में लिखे।

भारत में निवास करने वालों के आवेदन-पत्रों को ग्रहण करने की अन्तिम तिथि 22 जनवरी, 1962 है और विदेश में निवास करने वालों के लिए 5 फरवरी, 1962 है।

(17646)

डी० ए० 61/574

[दो]

राष्ट्रीय रक्षा अकादमी

में दाखिले के लिए

स्थल-वायु और नौसेनाओं की सम्मिलित परीक्षा

(29 वाँ पाठ्यक्रम-जनवरी, 1963)

संघ लोक-सेवा आयोग द्वारा अकादमी में दाखिले के लिए 22 और 23 मई, 1962 को इलाहाबाद, बंगलौर, भोपाल, बम्बई, कलकत्ता, श्रीनगर और त्रिवेन्द्रम में परीक्षा ली जाएगी।

पात्रता

परीक्षा में दाखिले के लिए केवल अविवाहित पुरुष उम्मीदवार ही अर्ज़ी दे सकते हैं।

आयु-सीमा

उम्मीदवार का जन्म 2 जुलाई 1945 से पहले और 1 जनवरी, 1948 के बाद न हुआ हो। इस आयु-सीमा में किसी भी हालत में रियायत नहीं दी जाएगी।

न्यूनतम शैक्षिक योग्यताएँ

मैट्रिक या उसके बराबर की परीक्षा। उन उम्मीदवारों के आवेदन-पत्र जो उक्त किसी परीक्षा में बैठे हों या बैठने के इच्छुक हों अस्थायी रूप से स्वीकार किए जाएँगे।

पब्लिक स्कूलों या ऐसे स्कूलों के, जो कि विशेष रूप से केम्ब्रिज स्कूल प्रमाण-पत्र परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को तैयार करते हैं, वे विद्यार्थी भी आवेदन-पत्र दे सकते हैं, जो दिसम्बर, 1962 में केम्ब्रिज स्कूल प्रमाण-पत्र परीक्षा में बैठने वाले हों।

चुनाव

लिखित परीक्षा में सफल उम्मीदवारों को इण्टर्व्यू तथा शारीरिक-क्षमता-परीक्षा के लिए सेवा-चुनाव-बोर्ड के सामने उपस्थित होना पड़ेगा।

राष्ट्रीय रक्षा-अकादमी में प्रशिक्षण निःशुल्क दिया जाता है। सरकार उन कैडेटों को वित्तीय सहायता भी देती है जिनके माता-पिता / अविभावकों की मासिक आय 300 रुपए से अधिक नहीं है।

आवेदन-पत्र तथा पूरे ब्यौरे नजदीक के भर्ती दफ्तर, सैनिक सत्र-एरिया हैड-क्वार्टरों या राष्ट्रीय कैडेट दल यूनिट से निःशुल्क प्राप्त हो सकते हैं।

आवेदन-पत्र तथा अन्य ब्यौरे मनीआर्डर द्वारा एक रुपया भेजकर सचिव, संघ लोक-सेवा अयोग, धौलपुर हाऊस, नई दिल्ली–11 से भी मँगाए जा सकते हैं। (यह एक रुपया बाद में फ़ीस में जमा कर दिया जाएगा) पोस्टल आर्डर या चैक या नोटों के रूप में धन स्वीकार नहीं किया जाएगा। उम्मीदवार को अपने मनीआर्डर कूपन पर "राष्ट्रीय रक्षा-अकादमी परीक्षा, मई, 1962" और बड़े-बड़े अक्षरों में अपना नाम और पूरा डाक-पता भी लिख देना चाहिए।

भारत में रहने वालों से आवेदन-पत्र लेने की अन्तिम तारीख 22 जनवरी, 1962 है और विदेशों में रहने वालों से 5 फरवरी, 1962 है।

(17646) डी० ए० 61/574

[एक]

केन्द्रीय लोक-निर्माण विभाग, नई दिल्ली

कार्यपालक अभियन्ता, डाक तथा तार विभाग, केन्द्रीय लोक-निर्माण विभाग, नई दिल्ली की ओर से 31-1-62 तक निम्नलिखित के लिए संमुद्रित निविदा आमंत्रित है :

(1) जगरांव में डाक घर तथा दूरभाष-विनिमय और कर्मचारी-आवासों के निर्माणार्थ।

उपशीर्ष:— II (क) प्रकार के 2 आवास और I प्रकार के 2 आवास। प्राक्कलित व्यय 21,359 रुपए।

(2) अम्बाला में II (क) प्रकार के 12 आवास और II (ख) प्रकार के 8 आवास।

उपशीर्ष:—शौचालयों का निर्माण, प्रांगण में प्रस्तराचयन, आन्तरिक जल-संभरण तथा स्वच्छता-यंत्र का अधिष्ठापन, जल-निस्सारण तथा सड़कों की व्यवस्था। प्राक्कलित व्यय 21,536 रुपए।

प्रत्येक कार्य के लिए निविदा प्रपत्र का मूल्य 5 रुपए है। अतिरिक्त विवरण के लिए दिनांक 27-1-62 की भारतीय व्यापार-पत्रिका देखिए।

डी० ए० 858 (55) / 61
8184

[दो]

केन्द्रीय सरकारी निर्माण-विभाग, नई दिल्ली

कार्यकारी इंजीनियर, डाकतार प्रभाग, के० स० नि० वि० नई दिल्ली की ओर से ता० 31-1-62 तक निम्नलिखित कार्यों के लिए मुहरबंद टेंडर आमंत्रित किए जाते हैं :

(1) जगरांव में डाकघर तथा टेलीफोन-केन्द्र और कर्मचारियों के रहने के मकान का निर्माण।

विवरण— II (क) टाइप के 2 मकान और I टाइप के 2 मकान। अनुमानित लागत 21359 रु०।

(2) अम्बाला में II (क) टाइप के 12 मकान और II (ख) टाइप के 8 मकानों का निर्माण।

विवरण—शौचालय बनाना, आंगन में फ़र्श लगाना, भीतर के जल का प्रबन्ध और मल निकास की व्यवस्था, नालियाँ तथा सड़कों का निर्माण। अनुमानित लागत 21536 रु०।

प्रत्येक मद के लिए टेंडर के फार्म का मूल्य 5 रु० है। अधिक जानकारी के लिए भारतीय व्यापार-पत्रिका (इंडियन ट्रेड जर्नल) का 27-1-62 का अंक देखिए।

डी० ए० 858 (55) / 61
8184

लारियाँ, पट्टिका स्कन्ध, जस्ते का प्रक्षेप तथा अन्य विविध प्रकार की सामग्रियाँ | क्रोशविक्रय जनवरी, 1962

क्रोशविक्रय की तिथि, समय और स्थान स्मरण रखें।

1. शुक्रवार, 12 जनवरी, 1962 समय 10-30 बजे मध्याह्न पूर्व

यान-उपडिपो, मेरठ

लारियाँ 3 टन 4×2

डाज ... ... संख्या-27

शेवरलेट ... ... संख्या-32

(1) क्रोश विक्रयार्थ जिन यानों का प्रस्तवन किया गया है, वे परम्परागत प्रकार 4×2 और पाँचवीं श्रेणी की संसूचित की गई हैं। इन यानों के इंजन पीठिका के पुर्जे / संघटक भाग इनमें से निकाले नहीं गए हैं। परन्तु संभावित प्रतिक्रोष्टाओं का उत्तरदायित्व होगा कि वे भंडार की अवस्था के बारे में अपना समाधान कर लें। इस सम्बन्ध में कोई भी प्रत्यक्ष या लक्षित अध्याभूति नहीं दी जा रही है।

(2) इन यानों के निर्यात पर भारत सरकार को कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु निर्यात के अन्तिम निर्णय के पूर्व मुख्य नियंत्रक आयात-निर्यात, नई दिल्ली, से इनके निर्यात के गन्तव्य स्थान तथा शोधन मुद्रा के प्रकार का अनुमोदन प्राप्त करना होगा।

2. सोमवार, 22 जनवरी, 1962 समय 10-30 बजे मध्यान्ह पूर्व

केन्द्रीय युद्धास्त्र डिपो, आगरा

पट्टिकास्कन्ध प्रकार क-संख्या 64815 और दूरेक्ष-भारु संख्या-5 और उत्थापक यंत्र संख्या-3

3. शनिवार, 27 जनवरी, 1962 समय 2-30 बजे मध्यान्ह पश्चात्

तार-कर्मशाला, जबलपुर

जस्ते का प्रक्षेप 86906 के० जी० और अन्य विविध प्रकार की सामग्रियाँ

4. सोमवार, 29 जनवरी, 1962 समय 10-30 बजे मध्यान्ह पूर्व

यान उपडिपो, पालम (दिल्ली कैंट)

लारियाँ 3 टन 4×2 डाज... ... ... संख्या-40

क्रम संख्या (1) और (2) में दिए गए अनुदेश प्रभावी होंगे।

निम्नलिखित क्रोशविक्रेता उनके सामने दिए गए क्रोश-विक्रय का संचालन करेंगे :—

1—श्री दुर्गादास कामरा, 13/25, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली (क्रम संख्या-1)

2—सवश्री धर्मपाल चड्ढा तथा सुपुत्र, फ्लैट संख्या-20, शंकर मार्केट, नई दिल्ली (क्रम संख्या-2)

3—सर्वश्री गोपीचन्द तथा सुपुत्र, ठठेरी बाजार, वाराणसी (क्रम संख्या-3)

4—सर्वश्री मोहनलाल तथा समवाय, अनन्त भवन, अम्बाला कैंट (क्रम संख्या-4)

नोट :—समस्त विक्रय कठोरता से "जैसा है, जहाँ है" के आधार पर होगा।

शर्तों और निबन्धनों की घोषणा क्रोश-विक्रय के समय की जाएगी। भंडार का विवरण प्रदान करने वाली सूची संबद्ध क्रोश विक्रेताओं से प्राप्त की जा सकती है।

भारत सरकार,
संभरण तथा उत्सर्जन-महानिदेशालय
राष्ट्रीय बीमा भवन
संसद मार्ग
नई दिल्ली-1

मुद्रा

(17701) डी० ए० 61/620

[दो]

लारियाँ, बगल की पट्टियाँ (स्ट्रैप-शोल्डर), जस्ते की छीजन तथा अन्य प्रकार की विविध वस्तुएँ | **नीलामी बिक्री जनवरी, 1962**

नीलाम की तारीख, समय और स्थान याद रखें

1. शुक्रवार, 12 जनवरी, 1962 प्रातः 10-30 बजे

गाड़ी सब-डिपो, मेरठ

लारियाँ 3 टन 4 × 2

डाज... ... ... संख्या 27

शेवरलेट ... ... संख्या 32

(1) बिक्री की जाने वाली गाड़ियाँ पुराने प्रकार 4 × 2 की और श्रेणी V की बतलाई गई हैं। इन गाड़ियों के इंजन/चेसिस का कोई पुर्जा या हिस्सा बदला नहीं गया है। परन्तु बोली बोलनेवालों की जिम्मेदारी होगी कि वे गाड़ियों या सामान की अवस्था को देख कर अपनी तसल्ली कर लें। इस संबंध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार का कोई आश्वासन नहीं दिया जा सकता।

(2) इन गाड़ियों के निर्यात किए जाने में भारत सरकार को कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु निर्यात का सौदा अन्तिम रूप से तय होने के पहले इन गाड़ियों के

गन्तव्य स्थान और जिस मुद्रा में इनका मूल्य प्राप्त होगा, उस पर मुख्य आयात-निर्यात नियंत्रक, नई दिल्ली, का अनुमोदन प्राप्त करना होगा।

2. सोमवार, 22 जनवरी, 1962 प्रातः 10-30 बजे

केन्द्रीय आर्डनेन्स डिपो, आगरा

बगल की पट्टियाँ (स्ट्रैप शोल्डर), ए टाइप, संख्या 64815 और दूर-दर्शकयंत्र की बियरिंग संख्या 5 और उच्चालित्र (एलीवेटर) 3.

3. शनिवार, 27 जनवरी, 1962 सांय 2-30 बजे

तार-कारखाना (वर्कशाप), जबलपुर

जस्ते की छीजन 86906 के० जी० और अन्य विविध वस्तुएँ

4. सोमवार, 29 जनवरी, 1962 प्रातः 10-30 बजे

गाड़ी सब-डिपो, पालम (दिल्ली कैंट)

लारियाँ 3 टन 4 × 2 गज़ संख्या 40

इन पर ऊपर नम्बर। (1) और (2) में दी गई हिदायतें लागू होंगी।

निम्नलिखित नीलाम करने वाले अपने नाम के सामने दी गई क्रम-संख्या का सामान नीलाम करेंगे—

1—श्री दुर्गादास कामरा, 13/25, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली, (क्रम संख्या 1)

2—मेसर्स धर्मपाल चड्ढा एण्ड सन्स, फ्लैट नम्बर 20, शंकर मार्केट, नई दिल्ली (क्रम संख्या 2)

3—मेसर्स गोपीचन्द एण्ड सन्स, ठठेरी बाजार, वाराणसी (क्रम संख्या 3)

4—मेसर्स मोहन लाल एण्ड कम्पनी, अनन्त बिल्डिंग, अम्बाला कैंट (क्रम संख्या 4)

नोट :—सारा सामान "जैसा है और जहाँ है" के आधार पर बेचा जाएगा।

बिक्री की शर्तों की घोषणा नीलाम के समय की जाएगी। सामान के बारे में ब्योरेवार जानकारी के लिए तत्संबंधी नीलाम करने वालों के पास से सूची मिल सकती है।

भारत सरकार
संभरण और निपटान का महानिदेशालय
नेशनल इन्श्योरेंस बिल्डिंग
पार्लियामेंट स्ट्रीट
नई दिल्ली-1

सील

डी० ए० 61/260

(17701)

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय

कार्य विवरण

शिक्षा-मंत्रालय के तत्त्वावधान में हिंदी अनुभाग ने विभिन्न विषयों के पारिभाषिक शब्द बनाने का गुरुतर कार्य सन् 1952 में प्रारंभ किया था। यही कार्य बाद में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा संपन्न होता रहा। इन शब्दों की विषयवार कई सूचियाँ अंतिम व अनंतिम रूप में हिंदी पर्यायों के साथ प्रकाशित भी की गईं और उनसे पारिभाषिक शब्दावली को एक सार्वजनीन मान्यता भी प्राप्त हुई।

(1) पारिभाषिक शब्द-संग्रह का प्रकाशन

इन शब्दों को कोश के रूप मे प्रकाशित करने का काम 1961 में प्रारंभ हुआ और फ़रवरी, 1962 में 'पारिभाषिक शब्द संग्रह' नाम से 'ए' से 'के' तक के अँग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्याय कोश के रूप में प्रकाशित किए गए। पारिभाषिक शब्द-संग्रह का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और भविष्य में अनुवाद तथा सामान्य प्रशासनिक कार्यों में आने वाली हिंदी-शब्द संबंधी कठिनाइयाँ इससे दूर होने में पर्याप्त सहायता मिलेगी। बिक्री के लिए इसकी प्रतियाँ सर्वसाधारण को मैनेजर, पब्लिकेशन्स, सिविल लाइन्स, दिल्ली से उपलब्ध हो सकती हैं।

(2) विषयवार नियम-पुस्तिकाएँ

निर्मित शब्दावली के अंतर्गत बनाई गई पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग तथा प्रचार करने के लिए विभिन्न वैज्ञानिक विषयों से संबद्ध कुछ नियम-पुस्तिकाएँ (मैन्यूल्स) प्रकाशित करने का भी निश्चय किया गया है। इसके अंतर्गत डा०सत्यप्रकाश ने 'रसायन दीपिका' नामक पुस्तक की रचना की। इसी कार्यक्रम के अंतर्गत केन्द्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा 'प्राणि-विज्ञान दीपिका' नामक पुस्तक का प्रकाशन कराया जा रहा है। इस पुस्तक के रचयिता डॉ० एम० बी० लाल हैं।

(3) पारिभाषिक शब्दों की अंतिम सूचियाँ

इन तीन महीनों में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने (1) सामान्य प्रशासन तथा (2) राजनय IV की शब्द-सूचियाँ प्रकाशित कीं। इसके अतिरिक्त राजनीति विज्ञान, राजनय II तथा राजनय III की शब्द सूचियाँ भी प्रकाशित हो रही हैं।

(4) द्विभाषी शब्द-सूचियाँ

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में शब्दों की समानता व्यक्त करने के लिए शिक्षा-मंत्रालय द्वारा हिंदी-असमिया, हिंदी-बंगाली, हिंदी-गुजराती, हिंदी-कश्मीरी, हिंदी-मलयालम, हिंदी-मराठी,

हिंदी-उड़िया, हिंदी-पंजाबी, हिंदी-तमिल और हिंदी-तेलुगु की द्विभाषी शब्द-सूचियाँ प्रकाशित की गई थीं। इसी कार्यक्रम में अभी-अभी हिंदी-कन्नड़ की शब्द-सूची भी प्रकाशित हुई है।

(5) केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने हाल ही में 'हिंदी के विकास और प्रसार' के संबंध में एक पुस्तिका हिंदी में प्रकाशित की है। इसका अँग्रेज़ी संस्करण पहले ही प्रकाशित किया जा चुका है।

(6) लोकप्रिय पुस्तकों के हिंदी अनुवाद तथा प्रकाशन की योजना

भारत सरकार ने प्रकाशकों के सहयोग से विभिन्न विषयों से संबंधित अँग्रेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं की लोकप्रिय पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित करने की एक योजना की घोषणा की है।

इस योजना के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाली पुस्तकों में सरकार द्वारा तैयार की गई शब्दावली का प्रयोग किया जाएगा और प्रत्येक पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दों की अँग्रेज़ी-हिंदी सूचियाँ दी जाएँगी।

इस योजना के अन्तर्गत अनूदित सभी पुस्तकों की भाषा सरल, सुगम और मुहावरेदार रखी जाएगी और हिंदी में अन्य भारतीय भाषाओं के जो शब्द प्रचलित हैं उनका प्रयोग भी किया जाएगा।

इस योजना का उद्देश्य सर्व-साधारण में मनोविज्ञान, जीव-विज्ञान, इंजीनियरी, टेकनॉलजी, समाज-शास्त्र इत्यादि विषयों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना है। योजना में विश्वविख्यात ग्रन्थों, बाल-साहित्य और सामान्य ज्ञान की पुस्तकें भी अनूदित और प्रकाशित की जाएँगी।

पुस्तकों का मूल्य यथासंभव कम रखने के लिए सरकार ने प्रकाशकों और अन्य क्षेत्रों से विचार-विमर्श करके यह निर्णय किया है कि पुस्तकों का मूल्य किसी भी दशा में लागत के ढाई गुने से कम और तीन गुने से अधिक न रखा जाए। जो प्रकाशक उपर्युक्त शर्तों के अनुसार सरकार द्वारा अनुमोदित पुस्तकें प्रकाशित करेंगे, सरकार उनसे पच्चीस प्रतिशत डिस्काउंट पर एक हज़ार प्रतियाँ खरीदेगी। प्रत्येक प्रकाशक को कुल तीन हज़ार प्रतियाँ छापना अनिवार्य होगा।

(7) प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद

पिछली तिमाही में अनुवाद-एकक में प्रशासनिक साहित्य संबंधी छप्पन मैनुअल आदि प्राप्त हुए जिनकी कुल पृष्ठ-संख्या 3,861 थी। इस प्रकार के साहित्य की कुल पृष्ठ-संख्या अब तक 31,964 तक पहुँच चुकी है। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने इस अवधि में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण नियम-पुस्तकों का अनुवाद किया है :—

(1) इम्पोर्ट बैगेज रूल्स

(2) स्कीम आफ़ असिस्टेंस टु वालेन्टरी एजुकेशनल आरगेनाइज़ेशन्स

(3) नेशनल फिज़िकल ऐफ़ीशेंसी ड्राइव

(4) स्टाफ़ कार रूल्स

(5) वित्त मंत्रालय द्वारा 'समयोपरि भत्ते' के संबंध में समय-समय पर जारी किए जाने वाले कार्यालय-

ज्ञापन आदि।

इनके अतिरिक्त केन्द्रीय हिंदी निदेशालय को आजतक लगभग चार हज़ार फ़ार्म प्राप्त हो चुके हैं। इस तिमाही में लगभग ग्यारह सौ फ़ार्मों का अनुवाद पूरा किया जा चुका है। श्री नवाबसिंह चौहान, संसद् सदस्य द्वारा अनूदित फ़ार्मों को उन विभागों के पास छपवाने की दृष्टि से भिजवाने के लिए उन पर अंतिम कार्रवाई की जा रही है। जिस गति से क्रियाविधि संबंधी साहित्य का अनुवाद किया जा रहा है उससे सरकारी क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने में बड़ी सहायता मिलेगी। केन्द्रीय सरकार के सभी मंत्रालयों और विभागों से अनुरोध किया जाता है कि वे अपने यहाँ की अधिकाधिक सामग्री भेजकर इस प्रयास में अपना योगदान दें।

(8) मानक ग्रन्थों की अनुवाद-योजना तथा राष्ट्रीय पंजी

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने मानक ग्रंथों, पाठ्य-पुस्तकों और लोकप्रिय साहित्य के अनुवाद और प्रकाशन की कई योजनाएँ प्रारंभ की हैं। इनके अंतर्गत (क) इंजीनियरी-ऑटोमोबायल, रासायनिक, सिविल, हाइड्रालिक, समुद्री यांत्रिक और भाप-भवन-निर्माण, सर्वेक्षण, नगर-आयोजन, वास्तु, आंतरिक दहन, एंजिन्स, धातुकर्म, खनिज विज्ञान, और खनन; (ख) जीवाणु-विज्ञान, जीव-रसायन, वनस्पति-विज्ञान, रसायन, मेडिसिन, पशु-चिकित्सा, औषध-निर्माण भौतिकी रसायन, प्लास्टिक्स, कृषि, बाग़बानी और रबर; (ग) गणित, मौसम-विज्ञान, प्रकाशकी, पैट्रोलियम, फ़ोटोग्राफ़ी, भौतिकी, प्रशीतकी, वैज्ञानिक यंत्र, स्थैरिकी, ध्वानिकी और वैमानिक; (घ) मनोविज्ञान, शिक्षा, दर्शन, इतिहास तथा पुरातत्त्व, भूगोल, मानवशास्त्र, राजनीति विज्ञान, नागरिक शास्त्र, साहित्य-शास्त्र, समाजशास्त्र, ललित कला, अर्थशास्त्र, वाणिज्य-शास्त्र आदि अनेक विषयों की पुस्तकों का अनुवाद कराने की योजना है। इन पुस्तकों में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा निर्मित वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया जाएगा।

निदेशालय की अनुवाद की विभिन्न योजनाओं को सफलतापूर्वक चलाने के लिए योग्य और अनुभवी अनुवादकों और पुनरीक्षकों की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से अनुवादकों और पुनरीक्षकों की एक राष्ट्रीय पंजी बनाई जा रही है, जिसमें कुशल अनुवादकों तथा पुनरीक्षकों के संबंध में जानकारी एकत्र की जाएगी। अब तक लगभग 1,500 व्यक्तियों ने राष्ट्रीय पंजी में नाम लिखाने के लिए फ़ार्म भरकर भेजे हैं। इन फ़ार्मों का निदेशालय में परीक्षण किया जा रहा है।

(9) कोश एककों का कार्य

सामाजिक विज्ञान :—इस अवधि में सामाजिक विज्ञान के तकनीकी एवं पारिभाषिक कोश के कार्य को पुनः प्रारम्भ किया गया और इतिहास, प्रागितिहास, राजनीति एवं राजनय तथा शिक्षा

संबंधी विषयों पर कार्य हुआ। इन सभी विषयों की जितनी पुस्तिकाएँ छप चुकी हैं, उनको समेकित करने का कार्य भी किया गया। साथ ही इतिहास, प्रागितिहास के कोश के शब्दों की परिभाषाएँ तैयार करने का कार्य पूर्ववत् होता रहा।

वनस्पति-विज्ञान :— पूर्व-स्नातक स्तर तक के वनस्पति-विज्ञान संबंधी शब्दों की परिभाषाओं का पुनरीक्षण कार्य जारी रहा। वर्गीकरण संबंधी शब्दों को भी लिया गया और उनकी परिभाषाओं का संशोधन किया गया। वनस्पति-विज्ञान शब्द-कोश समिति की बैठकों में अँग्रेज़ी वर्णमाला के 'ए', 'आर' और 'एस' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले कुछ शब्दों की परिभाषाओं पर सम्यक् विचार विमर्श हुआ और उनको अंतिम रूप दिया गया। कोश की कुछ परिभाषाओं के साथ दिए जाने वाले चित्रों की भी विभिन्न पुस्तकों से खोज की गई।

भौतिकी :—कोश के कार्य के अंतर्गत हायर सैकेंडरी कक्षाओं में प्रयुक्त किये जाने वाले 'एस' से 'ज़ेड' तक के शब्दों की परिभाषाओं के प्रारूप तैयार किए गए।

भौतिकी कोश-कार्य तथा शब्दावली-कार्य के लिए अलग-अलग जो विशेषज्ञ समितियाँ थीं उन्हें एक कर दिया गया है। इस समिति का नाम सलाहकार विशेषज्ञ समिति होगा। इसकी प्रथम बैठक 24 मार्च से 31 मार्च तक बुलाई गई।

कृषि :—संमादकीय स्तर पर चर्चा के पश्चात् बाग़वानी तथा कृषि संबंधी सामान्य शब्दों की हिंदी परिभाषाओं को अंतिम रूप दिया गया। सिंचाई, जल-विकास, भूमि-विज्ञान, फ़ार्म भवन, मधुमक्खी-पालन, लाख-उत्पादन तथा बाग़वानी संबंधी हिंदी परिभाषाओं के कार्ड तैयार किए गए। पशुचिकित्सा की शब्दावली पर कृषि-विज्ञान की उपसमिति की आगामी बैठक में विचार करने के लिए सामग्री तैयार की गई।

गणित :—अँग्रेज़ी के अक्षर 'ए' से 'ज़ेड' तक की गणित संबंधी शब्दावली को क्रमवार व्यवस्थित रूप से जमाया गया तथा उनके कुछ शब्दों की परिभाषाएँ प्रस्तुत की गईं। साथ ही 'यू' से 'जेड' तक के गणित संबंधी शब्दों की परिभाषाएँ बनाई गईं। इस अवधि में गणित के अनुसंधान सहायकों ने 375 गणित शब्दों के हिंदी पर्याय बनाए।

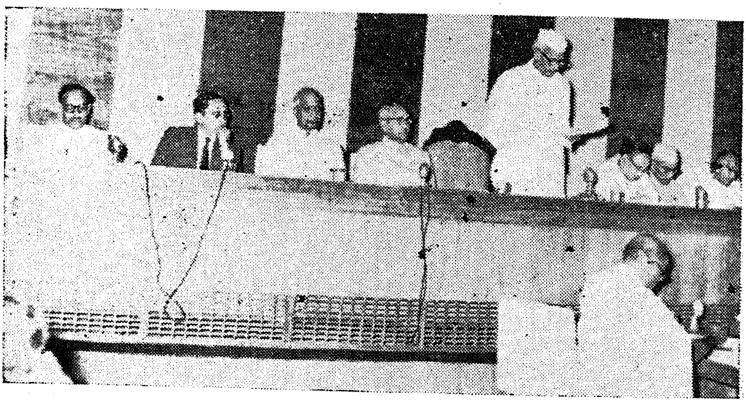
इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों के शब्द-निर्माण का कार्य पूर्ववत् होता रहा।

●

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली-आयोग की सिफ़ारिशें तथा कार्य-विवरण

आयोग का उद्घाटन गत 24 अक्तूबर, 1961 को विज्ञान भवन में केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री डा०कालूलाल श्रीमाली द्वारा हुआ था। उसी दिन अपराह्ण में इसकी पहली बैठक विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग के भवन में हुई। इस बैठक में आयोग के सदस्यों–डा० दौलत सिंह कोठारी (अध्यक्ष), डा० बाबूराम सक्सेना, डा० निहालकरण सेठी, डा० अल्लादी रामकृष्णन, श्री रमाप्रसन्न नायक तथा डा० विश्वनाथ प्रसाद (सदस्य-सचिव) के अतिरिक्त सर्वश्री कृष्णदयाल भार्गव (उप-सचिव, शिक्षा-मंत्रालय), अभिमन्यु कुमार जैन (अवर सचिव, शिक्षा-मंत्रालय) तथा केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के उप-निदेशक सर्वश्री डा० रामधन शर्मा, गोपाल शर्मा, जीवन नायक तथा प्रेमनाथ धीर उपस्थित थे।

बैठक में शिक्षा-मंत्रालय द्वारा अब तक किए गए शब्दावली-निर्माण-कार्य की रिपोर्ट सुनाई गई और निर्णय किया गया कि भविष्य में शब्द-निर्माण



आयोग के उद्घाटन अवसर पर शिक्षा-मंत्री डॉ० कालूलाल श्रीमाली उद्घाटन भाषण देते हुए। मंच पर बाँए से दाँए : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद (सचिव), श्री रमाप्रसन्न नायक, श्री प्रेमकृपाल, श्री खोसला, डॉ० श्रीमाली, डॉ० दौलतसिंह कोठारी, डॉ० बाबूराम सक्सेना तथा डॉ० निहालकरण सेठी।

तथा अनुवाद-कार्य में समन्वय लाने तथा उसे अंतिम रूप देने के लिए वर्ष में एक या दो बार कार्य-गोष्ठियाँ (वर्कशाप), संगोष्ठियाँ इत्यादि आयोजित कराई जाएँ। शिक्षा-मंत्रालय के लिए आयोग ने एक और भी सिफ़ारिश की कि यूरोपीय भाषाओं की ऐसी लोकप्रिय पुस्तकें, जिनका अँग्रेज़ी में अनुवाद नहीं हुआ है, सीधे हिंदी में अनूदित कराई जाएँ। यह भी निर्णय किया गया कि उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के स्तर तक की शब्दावली को अंतिम रूप दिया जाए और अगले छः महीनों के भीतर उन्हें समेकित रूप में प्रकाशित किया जाए।

पारिभाषिक शब्दावली के संबंध में आयोग ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए हैं।

जहाँ तक संभव हो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों का अँग्रेज़ी रूप स्वीकार किया जाए और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुकूल उनका लिप्यन्तरण किया जाए। आयोग द्वारा घोषित अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को ज्यों का त्यों सभी भारतीय भाषाओं में अपना लिया जाए।

नीचे दी गई शब्दावली अन्तर्राष्ट्रीय मानी जाएगी।

1. तत्त्वों तथा यौगिकों के नाम आदि जैसे :—हाइड्रोजन, कार्बन, कार्बनडाईआक्साइड;
2. बाट और माप की इकाइयों के द्योतक शब्द जैसे :—डाइन, कैलोरी, एम्पियर, फ़ैरेड आदि ;
3. वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान तथा भूगर्भ-शास्त्र की द्विनाम शब्दावली;
4. स्थिरांक जैसे :—पाइ, जी आदि;
5. ऐसे नए शब्द जो अत्यंत प्रचलित हो चुके हैं जैसे :—रेडियो, पैट्रोल, रेडार आदि।
6. गणित तथा अन्य विज्ञानों में प्रयुक्त होने वाले अक्षर, अंक, प्रतीक चिह्न, और फ़ारमूले आदि। गणित प्रक्रिया में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक होने चाहिए;
7. ज्यामिति की आकृतियों में देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाएगा। त्रिकोणमिति के लिए रोमन या ग्रीक अक्षर प्रयुक्त होंगे। जैसे :—साइन, कोसाईन आदि;
8. सरलता से समझ में आनेवाले शब्दों का चुनाव किया जाना चाहिए। अप्रचलित शब्दों को जहाँ तक संभव हो न लेना चाहिए।
9. समस्त भारतीय भाषाओं में एकरूपता लाने की दृष्टि से अधिक-से-अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त समान शब्दों का चयन किया जाना चाहिए और शब्दों के रूप संस्कृत धातुओं से बनाए जाने चाहिए।

●

हिंदी डायरी

हिंदी का प्रचार तथा विकास

● जन-संपर्क की माध्यम हिंदी

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० कालूलाल श्रीमाली ने हिंदी प्रचार सभा के दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुए कहा कि हिंदी के प्रचारक ठीक उसी प्रकार निःस्वार्थ भाव से अपना कार्य करें जिस भाव से गांधी जी ने काम शुरू किया था। उन्होंने यह भी कहा कि सिर्फ़ प्रेम तथा सद्भावना से, न कि विवशता से हिंदी की प्रगति होगी। कोई भी भाषा जनता पर लादी नहीं जा सकती। अगर जनता की सद्भावना पर छोड़ दिया जाए तो वह हिंदी को स्वीकार कर लेगी क्योंकि कोई भी व्यक्ति देश में सरकारी भाषा के रूप में विदेशी भाषा को बनाए रखने के विचार को मान्यता नहीं देगा।

—हैदराबाद, 13 नवंबर, 1962

● रक्त नहीं पैसा और पसीना चाहिए

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि श्री 'दिनकर' ने यहाँ आज एक गोष्ठी में हिंदी-प्रेमियों से अपील की कि वे हिंदी के लिए 'रक्त देने' का नारा छोड़कर पसीना और पैसा देकर उसे लोकप्रिय बनाएँ। भाषा-समस्या पर उन्होंने बताया कि रूस में तीन भाषाएँ सीखना अनिवार्य है : रूसी, क्षेत्रीय भाषा और एक विदेशी भाषा। हमारे देश में भी हिंदीवाले यदि इसी दिशा में प्रचार और प्रयत्न करें तो इसमें सभी का भला होगा।

—नई दिल्ली, 26 नवंबर, '61

● दस भाषाओं वाला शब्द-कोश

नवभारत टाइम्स, बंबई में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार रघुनाथ संस्कृत कालेज, जम्मू के प्रसिद्ध प्राचीन संस्कृत पुस्तकालय में खोज करने के पश्चात् व्याकरणयुक्त एक शब्दकोश प्राप्त हुआ है, जो दस भाषाओं में है। ये भाषाएँ इस प्रकार हैं : हिंदी, संस्कृत, अँग्रेजी, अरबी तुर्की, फारसी, पश्तो, कश्मीरी, लद्दाखी और बाल्टी।

—जम्मू, 28 नवम्बर, 1961

● अंधों के लिए हिंदी लिपि

8 दिसम्बर के आर्यावर्त्त, पटना, में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार देहरादून सेंट्रल ब्रेल प्रेस के भूतपूर्व मैनेजर श्री कालीदास भट्टाचार्य ने हिंदी-ब्रेल कोड तैयार किया है, जिसकी जाँच की जा रही है। 6 दिसम्बर के लीडर में प्रकाशित समाचार के अनुसार श्री कालीदास भट्टाचार्य द्वारा तैयार किए गए उपर्युक्त कोड के आधार पर भारत सरकार द्वारा नियुक्त हिंदी-ब्रेल समिति

ने डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या की अध्यक्षता में हिंदी-ब्रेल कोड तैयार कर लिया है।

—मुज़फ्फ़रनगर, 3 दिसंबर, 1961

● **विश्वविद्यालय की पुस्तकों के हिंदी अनुवाद**

भारत सरकार ने शिक्षा के माध्यम के रूप में अँग्रेजी का स्थान हिंदी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं को देने के लिए तत्परता से कार्य प्रारंभ कर दिया है। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय ने विश्वविद्यालय स्तर की अँग्रेजी की पुस्तकों का हिंदी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद प्रारंभ कराया है। इस कार्य में समन्वय के लिए सब संबद्ध राज्यों में समन्वय-समितियाँ बनाई गई हैं।

—नई दिल्ली, 14 दिसंबर, 1961

● **हिंदी अध्ययन तथा परीक्षाओं का बोर्ड**

आज के 'डैकन हैराल्ड' में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार यहाँ हिंदी के अध्ययन तथा परीक्षाओं का एक बोर्ड पुनर्गठित हुआ है जिसके अध्यक्ष जन-शिक्षण-निदेशक होंगे। इस बोर्ड के सदस्यों की संख्या बीस होगी। इस बोर्ड का कार्य हिंदी-शिक्षा की नीति एवं विकास संबंधी समस्त विषयों पर शिक्षा-विभाग को परामर्श देना होगा।

—बंगलूर, 15 दिसंबर, 1961

● **राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी**

हिंदी प्रचारक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय शिक्षामंत्री डा० श्रामाली ने कहा कि यदि देश में हिंदी का प्रचार-प्रसार शीघ्रता से किया जाए तो राष्ट्र की एकता मज़बूत होने में सहायता मिलेगी। उन्होंने कहा कि जनता के किसी वर्ग पर हिंदी को लादने का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाएँ एक दूसरे की पूरक हैं। लेकिन एकमात्र हिंदी ही वह भाषा है जो सारे भारत को एकता के सूत्र में बाँध सकेगी।

—अहमदाबाद, 18 दिसम्बर '61

● **हिंदी प्रचार के लिए क्षेत्रीय परिषदें**

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय की एक विज्ञप्ति के अनुसार हिंदी के प्रचार तथा विकास के उद्देश्य से चार क्षेत्रीय परिषदों की स्थापना की गई है: (1) पश्चिम क्षेत्रीय परिषद् अहमदाबाद (2) दक्षिण क्षेत्रीय परिषद् (मद्रास) (3) पूर्व क्षेत्रीय परिषद् (गोहाटी) तथा (4) उत्तर क्षेत्रीय परिषद् (श्रीनगर)।

—नई दिल्ली, 31 दिसंबर, 1961

● **पारिभाषिक शब्द-संग्रह**

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय द्वारा दस वर्ष पूर्व जिस महान कार्य का समारंभ हुआ था आज वह समेकित रूप में 'पारि-भाषिक शब्द-संग्रह' शीर्षक से तैयार हो गया। हिंदी के वैज्ञानिक साहित्य और भाषा की समृद्धि की दृष्टि से यह प्रकाशन हिंदी संसार के लिए एक महत्त्व-पूर्ण घटना है। (दे० निदेशालय का कार्य-विवरण)।

—दिल्ली, 1 जनवरी, 62

● **दो हिंदी संस्थाओं को अखिल भारतीय मान्यता**

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री डॉ० कालूलाल श्रीमाली ने 'दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार

सभा' का छब्बीसवाँ दीक्षांत—भाषण देते हुए कहा कि भारत सरकार शीघ्र ही इस आशय का एक विधेयक पेश करने वाली है कि 'दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार सभा, मद्रास' तथा 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' को राष्ट्रीय संस्थाओं के रूप में मान्यता प्रदान की जाए।

—मद्रास, 7 जनवरी, 1962

- **एक सामान्य भाषा के विकास में योग दें**

आज यहाँ महिला देवसमाज कॉलेज के वार्षिक पुरस्कार-वितरण-समारोह में अध्यक्ष-पद से बोलते हुए श्री रमाप्रसन्न नायक, संयुक्त सचिव, केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय, भारत सरकार ने कहा कि शैक्षणिक संस्थाओं को चाहिए कि हिंदी में शिक्षा के क्षेत्र में वे आगे आएँ और यथाशीघ्र विद्यार्थियों को अपनी मातृ-भाषा में अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दें। श्री नायक, जो अत्यंत शुद्ध हिंदी में बोल रहे थे, ने कहा कि लोगों को अपनी मातृभाषा पर गर्व होना चाहिए और देश की सामान्य भाषा विकसित करने के लिए, दूसरी भाषाओं से शब्द लेने में हिचकना नहीं चाहिए।

—फिरोज़पुर, 17 फरवरी, '62

●

शिक्षण-माध्यम के रूप में हिंदी

- **पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण आवश्यक**

मैसूर की विधान-सभा की आकलन समिति ने राष्ट्रीय एकता सम्मेलन, दिल्ली के फ़ैसलों का समर्थन किया है। और इस बात पर विशेष ज़ोर दिया है कि जब तक आधारभूत सामग्री, अर्थात् तकनीकी तथा प्रोद्योगिकी-संबंधी विषयों पर पाठ्य-पुस्तकें क्षेत्रीय भाषाओं में सुलभ नहीं होतीं और किसी एक भाषा की सुविधा सभी विश्वविद्यालयों में छात्रों को नहीं मिलती, तब तक उच्चतर शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षण-माध्यम बनाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

बंगलूर, 24 नवंबर, 1961

- **प्रतियोगिता परीक्षाओं में हिंदी माध्यम**

आज लोकसभा के समक्ष अपने उत्तर में गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने बताया कि अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए जो प्रतियोगिता-परीक्षाएँ होती हैं उनमें हिंदी को वैकल्पिक माध्यम बनाने के संबंध में संघ-सरकार शीघ्र ही अपने निर्णय की घोषणा करेगी।

—नई दिल्ली, 27 नवंबर 61

- **डॉक्टरी पढ़ाई हिंदी में हो**

गुजरात के मुख्यमंत्री डा० जीवराज मेहता ने आज यहाँ नए मैडिकल कॉलेज का उद्घाटन करते हुए कहा कि मैडिकल कालेजों में हिंदी अपनाई जाने से विषय का अधिक विस्तृत और अच्छा अध्ययन हो सकेगा। डॉ० मेहता ने कहा कि यूरोप में पहले मैडिकल प्रशिक्षण लैटिन में होता था, परन्तु बाद में राष्ट्रीयता की भावना तीव्र होने से यूरोपियन राष्ट्रों ने अपनी भाषाएँ अपनाईं जिससे विज्ञान में प्रगति

हुई। जापान और टर्की में भी राष्ट्रभाषा के प्रयोग से वैज्ञानिक प्रगति हुई ।

—वाराणसी, 29 नवंबर, 1961

दक्षिण में हिंदी

● **जब शास्त्री जी थप्पड़ मारना चाहते हैं**

नवभारत टाइम्स, बंबई में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार भारत के स्वराष्ट्रमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने वर्धा में भाषण देते हुए कहा कि बहुत से लोग अँग्रेजी बोलते हैं, मगर वे शुद्ध अँग्रेजी नहीं बोल पाते । उस समय मुझे क्रोध आता है जब देखता हूँ कि कोई हिंदीवाला दूसरी भाषा के किसी व्यक्ति को गलत हिंदी बोलते हुए देखकर हँस पड़ता है । मुझे ऐसी इच्छा होती है कि हँसने वाले को दो थप्पड़ लगा दिए जाएँ ।

—वर्धा, 11 नवंबर, 1961

● **हैदराबाद में हिंदी महाविद्यालय**

भारत के शिक्षा मंत्री डा० कालूलाल श्रीमाली ने कल सायंकाल यहाँ एक हिंदी महाविद्यादय का उद्घाटन किया। दक्षिण भारत का यह पहला कॉलेज है, जिसमें शिक्षा का माध्यम हिंदी होगा ।

—हैदराबाद, 13 नवंबर, 1961

● **देवनागरी लिपि के माध्यम से हिंदी कक्षाएँ**

मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्कर ने आज—'हैवी इलैक्ट्रिकल्स' प्रतिष्ठान (भारी बिजली-उपकरण बस्ती) में एक ऐसी संस्था का उद्घाटन किया जहाँ देवनागरी लिपि के माध्यम से हिंदी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ पढ़ाई जाएँगी। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि देवनागरी लिपि को ही स्वीकार कर लेने पर वर्तमान भाषागत भेद अपने आप समाप्त हो जाएँगे ।

—भोपाल, 17 नवंबर, 1961

● **मराठवाड़ा में प्रथम हिंदी-भवन**

आज एक लाख पैंतीस हज़ार रुपए की लागत से तैयार होने वाले मराठवाड़ा में सर्वप्रथम हिंदी-भवन का शिलान्यास राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश द्वारा हुआ। पूना की 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा' ने विगत 1955 में मराठवाड़ा विभाग में अपना कार्य प्रारंभ करने के कुछ साल पश्चात् ही एक विशाल हिंदी-भवन के निर्माण तथा साहित्यिक ग्रंथालय की स्थापना की घोषणा की थी । यह भवन उसी योजना का अंग है ।

—औरंगाबाद, 19 नवंबर, 1961

● **केरल में हिंदी की प्रगति**

त्रिवेंद्रम विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष श्री एन० ई० विश्वनाथ अय्यर ने बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की एक गोष्ठी में भाषण देते हुए कहा कि सन् 1938 से लेकर अब तक केरल में हिन्दी की काफ़ी प्रगति हुई है । स्कूलों, कॉलेजों में तो यह विषय अनिवार्य है ही, प्रत्यक वर्ष लगभग साठ-सत्तर विद्यार्थी हिंदी में एम० ए० कर रहे हैं ।

—पटना, 23 नवंबर, 1961

● **दक्षिणी भाषा सीखने पर पुरस्कार**

केन्द्रीय गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ में से किसी एक के सर्वाधिक ज्ञान

वाले भारतीय पुलिस-सेवा के शिक्षु को पुरस्कार देने की घोषणा की है।

यह पुरस्कार प्रति वर्ष दीक्षान्त परेड के अवसर पर दिया जाएगा। और उन्हीं शिक्षुओं को मिलेगा जिनकी मातृभाषा उक्त भाषाएँ नहीं हैं।

—नई दिल्ली 25 नवंबर, 1961

- **दक्षिण के विश्वविद्यालयों में हिंदी-विभागों की स्थापना**

आज लोकसभा में प्रश्नों का उत्तर देते हुए केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री श्री कालूलाल श्रीमाली ने यह सूचना दी कि विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग ने द्वितीय योजना अवधि में दक्षिण भारत के विश्व-विद्यालयों में हिंदी विभागों की स्थापना करने के लिए जो योजना तैयार की थी उसे संबंधित राज्य-सरकारों तथा विश्व-विद्यालयों के परामर्श से क्रियान्वित किया जा रहा है।

—27 नवंबर, 1961

- **अखिल भारतीय हिंदी शिक्षा संगोष्ठी**

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय (शिक्षा-मंत्रालय) के तत्त्वावधान में 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' द्वारा आयोजित हिंदी अध्यापकों की एक संगोष्ठी 22 दिसंबर, 1961 से 31 दिसंबर, 1961 तक गौहाटी में हुई। सम्मेलन का उद्घाटन असम के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री गोपालजी मेहरोत्रा ने किया। इस परिसंबाद में में भारतीय भाषाओं तथा लिपियों की अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी शिक्षण से संबंधित कठिनाइयों, हिन्दी व्याकरण में सुधार, हिंदी भाषा के प्रचार और विकास इत्यादि विषयों पर विचार विमर्श हुआ। इस संगोष्ठी में सर्वसम्मति से सोलह सुझाव स्वीकृत हुए जो हिंदी के व्याकरण, हिंदी की पाठ्यपुस्तकों, हिंदी अध्यापकों के वेतन तथा हिंदी संस्थाओं को अनुदान के संबंध में थे।

—गौहाटी, 22-31 दिसम्बर 1961

- **गुजराती समाज द्वारा हिंदी माध्यम वाले स्कूल का निर्माण**

'गुजराती प्रगति समाज' द्वारा निर्मित श्री लालजी मेघजी हाई-स्कूल के भवन का उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय वित्त-मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि मैं पहले भारतीय हूँ और फिर गुजराती। मैं राष्ट्रभाषा हिंदी का समर्थक हूँ, क्योंकि उसे देश की 50 प्रतिशत जनता समझती है। गुजराती समाज के मंत्री श्री कापड़िया ने उपस्थित जनता को बताया कि गुजराती समाज द्वारा निर्मित स्कूल में शिक्षा का माध्यम हिंदी है।

—हैदराबाद, 3 जनवरी, 1962

●

हिंदी-भाषी क्षेत्रों में हिंदी

- **उत्तर प्रदेश की शास्त्रीय पुस्तक अनुवाद योजना**

उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री आचार्य जुगल किशोर ने गत सोमवार की रात को यहाँ बताया कि राज्य सरकार ने शास्त्रीय पुस्तकों का अनुवाद करने के लिए एक योजना तैयार की है जिससे वे कालेजों और विश्वविद्यालयों में पाठ्य-

पुस्तकों के रूप में उपयोग के लिए उपलब्ध हो सकें।

—वाराणसी, 15 नवंबर, 1961

• **हिंदी-प्रेमियों को चेतावनी**

आज यहाँ 'जनपद हिंदी साहित्य सम्मेलन' के वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए डॉ० संपूर्णानन्द ने हिंदी-प्रेमियों को चेतावनी दी कि भारत के संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त होने के बाद से वे संतुष्ट होकर बैठ न जाएँ, जैसा कि इस समय देखने में आ रहा है, वरन् सक्रिय रूप से कार्य करें।

—प्रयाग, 26 नवंबर, 1961

• **दक्षिण की एक भाषा हर व्यक्ति सीखे**

आज यहाँ उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डॉक्टर वी० रामकृष्ण राव ने 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की दिल्ली शाखा द्वारा आयोजित साहित्य संसद् का उद्घाटन करते हुए कहा कि दक्षिण में हिन्दी प्रचार का कार्य सर्वश्रेष्ठ हुआ है। दक्षिण भारत के लोग हिंदी से परिचित होने और उसमें दक्षता प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि उत्तरी भारत में इस का प्रकार एक आन्दोलन चलाया जाना चाहिए कि दक्षिण की किसी एक भाषा को हर व्यक्ति सीखे।

—नई दिल्ली, 12 दिसंबर, 1961

• **उत्तर प्रदेश का राजपत्र हिंदी में**

उत्तर प्रदेश सरकार का राजपत्र सिर्फ हिंदी में ही छपा करेगा। राज्य सरकार ने 1965 तक सब काम हिंदी में करने का निश्चय कर लिया है। इस आशय के आदेश जारी कर दिए गए हैं कि सरकारी सदस्यों को जो भी नोट लिखे जाएँ वे सब हिंदी ही में हों। कुछ विशेष प्रकार के विषयों पर कार्य भी हिंदी में ही करने का आदेश दिया गया है। इलाहाबाद के उच्च न्यायालय ने भी अपराध के मामलों में दलीलें हिंदी में सुनना मान लिया है।

—लखनऊ, 23 जनवरी, 1962

•

साहित्यिक सभाएँ

• **आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का अभिनंदन :**

आज यहाँ इस महानगर की विद्वन्मंडली की ओर से हिंदी के एकांत सेवक आचार्य किशोरीदास बाजपेयी का अभिनदन सं.न्न हुआ। समारोह में आचार्य रामचंद्र वर्मा, श्री रामधारी सिंह दिनकर' तथा महापडित राहुल सांकृत्यायन भी उपस्थित थे। इस सभा में अभिनंदन-समिति की ओर से अध्यक्ष श्री रामदयाल जोशी ने वाजपेयी जी को अभिनंदन ग्रंथ के अतिरिक्त ग्यारह हज़ार रुपए की थैली भी भेंट की।

—कलकत्ता, 10 दिसंबर, 1961

• **सरस्वती की हीरक जयंती**

हिंदी की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' की षष्टि-पूर्ति के उपलक्ष्य में उसकी हीरक जयंती मनाई गई, जिसमें समस्त हिंदी संसार ने उत्साह से भाग लिया।

आज राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह में स्वर्गीय चिंतामणि घोष के उत्तराधिकारी और सरस्वती के वर्तमान प्रकाशक ने साठ वर्षों की प्रतियों में से चुनी हुई सामग्री लेकर निर्मित एक विशेषांक राष्ट्रपति को समर्पित किया और उसकी एक प्रति उनके हस्ताक्षर कराकर स्मृति के लिए रख ली। इस अवसर पर बोलते हुए राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा कि जब तक लोग विदेशी भाषा की बौद्धिक दासता से मुक्त नहीं हो जाते, तब तक उन्हें सच्ची स्वतंत्रता नहीं प्राप्त हो सकती।

—दिल्ली, 31 दिसंबर, 1961

● **प्रयाग में :**

आज प्रयाग में आयोजित 'सरस्वती हीरक जयंती' समारोह में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की काँसे की मूर्ति का और स्वर्गीय श्यामसुंदर दास तथा चिंतामणि घोष के चित्रों का अनावरण किया। इस अवसर पर हिंदी के सभी गणमान्य साहित्यिक उपस्थित थे।

—प्रयाग, 13 जनवरी, 1962

●

शोक संतप्त हिंदी संसार :

● **स्वामी सत्यदेव का निधन**

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के निधन पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए राष्ट्रपति ने एक ऐसे व्यक्ति का भारतीय जनता को स्मरण दिलाया जिसका राष्ट्रीय एवं जनतंत्रीय भावनाओं के प्रचार में अद्वितीय योग रहा है। उन्होंने कहा कि हिंदी को राष्ट्रीय एकता का साधन समझने पर दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार का काम जब शुरू हुआ तो महात्मा गांधी के आदेश पर पहले प्रचारक दल के नेता स्वामी सत्यदेव ही थे।

—कलकत्ता, 13 दिसंबर, 1961

● **डॉ० एन० के० सिद्धांत का स्वर्गवास**

आज दिल्ली विश्वविद्यालय के उप-कुलपति श्री एन० के० सिद्धांत का निधन हो गया। वे भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री थे और संघीय लोकसेवा आयोग के सदस्य भी रह चुके थे। उनकी मृत्यु से शिक्षा-जगत् को महान् क्षति पहुँची है।

—नई दिल्ली, 19 दिसंबर, 1961

● **रामनरेश त्रिपाठी का देहावसान**

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक पं० रामनरेश त्रिपाठी का देहावसान आज प्रातः 72 वर्ष की आयु में अकस्मात् हृदय-गति अवरुद्ध हो जाने के कारण हो गया। आप एक महान् देशभक्त तथा लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार थे। 'हे प्रभो, आनंददाता ज्ञान हमको दीजिए' जैसी कोटि-कोटि कंठों से प्रातः गाई जानेवाली प्रार्थना के रचयिता श्री त्रिपाठी जी ही थे। उन्होंने 'कविता कौमुदी' के द्वारा लोक साहित्य के संकलन का अग्रणी-कार्य किया था (दे० उन से संबंधित लेख)।

—इलाहाबाद, 16 जनवरी, 1962

● **स्व० डॉ० यदुवंशी**

कल यहाँ हिंदी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान् डॉ० यदुवंशी का स्वर्गवास हो गया। आज केन्द्रीय हिंदी निदेशालय में दो मिनट का मौन रख कर यहाँ के कर्मचारियों ने उनकी आत्मा की शांति के लिए तथा उनके शोक-संतप्त परिवार के लिए समवेदना प्रकट की (दे० उनसे संबंधित लेख)।

—नई दिल्ली, 17 जनवरी, 1962

●



निराला परिशिष्ट

निराला की दार्शनिक विक्षिप्तता

—राजकमल चौधरी

सृष्टि का आग्रह प्रत्येक व्यक्ति में नहीं होता है। होना संभव भी नहीं। साधारण व्यक्ति में तो सृष्टि के भोग का भी आग्रह नहीं होता है। होता है केवल उपयोग का आग्रह। सृष्टि और उत्पादन, प्रकृति और उद्योग के प्रत्येक फलाफल को अपने भौतिक तथा दैहिक स्वार्थों और आवश्यकताओं के लिए उपयोगी करना ही जन-साधारण के समस्त जीवन एवं समस्त कार्यकलापों का मात्र उद्देश्य होता है। किंतु रचनाकार भोग और उपयोग, आवश्यकता और स्वार्थ के सारे अर्थों का तिरस्कार कर सृष्टि करता है। यह तिरस्कार और अवज्ञा ही उसे सृष्टि की आवश्यक क्षमता प्रदान करती है। भौतिक उपयोगों की उपेक्षा न की जाए, तो शायद, रचनाकार अपनी सृष्टि में सौंदर्य के विशिष्ट तत्वों की स्थापना करने में समर्थ नहीं हो सकेगा और, इतना तो हमें स्वीकार्य अवश्य ही है कि सौंदर्य में भौतिक उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता है, और यह भी कि रचनाकार के सृष्टि-कार्य का मूल उद्देश्य सौन्दर्यसृष्टि ही है।

लेकिन, महाप्राण निराला ने केवल अपनी सृष्टियों में ही नहीं, अपने सांसारिक जीवन में भी भौतिक उपयोगों और भौतिक आवश्यकताओं की उपेक्षा की। और, यह चरम उपेक्षा ही प्रत्यक्ष और परोक्ष, दोनों रूपों में उनके अहं के भयावह विस्फोट, उनकी अंतर्मुखी जीवनधारा, उनके अवरुद्ध काव्य-प्रवाह, उनकी दार्शनिक विक्षिप्तताओं का कारण बन गई।

निराला ने अपने स्वास्थ्य और अपनी मानसिक शान्ति से लेकर अपने सामाजिक संबंधों तक की उपेक्षा की। और, इन उपेक्षाओं का कारण मात्र उनका हिमालय व्यक्तित्व, उनका अपराजेय अहं, उनकी पत्नी मनोहरा देवी या सुपुत्री सरोज का असमय निधन ही नहीं है। उनकी इन उपेक्षाओं का प्रमुख कारण स्वयं उनका रचनाकार, उनका कवि, उनका स्रष्टा ही है। सृजन के एकांत कार्य, काव्यसृष्टि में अलौकिक सौन्दर्य के उद्घाटन आदि में अपने संपूर्ण अस्तित्व को समाहित करके निराला अपने व्यक्ति को तिरस्कृत-उपेक्षित कर बैठे। स्रष्टा

निराला ने व्यक्ति निराला का तिरस्कार किया। स्रष्टा निराला ने समाज का, व्यवस्था का, अर्थतंत्र का, सब का तिरस्कार स्वयं के माध्यम से किया। वे अंतर्मुख हो गए। वे अपनी काव्य-सृष्टि में डूब गए।

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा

कविता में निराला ने किसी जीवित अथवा मृत प्रेयसी को स्मरण नहीं किया है। उन्होंने स्मरण किया है अपनी कल्पना को और अपनी सृष्टि की सुन्दरता को। स्मरण किया है अपनी काव्य की आत्मा को, जो सौन्दर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शायद,यहाँ आ कर बात कुछ अधिक एवस्ट्रेक्ट हो जाती है, किंतु, बात दरअसल यही है।

'एरियल' नौका पर चढ़कर अकेले समुद्र में डूबने जाते हुए कवि शैली की विक्षिप्ति, या हज़ारों मील तक फैले हुए भयानक जंगल में भटकते हुए दार्शनिक थोरो की विक्षिप्ति, या स्वयं ही अपना शरीर क्षत-विक्षत करते हुए चित्रकार वान गोख़ की विक्षिप्ति, या मायाकोवस्की या स्टीफ़ेन ज्विग या निराला की विक्षिप्ति किसी सांसारिक-सामाजिक आघात-प्रतिघात से उपजी हुई विक्षिप्ति नहीं है। जिसने कभी संसार और समाज और इर्दगिर्द की स्थितियों-परिस्थितियों की तनिक भी चिंता नहीं की—वह इन्हीं कारणों से पराजित होकर पागल क्यों हो जाएगा?

और फिर, निराला को पागल कहने का दुस्साहस किया भी कैसे जाए? क्या यह निर्णय हम कभी कर भी पाएँगे कि 'राम की शक्तिपूजा' का महाप्राण गायक पागल था, या पागल था वह पूरा का पूरा समाज जिसमें शक्ति के उस अजस्र स्रोत को, वाणी के उस वर्चस्व को, ज्ञान के उस महासागर को, सौंदर्य के उस स्वर्णशिखर को सही-सही समझने और समझकर उसका सही-सही आदर करने की क्षमता अब तक नहीं आ पाई है?

आचार्य नलिनविलोचन शर्मा एक बार निराला से मिलने गए थे। निराला तब दारागंज, प्रयाग में ही स्थायी रूप से रहने लगे थे। बीमार नहीं थे, किन्तु मानसिक रूप से उद्वेलित रहते थे। बातों ही बातों में उन्हें पता चला कि शारीरिक लम्बाई में नलिनजी उनसे एक या दो इंच बड़े हैं। दीवार के सहारे नलिनजी के बराबर खड़े होकर देखने से इसका पता लगा। निराला चुप होकर बैठ गए। जैसे यह नगण्य-सा तथ्य भी उन्हें हीनता की भावना से भर गया। इतना भी सहन न कर सके कि किसी दूसरे लेखक को उनसे लम्बाई में भी बड़ा होने का अधिकार है। नलिनजी के साथ निराला दारागंज स्टेशन तक आए। वहाँ तौलने की मशीन पर खड़े होने पर पता किया कि वज़न में वे नलिनजी से भारी हैं। तब, निराला प्रसन्न हो गए और बोले—'लंबाई कोई चीज नहीं है। असली बात है वज़न! देखो! वज़न में मैं तुमसे ज़्यादा भारी हूँ।'

संस्मरण बहुत साधारण है, लेकिन निराला के चरित्र का एक पक्ष बड़ी

बारीकी से उद्घाटित करता है। वे अपनी आत्मा में और अपनी काल्पनिक सृष्टि में इस क़दर खोए रहते थे कि अत्यंत स्वाभाविक रूप से व्यावहारिक बातों की उपेक्षा कर जाते थे। और, उनकी इस उपेक्षा को समकालीन समाज और समाज के सदस्यों ने बड़े ही ग़लत अर्थ में लिया, और बदले में निराला की उपेक्षा करके बड़ा ही ग़लत काम किया।

जबकि निराला ने अपने जीवन के एकमात्र सत्य की कभी उपेक्षा नहीं की, सुस्वास्थ्य में भी नहीं और रुग्णावस्था में भी नहीं। निराला के जीवन का एकमात्र सत्य था उनकी काव्यसाधना, उनकी काव्यसृष्टि! इस सृष्टि से वे कभी विमुख नहीं हुए।

उन्नीस सौ पचपन में श्रीमती महादेवी वर्मा के उद्योग से निराला कलकत्ता गए थे, जहाँ उनके अभिनंदन--समारोह का आयोजन किया गया था। उसी कार्यक्रम में बंगीय हिंदी परिषद् और बंगीय साहित्य सम्मेलन के सम्मिलित प्रयास से एक साहित्यगोष्ठी की व्यवस्था की गई, जिसमें बँगला साहित्य के मूर्धन्य लेखकों-कवियों से निराला का परिचय कराए जाने की बात थी। निराला का स्वास्थ्य ठीक नहीं था, बातें करते-करते वे अपने--आप में खो जाते थे, और आस-पास के सारे लोगों को भूल कर अस्पष्ट और अर्थहीन बातें करने लगते थे। अचानक उन्होंने गोष्ठी में जाने से इन्कार कर दिया। कलकत्ते के हिंदी लेखकों व अध्यापकों ने बहुत अनुरोध किया, किंतु, उन्होंने एक बार नहीं कर दिया तो उसी पर अड़ गए। श्रीमती सुशीला सिंघी, ने जो इस प्रवास काल में निराला की सेवा में तत्पर थीं, जब यह कहा कि यह बँगला लेखकों के सामने हिंदी के सम्मान का प्रश्न है, तो निराला गोष्ठी में जाने को तैयार हो गए और बोले,—'वी हैव नॉट सैड दैट वी विल नाट गो! वी आर रेडी टु गो!' (निराला विक्षिप्तावस्था में अधिकांशत: 'आई' को 'वी' ही कहते थे) और, गोष्ठी में निराला ने अत्यंत ओजपूर्ण स्वर से अपनी कविताएँ सुनाईं और सुन्दर बँगला भाषा में बंगाली लेखकों को हिंदी काव्य के विषय में अपने विचार बताए। यानी, प्रश्न हिंदी के सम्मान का था, और कविता के सम्मान का था, और निराला का संपूर्ण जीवन ही हिंदी और कविता के सम्मान की रक्षा में समर्पित था।

इन साधारण घटनाओं की स्मृति से मेरा अर्थ यही है कि निराला पर अगर अहंवादिता का दोष आरोपित किया भी गया हो, तो यह अहं निराला का नहीं था, हिंदी कविता का था—उस हिंदी कविता का, जिसने निराला के माध्यम से ही अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण किया।

निराला का अहं हिंदी कविता का अहं है, निराला का व्यक्तित्व हिंदी साहित्य का व्यक्तित्व है—और, तब इससे बड़ी ट्रेजेडी और क्या हो सकती है कि इस अहं और व्यक्तित्व पर अहंवादिता और विक्षिप्तता का अपराध आरोपित किया जाए। ● ●

महाप्राण निराला के प्रति

वीरेन्द्र मिश्र

दक्षिणी झकोरों पर
गीत नया लिख रे

गन्धवाह चला गया
शेष सुमन बिखरे

ओस 'नये पत्ते' पर अधिक नहीं ठहरी
सिमट गई कुहरे की झूलती मसहरी

डूब गए चरण, किंतु
चिह्न शेष निखरे

रोया वह द्वार, जहाँ रश्मिबेल टूटी
यहाँ-वहाँ बिखर गई एक जड़ी-बूटी

चन्दन को सर्पों-से निमिष
बहुत अखरे

मुक्त छन्द जी कर जो गीत नहीं डोला
उसका हर बासंती जन्मदिवस बोला--
जैसा तू भीतर है,
बाहर भी दिख रे

सागर का, पर्वत का, ध्वनियों का प्यासा
बोला जब, बोला वह वंशी की भाषा

सातों स्वर घायल की
छाती पर उभरे।

सोया हुआ हिमालय

प्रेमकपूर 'कंचन'

भुवनेश्वर में लेखक-सम्मेलन हुआ था। वहाँ से छुट्टी पा लोग उस रणस्थल को देखने जा पहुँचे जहाँ अशोक ने कलिंग-प्रलय देखा था। उस जगह अशोक-स्तंभ के आस-पास की भूमि आज भी रक्तवर्ण है। दूर तक ओर-छोर नहीं मिलता।

साँझ ढल रही है। तनिक देर ठहरने के बाद ऐसा लगता है जैसे अभी-अभी प्रलय समाप्त हुआ है और अशोक की आँखों से, वह प्रलयकांड, वह आर्तनाद देख कर मन अदम्य क्षोभ में भर उठा है, विह्वलता जैसे भीतर-ही-भीतर मन को खरोंच रही है। दिन में काफ़ी देर तक आसपास के गाँवों में भटकता रहा हूँ—कुछ लोकगीत सुने हैं। उनमें कहीं-कहीं अनायास ही उस युद्ध की छाया झलकती है। एक जगह एक सखी दूसरी सखी से कहती है—'चल, देख नदी का रंग लाल हो गया है। उसमें बाढ़ आ गई है।' दूसरी उसे अशुभ बताती है और सकुचाई हुई कहती है—'बाढ़ इस कुसमय में! आकाश में बादल नहीं हैं। यह तो गर्मी का मौसम है। यह कुसमय कैसा है?' फिर गाने वाला कहता है—वे भोली नारियाँ यह सुन कर मूर्च्छित हो गईं कि वह नदी नहीं मनुष्य-रक्त था जो उनके गाँव से वह निकला था।

मैं अशोक के उस शिलालेख के पास खड़ा हूँ। साथ में हैं अँग्रेज़ी के एक विख्यात उपन्यासकार। मैंने उनसे ज़िक्र किया— आप इस स्थल पर एक उपन्यास लिखें न?

वह ख़ाली आँखों से मेरा मुँह देखने लगे। मैं सोच रहा हूँ—कुछ अशुभ कह गया शायद! बहुत देर बाद उन्होंने तंद्रा भंग की—क्या कलिंग पर उपन्यास लिखा जा सकता है? नहीं—लिखने के साथ ही मंझधार में आते-आते स्वयं लेखक की मृत्यु हो जाएगी। जीवित रह कर वह उस दृश्य को आत्मसात् करने में सफल नहीं हो सकता जिसे देख कर अशोक ने अस्त्र डाल दिए थे।

मैं फ़क़ चेहरे से उन्हें निहारता रह गया। इतना माना हुआ लेखक क्या कह रहा है? बहुत देर सोचने के बाद भी बात समझ में नहीं आई। धीरे-धीरे बात विस्मृत-सी हो गई।

वर्षों हुए प्रयाग छोड़े। उस दिन न जाने क्यों हठात् दारागंज जा खड़ा हुआ। यह वही गली है जिसमें निराला जी का आवास था। आवास था–यह बात जैसे मन को खटकी। मैं उस मकान के बाहर खड़ा हूँ। मेरी आँखों के आगे कलिंग-प्रलय की वह रण-स्थली खिंच आई है। शायद कलिंग के संबंध में मैं उस निकटता को न पा सका था जिसे वह लेखक महोदय महसूस करते थे। उनकी बात का सत्य आज मेरे सामने था। मैं अपने अंतर्मन से वे सब बातें शायद ईमानदारी से नहीं लिख सकूँगा जो मन को इस क्षण तराश रहीं हैं।

—सम्मेलन उनकी चौवनवीं वर्षगाँठ मना रहा है। याद नहीं किस स्कूल में पढ़ता था उस समय चुप बिना कहे घर से खिसक गया हूँ। भरी सभा में दूर बैठा हुआ देखता रहा वह सारा आयोजन। फिर उन्होंने अपनी कविता सुनाई है। मेरा शिशु-मन जैसे आज भी उस हालत में जीवित है। शक्ति का वह रौद्र रूप आँखों के सामने नाच रहा है। वहाँ बैठे-बैठे क्या-क्या बातें सोची थीं मैंने। फिर उत्सव ख़त्म हो गया। वह अभी वहीं ठहरे हैं। उनके गले में गुलाब की एक बड़ी-सी माला पड़ी है। मैं भीड़ में घुस कर आगे आ गया हूँ। वह तख़्त पर बैठे हैं मैं चारों तरफ़ से उन्हें घूम-घूम कर देख रहा हूँ। थोड़ी देर में उन्होंने मेरी कमीज़ आगे से पकड़ कर खींच ली है और वह कह बैठे हैं—'यह लेगा' साथ ही वह गुलाब की माला उन्होंने मेरे हाथों में रख दी है।

सब चले गए हैं। सारा हॉल ख़ाली है। मेरे हाथ में गुलाब की वह माला है। जैसे हॉल भरा है। सभी लोग बैठे हैं वह 'राम की शक्तिपूजा' सुना रहे हैं। जब भी उस हॉल में जा खड़ा हुआ हूँ सब उसी तरह जीवन्त दिखाई देता है।

जैसे उस कलिंग की रण-स्थली में अशोक के लेख के पास मेरे उस लेखक मित्र को दिखा होगा। याद आता है वहीं बाद में कौसल्यायन जी की एक टिप्पणी पढ़ी थी—'जिसने सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को देख लिया वह आज के समाज को, जिसका चौखटा सरासर चर्रा रहा है समझने में समर्थ हो गया।'

वह फूल की माला लिए घर लौट आया हूँ। सब लोग परेशान हैं। घर में घुसते ही कड़कती आवाज़ में प्रश्न: कहाँ गया था?

माला आगे कर मैं खड़ा हूँ। मेरे मुँह से बोल नहीं निकल पा रहे हैं।

बहुत दिनों तक मेरे पास वह माला थी। बाद में क्या हो गई मुझे याद नहीं। मेरे मन में वह गुलाब, वह माला आज भी ताज़े हैं। लोगों ने बहुत कुछ कहा है निराला के बारे में, लेकिन मैं बड़ी

बातों के पीछे उस रहस्य को खोज रहा हूँ जिसने उस समय मेरे शिशु-मन को घेर रखा था।

न जाने कैसे एक दोस्त की सायकिल के पीछे बैठकर अहियापुर से दारागंज गया हूँ। सुना है निराला वहाँ रहते हैं। बहुत देर भटका हूँ एक ने बताया यों पूछो—दारागंज वाले पंडित जी कहाँ रहते हैं, और उन्होंने एक मकान के आगे ले जा कर खड़ा कर दिया। यह गंदे खपरैलवाला मकान, यहाँ धूनी रमाता है वह औघड़! अलख जगाए साहित्य-सृजन कर रहा है।

वहाँ खड़े होकर लगा जैसे अपना जीवन छोटा हो गया है। उस दिन 'राम की शक्तिपूजा' उनके मुख से सुन कर जो मन में विशालता जागी थी उससे कई गुना विक्षुब्ध हो उठा था उस समय। फिर यदा-कदा अवकाश मिला है सायकिल लेकर पहुँच गया हूँ—वह बीमार हैं। बोझ बन कर उन पर लदना नहीं चाहता। दूर खड़ा टकटकी बाँधकर ही देखता रहता हूँ। शायद मन को इस तरह देखना ही प्रिय है। और मैं देख रहा हूँ। कभी वह तख्त पर बैठे हैं, कभी सो रहे हैं, कभी वह लेटे हैं और उनके पास मिलने वालों की भीड़ है। मैं देखता हूँ, देखता रहता हूँ। कभी सोचता हूँ—वह मुझ से कुछ कह दें! मन में विचार बाद में आते हैं और उससे पूर्व ही वह घुड़क कर कहते हैं—क्या है? कभी उनका यह प्रश्न अँग्रेज़ी में भी होता है। मैं धीरे से उत्तर देता हूँ यों ही खड़ा हूँ।' फिर वह कुछ गुन-गुनाने लगते हैं

मन सोचता है, किन परिस्थितियों ने उन्हें इस दशा में पहुँचा दिया था? इस संबंध में किसी की एक बहुत सही बात कहीं पढ़ी थी—सागर की उन्मत्त लहरों में डूब जाने वाला अँग्रेज़ी का भावुक कवि शैली आज भी पूजनीय है, अस्तव्यस्त गधे पर सवार स्टीवेंसन आज भी अँग्रेज़ी साहित्य का अद्वितीय कवि है; प्रीति-भोज में साथ बैठकर खाना खाने में अँग्रेज़ी महिलाओं का घृणा-पात्र अँग्रेज़ी साहित्य का विराट् लेखक जॉनसन आज भी आदर का पात्र है फिर निराला जैसे व्यक्ति को, जिसके पास हृदय है, भाव है, कविता है, संगीत है, वाणी है, प्राण है, स्वीकार करना या न करना व्यक्ति अथवा वर्ग-विशेष की बात नहीं है। निराला की यही मुक्ति तो लोगों को खटकी थी—'जिस समय कवींद्र रवींद्र का घोड़ा बंगाल से छूटा तो उसकी रास को थामने की हिम्मत किसी में न थी मैंने उस घोड़े को 'गढ़-कोला' में थाम लिया। रवींद्र बंग साहित्य के अमर नक्षत्र हैं।'

लेकिन लोग इस बात को जानते हैं कि यह उसी का कलेजा था जो इस तरह की ललकार दे सकता था :—

अबे सुन बे गुलाब
मत भूल गर पाई खुशबू रंगो-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम . . .

और मेरी डायरी में उनके कई गीत हैं सब से प्रिय, जिन्हें अकसर मैं गुनगुनाया करता हूँ, जिससे उस फक्कड़ मतवाले की मूर्ति मन में साकार हो जाती है–

सुख का दिन डूबे डूब जाय,
तुम से न सहज मन ऊब जाय...

और अंत में—

उलटी गति सीधी हो न भले,
प्रति जन की दाल गले न गले,
टले न बात यह कभी टले,
यह जान जाय तो खूब जाय !

बहुत से गीत देखे बहुत चेष्टा की, पर खोजने पर भी मुझे उनका कोई भी ऐसा-एक गीत न मिला जिसमें उनका भाव-रूप ही प्रधान हो, या जिसमें उनका मात्र कल्पना-रूप हो अथवा जिसमें उनका केवल लौकिक रूप हो। जहाँ पाया वहाँ तीनों पूरे समाज के साथ हैं और शायद इसी कारण से वह अत्यधिक 'सेंसुअस' रचनाएँ लिखते रहे जो सहसा व्यक्ति के संपूर्ण अंतर को झकझोर देती हैं।

अपने संबंध में उनकी दो पंक्तियाँ मेरे मन में यदा-कदा गूँज जाती हैं :

मेरा जी अंतर कठोर
देता जी भरसक झकझोर...

या उनकी वह पंक्ति :

श्रम शरीर का पलक अंगौछे...

मैं उस दारागंज के मुहल्ले में जा खड़ा हुआ हूँ–सब कुछ वही है और लगता है जैसे वह लेटे हैं और मैं उनकी मुँदी निराली आँखों की पलकें देख रहा हूँ जो सचमुच ही एक बंद कमल की कली सी लग रही हैं।

आज से बहुत पहले किसी ने लिखा था–वह तन और मन दोनों से विराट् हैं। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि अगली पीढ़ियाँ निराला के विशाल शरीर की लंबाई-चौड़ाई तथा उनके कोमल मन की अतल गहराई सुन-समझ कर आश्चर्य-चकित रह जाएँगी।

और लगता है कि वह कलिंग-प्रलय और उसकी विह्वलता समझने की आँखें दारागंज के इस खपरैल वाले मकान के नीचे खड़े होने पर खुल गई हैं। यह पतली-सी गली-इसमें एक बार मैंने एक सिंह को इस तरफ़ चक्कर काटते देखा था ! विश्वास नहीं होता कि अपने अंतर में शत-शत ज्वालामुखी छिपाए वह हिमालय जैसा व्यक्तित्व प्रगाढ़ निद्रा में लीन हो गया है ! ...

●

निराला : दो श्रद्धांजलियाँ

नज़ीर बनारसी

(एक)

अलग उसका रस्ता अलग उसकी मंज़िल
निराली डगर और राही निराला
अजब सूर्य डूबा है हिंदी जगत में
कि डूबा तो कुछ और फैला उजाला

* * *

वह चुप हैं तो सबकी ज़बानें खुली हैं
है इक शोर बरपा—निराला ! निराला !!
हमेशा गमकता महकता रहेगा
मुहब्बत का मंदिर वफ़ा का शिवाला ।

* * *

कभी जीते जी उसने झुकना न जाना
बड़ी आन वाला बड़ी शान वाला
जहाँ चाहा फ़रज़ानगी ने गिराना
वहाँ बढ़ के दीवानगी ने सँभाला

* * *

नहीं वो मगर उसका शोहरा रहेगा
वो ज़िन्दा था, ज़िन्दा है, ज़िन्दा रहेगा
मिटा देगा कितनों को इतिहास लेकिन
जो जीने के क़ाबिल है ज़िन्दा रहेगा ।
खटकता था आँखों में जो ख़ार बनकर
उसे आज दिल की कली दे रहे हैं
न लेने दिया चैन का साँस जिसको
उसे आज श्रद्धांजली दे रहे हैं ।

* * *

मुबारक हो ऐ शहर-ए-काशी के प्रेमी
किनारे लगे आज तूफ़ाँ के पाले
यह कह कर बहा दी है राखी तुम्हारी
कि माँ तेरी संतान तेरे हवाले ।

●

(दो)

हूक दिल से उठी, आँख नम हो गई,
आज गंगा की इक मौज कम हो गई ।

* * *

माँ ! तेरे साज़ का तार टूटा है क्या
आज आवाज़ में ज़िन्दगी क्यों नहीं
क्यों है मुरझाई जुही की इक इक कली
आज बेला के मुँह पर हँसी क्यों नहीं

* * *

'गीत-गुंज' इस क़दर आज मद्धम है क्यों
कैसा पैग़ाम गायक के नाम आ गया
शोक में क्यों है 'आराधना' 'अर्चना'
क्या कोई 'शक्ति-पूजा' के काम आ गया

* * *

होश में लोग आने लगे वो भी कब
उसने जब खो दिए अपने होश-ओ-हवास
मौत ने कर दिया जब निगाहों से दूर
तब कहीं लोग आए हैं आज उसके पास

* * *

उसने हमको दिया जब नया रास्ता
बनके दुश्मन हमारे क़दम उठ गए
तेग़ तो उठ न सकती थी उसके ख़िलाफ़
उसके बर अक्स कितने कलम उठ गए

* * *

कोयलों पर अशर्फ़ी की मोहरें लगीं
पारखी चुप था साहित्य संसार का
वह ख़रीदार पागल बनाया गया
जिसने ऊँचा किया भाव बाज़ार का
शब्द उसके अटल जैसे अंगद का पाँव
कल्पना में हिमालय की ऊँचाइयाँ
उसकी चुप, उसकी गंभीरता की दलील
उसके दिल में समुंदर की गहराइयाँ

* * *

सबको हँस हँस के देता रहा ज़िन्दगी
और ख़ुद ज़हर के घूँट पीता रहा
वक्त ने कर दिया साँस लेना मोहाल
ऐसे माहौल में भी वो जीता रहा

* * *

जिसने दी सबको जूही की ताज़ा कली
उसको मेरी तरफ़ से भी श्रद्धांजली ।

●

कहानीकार निराला :

एक मूल्यांकन

रामदीन गुप्त

निराला मूलत: एक कवि थे और कवि-रूप में ही हिंदी-संसार उन्हें मुख्यत: जानता आया है। लेकिन निराला एक उच्च कोटि के गद्यकार एवं गद्य-शिल्पी भी थे। निराला के साहित्यिक व्यक्तित्व के सम्यक् आकलन के लिए उनके गद्य-साहित्य—विशेषत: कथा-साहित्य—का वैज्ञानिक अध्ययन अत्यावश्यक है।

संख्या की दृष्टि से निराला की कहानियाँ अधिक नहीं हैं। उन्होंने लगभग बीस कहानियाँ हिंदी साहित्य को दी हैं, जो 'लिली', 'सखी', 'सुकुल की बीवी' और 'चतुरी चमार' नामक चार संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रयाग से प्रकाशित 'निराला' नामक पत्रिका के प्रथम अंक में उनकी अंतिम कहानी 'विद्या' भी इधर प्रकाशित हुई है। कहानी पर दी गई सम्पादक की टिप्पणी के अनुसार यह निराला की अंतिम कहानी है, जो कि पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के अनुरोध पर लिखी गई थी। कहानी में केवल दो पात्र हैं—एक पुरुष और एक स्त्री। पुरुष संस्कृत में बोलता है और स्त्री अँग्रेज़ी में।

'लिली' निराला का प्रथम कहानी-संग्रह है, जो सन् 1933 में प्रकाशित हुआ था। संग्रह की भूमिका में निराला जी ने स्वीकार किया है कि 'यह कथानक-साहित्य में मेरा पहला प्रयास है।' 'लिली' में आठ कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों का विवेच्य-विषय मुख्य रूप से सामाजिक है, यद्यपि आनुषंगिक रूप से राजनीति, धर्म आदि पर भी विचार किया गया है।

'लिली' संग्रह की अधिकांश नायिकाएँ षोडशवर्षीय 'अधखिली कलियाँ' अर्थात् छायावादी नायिकाएँ हैं। इन नायिकाओं के कुछ चित्र इस प्रकार हैं :—

'पद्मा के चंद्रमुख पर षोडश की शुभ्र चंद्रिका अम्लान खिल रही है। एकांत कुंज की कली-सी प्रणय के वासंती मलय-स्पर्श से हिल उठी, विकास के लिए व्याकुल हो रही है।' ('पद्मा' और 'लिली')।

* * *

इस प्रकार के कवित्वपूर्ण वर्णन 'लिली' संग्रह की कहानियों में प्रचुरता से पाए जाते हैं। कवित्व-प्रदर्शन की यह प्रवृत्ति निराला की कहानियों में क्रमश: कम होती चली गई है। 'लिली'

की कहानियों के अतिरिक्त निराला की अन्य कहानियों में इस प्रकार के कवित्व-पूर्ण स्थल बहुत कम मिलते हैं। 'पद्मा और लिली' कहानी में अंतर्जातीय विवाह का प्रश्न उठाया गया है। किन्तु कहानी-कार प्रश्न का कोई स्पष्ट रूप या उत्तर नहीं प्रस्तुत कर सका है। कवित्व-प्रदर्शन की इस प्रवृत्ति से उबरकर निराला का गद्य 'चतुरी चमार' और 'सुकुल की बीबी' संग्रहों में उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच गया है।

निराला की अनेक कहानियों में कहानी और रेखाचित्र के तत्त्व इतने घुले-मिले हुए हैं कि उन्हें स्पष्ट रूप से कहानी अथवा रेखाचित्र कहना कठिन हो जाता है। इस प्रकार की कहानियों में 'चतुरी चमार', 'देवी', 'स्वामी सारदानंद जी महाराज और मैं', 'कला की रूप-रेखा' इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डा०रामविलास शर्मा 'देवी' और 'चतुरी चमार' रचनाओं को एक स्थान पर स्केच और दूसरे पर कहानी कहते हैं। हिंदी-कहानी का विकास 'कहानी' से 'रेखा-चित्र' की ओर ही हुआ है। निराला क्राति-दर्शी और युग-प्रवर्त्तक साहित्यकार थे। उन्होंने अपनी 'चतुरी चमार', 'देवी' आदि कहानियों द्वारा हिंदी-कहानी के भावी विकास की दिशा का स्पष्ट संकेत कर दिया था। निराला की इन कहानियों के संबंध में आलोचकों में कितना ही मतभेद हो, पर स्वयं निराला इन्हें 'कहानी' ही मानते थे। 'चतुरी चमार' संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा है :—

'चतुरी चमार' नाम का कहानी-संग्रह पाठकों के सामने है। पहली कहानी 'चतुरी चमार' की हिंदी साहित्य में काफ़ी चर्चा हो चुकी है × × × × पाठक पढ़ने पर इसके तथा अन्य कहानियों के मूल्य का हिसाब स्वयं लगा लेंगे। मैंने स्थायी साहित्य के सृजन के विचार से ये कहानियाँ लिखी हैं।

निराला ने अपनी कहानियों में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि समस्याओं का चित्रण किया है। सामाजिक समस्याओं में उन्होंने मुख्य रूप से नारी-विषयक समस्याओं को लिया है।

विद्रोही निराला की तुलना अमेरिका के प्रसिद्ध विद्रोही कवि वाल्ट ह्विटमैन या स्वदेश के ही भक्तिकालीन संत-कवि कबीर से की जा सकती है। अपनी बहु-प्रशंसित कहानी 'सुकुल की बीबी' में उन्होंने सुकुल के साथ एक मुसलमान युवती का विवाह करवाया है। सड़ी-गली सामाजिक रूढ़ियों का निराला ने अपने साहित्य में हमेशा तीव्र विरोध किया है। अपनी एक अन्य कहानी 'श्यामा' में इन्होंने अपने ब्राह्मण नायक बंकिम का विवाह अछूत बुधुआ की बाल-विधवा लड़की श्यामा से करवाया है। समाज में पद्मा के साथ ज्योतिर्मयी जैसी युवतियाँ भी हैं जो अल्प-शिक्षित होते हुए भी सामाजिक रूढ़ियों की खिल्ली उड़ा सकती हैं। 'ज्योतिर्मयी' कहानी की बाल-विधवा नायिका से नायक विजय जब कहता है कि 'पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक

में अपने पति से मिलती है' तो जो व्यंग्य-पूर्ण उत्तर वह देती है वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है—

'वाक्यों की दरिद्रता।' युवती मुस्कराती हुई बोली—' अच्छा बताइये तो, यदि पहले ब्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पूज्यपाद पति-देवता की प्रतीक्षा करती हो, और पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियों को मार-मार कर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें, तो खुद मरकर किसके पास पहुँचेंगे ? 'ज्योतिर्मयी' कहानी में व्यंग्यकार निराला के प्रथम बार दर्शन होते हैं। वे दिखाते हैं कि आज विवाह सामाजिक या धार्मिक अनुबन्ध न रहकर एक व्यावसायिक कृत्य मात्र रह गया है। चाँदी का जूता पड़ने पर रक्त चंदन का टीका लगाने और रुद्राक्ष की माला पहनने वाले अच्छे-अच्छे रूढ़िवादी भी पिघल जाते हैं और अपने से छोटी जाति में विवाह करने को राज़ी हो जाते हैं।[1]

'कमला' कहानी में निराला ने वेदवती के चरित्र के द्वारा आधुनिक भारत के जागृत नारीत्व की एक अत्यन्त संक्षिप्त झलक प्रस्तुत की है।

सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त निराला ने अपनी कहानियों में ज़मींदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार, रियासतों की जनता का शोषण, भारतीय किसान की ग़रीबी, वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की कमज़ोरी आदि पर भी विचार किया है।

'श्यामा' में निराला ने भारतीय किसान की शाश्वत ग़रीबी और जमींदार के अत्याचारों का बड़ा ही व्यंग्यपूर्ण वर्णन किया है। बुधुआ बंकिम को अपनी जो दुःख-गाथा सुनाता है वह उसकी व्यक्तिगत कहानी ही नहीं, भारतीय किसान की सामूहिक कहानी भी है।[2] भारतीय ग्रामीण जीवन के यथार्थवादी चित्रण की दृष्टि से निराला की 'चतुरी चमार' कहानी हिंदी की कतिपय श्रेष्ठ यथार्थ-वादी कहानियों में से एक है। स्वयं निराला साहित्य में 'चतुरी चमार' एक मील का पत्थर है। यह कहानी निराला को सीधे प्रेमचंद की महान् परम्परा से जोड़ देती है। चतुरी उस भारतीय जनता का प्रतिनिधि है जो युग-युगों के भयंकर शोषण और उत्पीड़न के पश्चात् भी अपने हृदय में एक नए जीवन और भविष्य की सुख-कामना सँजोए हुए हैं। यह कहानी अत्यन्त सूक्ष्म रूप से दिखाती है कि भारतीय जनता ने अपने वर्तमान से समझौता नहीं किया है। चतुरी के हृदय में ज़मींदार और ज़मींदार के सिपाहियों के अत्याचारों के प्रति एक गहरे आक्रोश का भाव है।

'चतुरी चमार' संग्रह की 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी में निराला ने देशी रियासतों के स्वेच्छाचारी राजा–महाराजाओं के पाशविक अत्या-चारों का व्यंग्यपूर्ण शैली में वर्णन किया है। रियासतों की जनता की हालत शेष

[1] देखिए–'लिली' पृ० 30–32

[2] देखिए–'लिली' पृ० 64–65

भारत की जनता से कहीं बदतर थी। वहाँ राजा साहब की आज्ञा या इच्छा ही क़ानून था।

इस कहानी के आरम्भ में निराला ने लिखा है कि यह एक सच्ची, आँखों देखी घटना है। आँखों-देखी घटनाओं के आधार पर उन्होंने कई कहानियों की रचना की है। 'देवी' भी इसी कोटि में आती है। 'देवी' किसी वर्ग-विशेष के शोषण की कहानी नहीं है, वह तो पूरी समाज-व्यवस्था पर ही एक तीव्र व्यंग्य है।

आलोचकों द्वारा बार-बार यह दोहराया जाता है कि निराला छायावादी काव्य-धारा के एक प्रमुख स्तम्भ थे, किन्तु उनके संपूर्ण साहित्य में व्यंग्य की मात्रा इतनी अधिक है कि आलोचकों की इस मान्यता पर शंका होने लगती है। छायावाद और व्यंग्य दो परस्पर विरोधी वस्तुएँ हैं। यद्यपि निराला छायावादी युग में हुए थे फिर भी उन्होंने छायावाद से पूर्ण समझौता कभी नहीं किया। छायावाद के प्रति उनके मन में व्यक्त-अव्यक्त विद्रोह का भाव सदा बना रहा। उन्होंने अपनी 'सखी', 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'सुकुल की बीबी' आदि कहानियों में छायावाद का जिस तरह मज़ाक़ उड़ाया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी की इस काव्य-धारा के निराला प्रशंसक नहीं थे। 'काशी प्रगतिशील लेखक संघ' द्वारा आयोजित निराला-स्वर्णजयंती आयोजन में उन्होंने जो उद्गार व्यक्त किए थे वे भी हमारी इस धारणा को पुष्ट करते हैं —

'हमें हर तरह से कठोर साहित्य का निर्माण करना है। हम इतने सुखशायी हो गए हैं कि दूसरे के दुःखों को भूल गए हैं। दूसरों के निर्वाह के लिए सुख के रास्ते निकालने का जो उपाय है वही प्रगतिवाद है।'

निराला का व्यंग्य ही वह तत्त्व है जो उन्हें छायावादी परम्परा से पृथक् करके प्रेमचंद की परंपरा में रखता है। इसमें संदेह नहीं कि निराला आधुनिक हिंदी-साहित्य के सबसे-बड़े व्यंग्यकार थे। उन्होंने अपनी कहानियों में आज के राजनीतिज्ञों, धर्माचार्यों, साहित्यकारों, आज की शिक्षा-पद्धति, सामाजिक रूढियों, धार्मिक अंधविश्वासों आदि पर जो व्यंग्य-प्रहार किए हैं वे अपनी प्रखरता और तीव्रता की दृष्टि से हिंदी-साहित्य में विरल हैं। उनकी 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' कहानी तो शुद्ध व्यंग्य-रचना ही है। इस कहानी में व्यंग्यकार निराला का श्रेष्ठ और निखरा हुआ रूप दिखाई देता है।

निराला ने अपनी कतिपय कहानियों का अंत प्रसिद्ध अमरीकी कहानी-लेखक ओ० हैनरी की कहानियों के चकित कर देने वाले अंत (Surprising end) की शैली पर किया है। उनकी इस प्रकार की कहानियों में 'श्यामा', 'अर्थ', 'प्रेमिका परिचय' और 'परिवर्तन' उल्लेखनीय हैं। ये सभी कहानियाँ 'लिली' संग्रह में संगृहीत हैं।

आरंभिक और बाद की कहानियों

की भाषा में बहुत अंतर है। निराला की आरंभिक कहानियों की भाषा अत्यधिक कवित्वपूर्ण, संस्कृतनिष्ठ और सामासिक है।

'लिली' संग्रह की कहानियों से स्पष्ट हो जाता है कि कहानीकार निराला पर अभी छायावादी भाषा-शैली का काफ़ी प्रभाव था। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए निराला का गद्यकार भीषण आत्मसंघर्ष कर रहा था। इस संग्रह में एक ओर जहाँ अस्वाभाविक भाषा का प्रयोग है, वहाँ दूसरी ओर प्रवाहमयी स्वच्छ गद्यात्मक भाषा भी है।

'लिली' के पश्चात् 'सुकुल की बीबी' 'चतुरी चमार' आदि संग्रहों में हमें इसी प्रकार की साफ़-सुथरी और प्रवाहमयी भाषा के दर्शन होते हैं। इन संग्रहों की भाषा में व्यंग्य का पैनापन विशेष रूप से लक्षित होता है। इस प्रकार निराला ने सामाजिक यथार्थ के चित्रण में ही प्रेमचंद का अनुसरण नहीं किया, प्रत्युत भाषा के संबंध में भी उन्होंने प्रेमचंद की भाषा को अपना आदर्श मान लिया। प्रेमचन्द की तुलना में कहानीकार निराला ने बहुत कम लिखा है, पर इसमें संदेह नहीं कि उनके प्रभाव से प्रगतिशील हिंदी-कहानियों की परंपरा आगे बढ़ी और दृढ़ हुई।

निराला और रत्नावली का व्यक्तित्व

•

इन्दिरा

निराला की लम्बी कविताओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कविताएँ दो मानी जाती हैं : **तुलसीदास** और **राम की शक्ति पूजा**। निराला ने जहाँ 'राम की शक्ति पूजा' में भारतीय संस्कृति के दार्शनिक और उदात्त व्यक्तित्व का चित्रण किया है वहाँ 'तुलसीदास' में आध्यात्मिक गंभीरता और आत्म-दर्शन की गहन जिज्ञासा से युक्त एक कथा का सृजन किया है। हिंदी कथा-काव्यों की परम्परा में, सही मूल्यांकन किया जाए तो 'तुलसीदास' बेजोड़ है।

'तुलसीदास' की रत्नावली मात्र एक प्रबुद्धनारी ही नहीं बल्कि भारत की आध्यात्मिक चेतना की प्रतीक है। वह तुलसीदास को नहीं बल्कि एक संस्कृति मात्र को उद्बोधित करती है। इसके प्रमाण देखे जा सकते हैं। निराला का काव्य जहाँ दार्शनिक दृष्टि से वेदान्त से प्रभावित है वहाँ उनकी आध्यात्मिक चेतना मातृशक्ति और विशेषरूप से काली या श्यामा के प्रभाव में रही है। 'नाचे उस पर श्यामा' जैसी कविता (छायानुवाद) और अन्य ऐसी ही रचनाएँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि उन में पूर्वी भारत की मातृशक्तिनिष्ठा बहुत गहरी है। रत्नावली के बारे में 'तुलसीदास' में लिखते समय निराला के मन से 'श्यामा' अथवा 'काली' का प्रभाव अलग नहीं हुआ है। रत्नावली जब तुलसीदास को बोध देती है उस समय का एक चित्र देखें और भारतीय संस्कृति की 'काली' के व्यक्तित्व से उसकी तुलना करें।

'बिखरी छूटी शफरी-अलकें
निष्पात नयन नीरज-पलकें
भावातुर पृथु उर की छलकें, उपशमिता!
निःसंबल केवल ध्यान-मग्न
जागी जोगिनी अरूप-लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रिय भावमग्न, निरुपमिता।'

मोटी सी बात है : निराला यहाँ रत्नावली को दैवी व्यक्तित्व में प्रस्तुत करना चाहते हैं, प्रमाण है 'निष्पात-नयन'। कहते हैं कि देवताओं की पलकें नहीं गिरतीं,। अलकें बिखरी, भावातिरेक

से धड़कता हुआ सीना, ध्यान-मग्न, जोगिनी-क्या यह चित्र 'माँ काली' के किसी भी चित्र से भिन्न है ?

इसीलिए निराला ने फिर कहा :

'बल की महिमा बोली अबला,'

अबलाओं का वर्ग है जो उसी एक मातृवर्ग की प्रतीक—शक्ति की स्रोतस्विनी, और जिसकी एक ललकार तुलसीदास के लोकभ्रम को चूर कर देती है–उसकी कल्पना निराला ने पूरे आध्यात्मिक गौरव से मंडित करके की है।

'जागा जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल
देखा वामा वह न थी, अनल प्रतिमा वह !

प्रबल संस्कार के सचेत होने, काम के भस्म होने और वामा के बजाय रत्नावली के 'अनल-प्रतिमा' दीखने की व्यंजनाएँ विराट आध्यात्मिक परिकल्पनाओं की ही अंग हैं।

रचना के प्रारंभ में ही कवि ने सांस्कृतिक सूर्य के डूबने की बात कही है। निराला ने रचना को 'तुलसीदास' नामक व्यक्ति में केन्द्रित न करके भारतीय संस्कृति के तत्कालीन प्रतीक तुलसीदास में किया है। निराला व्यक्ति का नहीं एक संस्कृति का चित्रण करते हैं :—

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिग्मण्डल !

× × ×

भारत के उर के राजपूत
उड़ गये आज वे देवदूत
जो रहे शेष, नृपवेश सूत, बन्दीगण।

निराला का तात्पर्य यहाँ सिर्फ़ यही नहीं है कि भारत का, स्वाधीन युग का गौरव समाप्त हो गया और राजवंश पराधीन हो गए। निराला यहाँ भारतीय-संस्कार-प्रबल उस व्यक्तित्व का चित्र पेश करते हैं जिसका शासक आत्मबल निःशक्त हो गया।

चेतना-हीन फिर भी चेतन
अपने ही मन को यों प्रतिमन है छलता।

भारतीय दर्शन में संसार-लिप्सा आत्मवंचना कही गई है। इतिहास साक्षी है कि मुगल साम्राज्य के प्रसार के साथ साथ भारतीय समाज में विलासिता और निष्क्रियता का वातावरण प्रबल हुआ था। विशेष रूप से सामन्तों और राजाओं-नवाबों की स्थिति यही थी। ऐसे वातावरण के बीच ही जन्म लेते हैं तुलसीदास और ध्यान देने की बात तो यह है कि तुलसीदास स्वयं भी उसी विलासिता से ग्रस्त थे। पत्नी के मायके लौट जाने पर, कहते हैं वे बिना बुलाए, उसके आकर्षण के वशीभूत स्वयं भी जा पहुँचे। भारतीय-समाज-व्यवस्था की दृष्टि से यह बड़ी हेय बात थी।

सचमुच हेय बात थी कि भारतीय जीवन-चेतना आध्यात्मिक गौरव से च्युत होकर लोक-लिप्सा में डूब गई थी। निराला ने उस युग के प्रतीक के रूप में चुना तुलसीदास और इसी पृष्ठभूमि में उन्होंने इस उद्बोधन के लिए चुना रत्नावली का चरित्र, जिसे उन्होंने सांस्कृतिक, सामाजिक पुनर्जागरण के योग्य सिद्ध करने के लिए मातृ-शक्ति के स्वरूप में खड़ा किया।

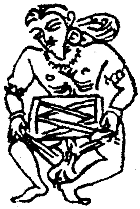
'दृष्टि से भारती बँध कर
कवि उठता हुआ चला ऊपर
केवल अंबर-केवल अंबर फिर देखा।
धूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र शशि ताराहर
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व-अधर, क्षर रेखा।

रत्नावली द्वारा फटकारे जाने पर तुलसीदास को जो पश्चात्ताप और बोध हुआ वह एक बात है और जो बोध मातृ-शक्ति की उदात्त प्रेरणा से आत्मा को मिला वह दूसरी बात है। निराला ने तुलसीदास के बोध को केवल बौद्धिक प्रतीति ही नहीं आध्यात्मिक उपलब्धि बना दिया है। इसीलिए प्रबुद्ध होकर तुलसी का आत्मोन्नयन होता है। वे उस देश तक जा पहुँचते हैं जिसका देश-काल नहीं होता, सिर्फ़ शून्य ही है।

इसीलिए निराला ने कृति का अन्त इन शब्दों में किया है :

चल मंद चरण आए बाहर
उर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाभय महिमा धर, फिर देखा-
संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल
प्राची दिगन्त उर में पुष्कल रवि-रेखा!

महिमाधर, विश्वाभय मूर्ति और हो कौन सकती है सिवा विराट-व्यक्तित्व आदि जननी के। इस दृष्टि से निराला की इस कृति का विशेष और गम्भीर अध्ययन अभी हिंदी में बाकी है।



महाकवि निराला :

तीन प्रतिक्रियाएँ

बालस्वरूप राही

नाम तुम्हारा जब-जब महाप्राण ! सुनता हूँ,
एक कथन रह-रह कर याद मुझे आता है :
'पुत्र योग्यतम होता है जो माँ-वसुधा का,
सबसे अधिक उसे ही विष पीना पड़ता है !'

चरित तुम्हारा जब-जब पढ़ता हूँ मैं कविवर !
एक बात फिर-फिर मेरे सम्मुख आती है :
'कविता है वह दर्द जिसे लिखने से पहले
कवि को अपने जीवन में जीना पड़ता है !

चित्र तुम्हारा देख सोचता हूँ मैं अक्सर :
बौनों की संस्कृति में लेता जन्म कि जब-जब
पुरुष विराटाकार, अकेले रह कर उसको
चाक गरेबाँ अपना खुद सीना पड़ता है !!

निराला : कुछ व्यक्ति-चित्र, कुछ काव्य-चित्र

इंदुजा अवस्थी

निराला जब अपने जीवन और काव्य के यौवन में थे तभी संघर्षों ने उनको जर्जरित कर दिया था। गहरी वेदना में डूबे हुए उनके शब्द मानों अनायास फूट पड़े हों :

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

और फिर जीवन के अंतिम वर्षों में तो अनेक गीतों में उनके जीवन की यह अगाध वेदना व्यक्त हुई है :

मैं अकेला
देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की
सांध्य वेला।

वे घंटों टहलते हुए, शून्य में खोए ये पंक्तियाँ गाते-गुनगुनाते रहते थे। और महाकवि को इस रूप में जिस किसी ने भी देखा है, वही उनके जीवन की करुणा का अनुमान लगा सकता है और उनके काव्य को पूरी संवेदन-शीलता के साथ ग्रहण कर सकता है। महाकवि ने बार-बार अपना दुःख गीतों में गाया; उनके इस तप्त, पीड़ित और टूटे हुए जीवन के मार्मिक चित्रों से उनका काव्य-साहित्य भरा पड़ा है :

"स्नेह निर्झर बह गया है,
रेत ज्यों तन रह गया है"

में कितनी अगाध व्यथा और रिक्तता व्यक्त हुई है। किंतु निराला की इस पीड़ा और व्यथा में दीनता और हार का भाव नहीं है, उसमें संघर्ष का ओजपूर्ण उदात्त भाव है। जीवन के अंतिम कुछ वर्षों में तरह-तरह की प्रपंचपूर्ण चर्चाओं ने उनके दुःख के इस सात्विक स्वरूप को आच्छन्न कर दिया था और उसे नितांत साधारण बना दिया था। यही नहीं इन्हीं चर्चाओं और किंवदंतियों ने उनकी काव्य-कीर्ति को भी एक प्रकार के कुहासे से घेर लिया था, किंतु अब महाकवि के देहावसान के बाद संभवतः निराला का जीवन और काव्य दोनों ही अधिक निर्मल, सच्चे और स्वाभाविक रूप में हमारे सामने आएँगे; और निराला के काव्य का यह पुनर्मूल्यांकन काव्य-जगत में उनकी पुनः प्रतिष्ठा करेगा और वे नए हिंदी काव्य के सबसे ओजस्वी, प्राणवान, शिल्प-चतुर और शब्द-धनी

कवि माने जाएँगे।

निराला का जन्म सन् 1896 में वसंतपंचमी के दिन हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में ही मातृवियोग हो गया। पिता ने फिर दूसरा विवाह नहीं किया। पिता बंगाल में महिषादल जिले में काम करते थे। वहीं निराला का बचपन बीता, परंतु बीच-बीच में वे बेसवारे में अपने गाँव जाया करते थे। बंगाल और बेसवारा इन दोनों सांस्कृतिक अंचलों के प्रभाव निराला के काव्य और व्यक्तित्व दोनों में मुखर हैं। परम्परा के अनुसार निराला का विवाह अल्पायु में हो गया। पत्नी मनोहरा देवी सुंदरी थीं और निराला को उनसे गहरा अनुराग था। परंतु थोड़े-ही दिनों में उनकी मृत्यु हो गई। इसका कवि के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा, और आजीवन उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। निराला के दो संतानें हुईं—एक पुत्र और एक कन्या।

निराला का सारा जीवन गहरे आर्थिक अभाव में बीता। उन्होंने साहित्य-साधना को ही जीविकोपार्जन का साधन बनाना चाहा, और उससे कभी इतना धन प्राप्त न हो सका कि वे आर्थिक पक्ष की ओर से निश्चित हो सकते। एकमात्र कन्या की बिना दवा-दारू के मृत्यु हो गई। इस दुःख ने कवि को झकझोर दिया। 'सरोज-स्मृति' नामक लम्बी कविता में कवि का यह दुःख व्यक्त हुआ है।

'जुही की कली' की रचना के साथ निराला के काव्य-जीवन का समारंभ हुआ। साहित्य-जगत् में क्रांति मच गई। शताब्दियों के काव्य-मूल्य, संस्कार और रूढ़ियाँ सहसा बदल गईं। 'जुही की कली' में रीतिकालीन काव्य के सभी उपकरण प्रस्तुत हैं—नायक-नायिका, उनका केलि वर्णन—अनुरूप वातावरण—केवल वह 'रुग्ण मनोभाव' नहीं है, जीवन के प्रति, प्रकृति के प्रति, एक नई दृष्टि है, एक नई संवेदनशीलता है, एक नया काव्य स्रोत है। इसकी चित्रमयता—भाषा-सौंदर्य और शिल्प-गठन सभी कुछ अनुपम है। इस प्रकार के प्रेम-श्रृंगार के सरस, कोमल गीतों से निराला का काव्य-साहित्य भरा पड़ा है।

अन्य रोमांटिक कवियों की भाँति ही निराला ने भी नारी के प्रति अपनी बहुत सी कविताएँ लक्षित की हैं। प्रिया के चित्र खींचे हैं—इन चित्रों में भारतीय परंपरा के अनुसार नारी को देखा गया है यद्यपि कवि की अपनी रुचि और प्रीति उसमें प्रतिबिंबित है—

"सौंदर्य सरोवर की वह एक तरंग।
किंतु नहीं चंचल प्रवाह-उद्दाम वेग
संकुचित एक लज्जित गति है वह
प्रिय समीर के संग।"

कवि को वियोग के गान गाना प्रिय नहीं है। प्रकृति के बहाने भी जो चित्र खींचे गए हैं उनमें संयोग-प्रसंग हैं और कवि ने अपनी प्रिया को लक्षित कर जो भी कभी कहा है उसमें वियोगी हृदय की वेदना कहीं व्यक्त नहीं की—

तेरे सहज रूप से रंग कर
झरे गान के मेरे निर्झर,

भरे अखिल सर,
स्वर से मेरे सिक्त हुआ संसार।

कवि को अपने गीत गाने के लिए वियोग-वेदन की आवश्यकता न थी। यह कवि की सहज उदासीन वृत्ति थी अथवा उनका तेजस्वी व्यक्तित्व जिसने जीवन-व्यापी एकाकीपन के सम्मुख कभी हार न मानी, कहा नहीं जा सकता।

इन छायावादी शैली के कोमल प्रणय-गीतों के साथ-साथ निराला गाथा-गीतों के सफल कवि हैं। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' गाथा-गीत के उत्कृष्टतम उदाहरण हैं। 'तुलसीदास' में मध्ययुगीन भक्त कवि के जीवन पर एक नवीन युगानुकूल दृष्टि डाली गई है। उसमें तुलसीदास के व्यक्तित्व का सर्वथा नया निरूपण प्रस्तुत किया गया है। 'राम की शक्ति पूजा' की ओजपूर्ण शैली हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। जितने सफल शब्द-चित्र इस कविता में मिलते हैं उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं। सागर का एक चित्र है :—

"शत घूर्णावर्त, तरंगभंग, उठते पहाड़,
जल-राशि राशिजल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बंध प्रतिसंघ धरा हो स्फीत वक्ष,
दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष,
शत वायु वेग बल डुबा अतल में देश भाव,
जल राशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव।"

हिंदी-काव्य के अनुसंधानकर्ता और इतिहासकार के लिए यह तथ्य सदा ही बहुत बड़ी साहित्यिक जिज्ञासा का कारण बना रहेगा कि जो कवि छायावाद का अग्रणी और प्रौढ़ कवि था, उसी ने इतने सफल गाथा-गीतों की भी रचना की। यही नहीं उसने 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसी रचनाएँ लिख-कर नए गद्य-शिल्प का सूत्रपात किया। शायद, भविष्य में साहित्यिक-अन्वेषक और इतिहासकार इसके कारणों को बता सकें, और ऐसा करने में उन्हें निश्चय ही निराला के समूचे जीवन और उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में विचरण करना होगा। क्योंकि निराला का कवित्व इन्हीं जीवन भूमिकाओं से प्रस्फुटित हुआ है। निराला के काव्य की यह सांस्कृतिक मुद्रा ही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। यही कारण है कि उनके काव्य को हम रसों और साहित्यिक आंदोलनों के साँचों में नहीं उतार सकते। उसमें एक ऐसी विशालता, व्यापकता और उदारता है जो भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप है।

निराला के काव्य की इसी व्यापक सांस्कृतिक पीठिका ने उसमें जीवन और समाज के अनेक यथार्थवादी चित्र भी दिए और जहाँ उन्होंने छायावाद को उसकी कुछ उत्कृष्टतम प्रगीति रचनाएँ दीं, वहाँ वे काव्य में प्रगति का नया स्वर लाने में भी अग्रणी रहे। जिस मनोयोग से उन्होंने दार्शनिक और रहस्य-वादी गीत गाए, प्रकृति के सुकोमल चित्र खींचे, प्रणय और श्रृंगार के भाव व्यक्त किए, उसी तल्लीनता से पत्थर तोड़ने

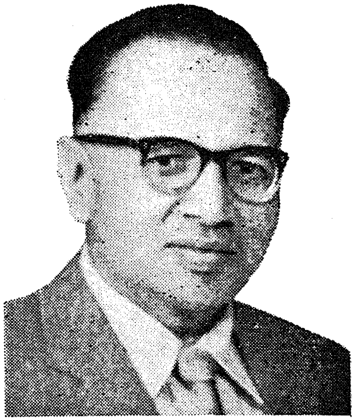
वाली मज़दूरिन और भिक्षुक के चित्र भी प्रस्तुत किए।

निराला के व्यक्तित्व का तेज और ओज, उनके काव्य का भास्वर स्वर और उनका आर्योचित रूप उनके जीवन की अनगढ़ता के साथ, उनके काव्य की करुणा को भी गहरा संवेदन दे देता है। उनका व्यक्तित्व अनोखा था। अत्यंत दरिद्रता और अभाव का जीवन व्यतीत करने पर भी वैभव के प्रति उनकी स्पष्ट निस्पृहता, भाव-प्रवण होने के साथ-साथ अत्यंत रुक्ष और कटु व्यवहार कर सकने की क्षमता, और दुर्दमनीय रूप से क्रोधी होने पर भी सहज ही विगलित हो जाने का वह दैवी गुण-मानों अपने सामने धर्मग्रन्थों में वर्णित शिव की कल्पना को मूर्तिमान् कर देते हैं। वे नीलकंठ शंकर ही थे जो जीवन भर गरल पीते रहे— और काव्य पीयूष प्रवाहित करते रहे।



स्मृति

डॉ० यदुवंशी : मनस्वी व्यक्तित्व



तारा तिक्कू

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय के हिंदी विभाग की स्थापना के दो वर्ष पश्चात् 1954 में डॉ० यदुवंशी विशेषाधिकारी (हिंदी) के पद पर नियुक्त हुए। यों तो वे प्रारम्भ से ही पारिभाषिक-शब्दावली के लिए शिक्षा-मंत्रालय द्वारा संघटित भाषाविद् समिति के एक सदस्य के रूप में सक्रिय सहयोग दे रहे थे, पर विशेषाधिकारी (हिंदी) के पद-भार ग्रहण करने के पश्चात् जैसी लगन, तत्परता, परिश्रम, सूझ-बूझ से उन्होंने पारिभाषिक-शब्दावली निर्माण में योगदान दिया, वह किसी के लिए भी अनुकरणीय है। उनके विशेषाधिकारी नियुक्त होने के समय शिक्षा-मंत्रालय का हिंदी-विभाग एक बीज के रूप में था। उस बीज को एक विशाल वृक्ष का रूप देने का श्रेय बहुत कुछ अंशों में डॉ० यदुवंशी को ही है। आज उसी बीज की शाखाओं को अन्य प्रदेशों में भी फैलाने की योजनाएँ बनाई जा रही हैं।

हिंदी के प्रचार तथा प्रसार में एवं पारिभाषिक-शब्दावली के निर्माण के विषय में डॉ० यदुवंशी को स्वाभाविक रुचि थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने अनेक योजनाएँ बनाईं; सतत परिश्रम से उन्हें गति दी और एक दिशा भी। उनके निदेशन में हिंदी-विभाग के सारे कार्य व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रणाली पर चले और यही कारण है कि उन्हें आज सफल होते देख हमें प्रसन्नता होती है।

शब्दावली-निर्माण कार्य में डॉ० यदुवंशी को न तो अँग्रेजी का अन्धानुकरण पसन्द था और न प्राचीन परंपराओं का परिपालन। किसी भी भाषा का उपयुक्त और प्रचलित शब्द अपना लेने में उन्हें कभी हिचकिचाहट नहीं हुई। विभिन्न भारतीय भाषाओं की शब्दावली का सहारा लेकर उन्होंने अनेक पर्यायों का निर्माण किया। इस परिपाटी पर चलने के लिए उन्हें क्या-कुछ नहीं सुनना पड़ा। यहाँ तक भी कहा गया कि वे एक (hybrid) संकर भाषा की रचना कर रहे हैं। पर ऐसी आलोचना से डॉ० यदुवंशी के सिद्धान्तों में अन्तर नहीं आया बल्कि उनकी विचार-शक्ति को और अधिक बल मिला, प्रेरणा मिली और इस दिशा में जो मार्ग उन्होंने अपनाया था उस पर उनकी आस्था और भी दृढ़ हुई। अनुवाद-कार्य में भी डॉ० यदुवंशी को बड़ी रुचि थी। यूनेस्को से प्राप्त साहित्य का उन्होंने जैसा अनुवाद कराया, वह भूलने की बात नहीं है। बीच में लंच (आहार) के लिए जो छुट्टी मिलती, उसमें वे अकसर मूल प्रति सामने रखकर बैठ जाते थे और अनुवाद सुन-सुन कर संशोधन करा देते थे।

तकनीकी-अधिकारियों के बारे में अकसर यह धारणा रहती है कि वे प्रशासनिक मामलों को निपटाने में असमर्थ होते हैं। डॉ० यदुवंशी इसके अपवाद थे। उनकी तकनीकी योग्यता में तो किसी को सन्देह हो ही नहीं सकता, प्रशासनिक मामलों में भी उन्हें सिद्धहस्त माना गया। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धैर्य न खोना उनका विशेष गुण था। उलझनों को सुलझाने में वे अत्यन्त पटु थे। तकनीकी योग्यता और प्रशासनिक अनुभव का उनमें अद्भुत संगम था। अनुशासनप्रियता और स्पष्टवादिता उनकी दुर्बलताएँ कही जाएँ या विशेषताएँ यह निर्णय उन पर ही छोड़ देना चाहिए, जिन्होंने डॉ० यदुवंशी के साथ काम किया है।

मुझे उनके साथ लगभग छः वर्ष कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। शब्द-निर्माण-कार्य में मैंने उनके साथ विविध विषयों की कई समितियों में काम किया। उन्हें केवल प्रशासनिक शब्दावली की बारीकियों का ही ज्ञान नहीं था, बल्कि चाहे वे चिकित्साशास्त्र के शब्द हों या इन्जीनियरी की किसी भी शाखा के, रेल से सम्बन्धित शब्द हों या परिवहन के, अर्थशास्त्र के हों या राजनय के, उनकी प्रतिभा तथा परिपक्व बुद्धि का प्रवेश सब में समान था। शब्दावली-निर्माण की दृष्टि से सभी विषयों पर उनका समान अधिकार था। किसी भी शाखा के तकनीकी शब्दों के बहुविध प्रयोगों को समझना, उनके अर्थ की गहराई तक पहुँचना, तथा उसका सूक्ष्म अनुशीलन कर सर्वोत्तम पर्याय सुझाना उनकी सहज प्रवृत्ति थी। बहुधा विशेषज्ञ उनकी प्रत्युत्पन्नमति से हतप्रभ रह जाते थे। हम जो उनके साथ रोज़-रोज़ काम करते थे अकसर सोच में पड़ जाते थे कि उन्हें सभी विषयों का ऐसा ज्ञान कैसे

और क्योंकर प्राप्त हुआ। मुझे इस बात पर जो हैरत होती थी उसे गोल्डस्मिथ की इन पंक्तियों के सहारे ही व्यक्त किया जा सकता है—

......And still the wonder grew.
That one small head could carry all he knew.

डॉ० यदुवंशी संस्कृत, हिंदी तथा अँग्रेज़ी भाषा के अच्छे जानकार थे। उन्हें फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक और लैटिन भाषा का भी अच्छा ज्ञान था—उनका भाषा-ज्ञान शब्दावली-निर्माण में बड़ा सहायक रहा। निदेशालय के वैज्ञानिक शब्दावली-निर्माण कार्य में डॉ० यदुवंशी का नाम अग्रणी है।

उनकी सबसे बड़ी खूबी थी लगन। सरकारी काम ही उनकी पूजा का रूप था। अस्वस्थ होते हुए, डाक्टरी सलाह की अवज्ञा करके वे कार्यरत रहे। हमें कितनी ही बार उन्हें याद दिलानी पड़ती थी कि उन्हें लँच के लिए घर जाना या विश्राम करना है। खाना-पीना भूल कर वे काम में ही लगे रहना चाहते थे—शायद यह भूल जाने के लिए कि वे अस्वस्थ है।

हिंदी संसार में उनके शोध प्रबन्ध 'शैव-मत' का बहुत आदर है। विभिन्न शोधकर्ताओं ने उक्त प्रबन्ध से सहायता ली है।

'आकाशवाणी' के अधिकारी रहते हुए डॉ० यदुवंशी ने वहाँ के कार्यक्रमों में जो सुधार किए, उनके लिए उस क्षेत्र में डॉ० यदुवंशी आज भी स्मरणीय हैं।

16 जनवरी, 1962 को एक विद्वान् भाषा-शास्त्री, एक कर्मठ व्यक्तित्व हमारे बीच से उठ गया। पर उसकी याद हमें चिरकाल तक बनी रहेगी। आने वाली पीढ़ियाँ और विशेषकर वे लोग जो तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली का उपयोग करेंगे, उनके चिर-ऋणी रहेंगे।

युद्धोत्तर काल के प्रमुख कवि :

स्व० नलिनविलोचन शर्मा

राजीव सक्सेना

बिहार में नई पीढ़ी के साहित्यकारों, विशेषकर कवियों को प्रेरित करने और प्रोत्साहन देनेवालों में आचार्य नलिनविलोचन शर्मा का प्रमुख स्थान रहा है। वे प्रेरणास्रोत बन सके तो इस कारण कि वे आधुनिक चेतना के प्रबल समर्थक और आन्दोलनकर्ता थे।

उन्होंने कविता के भविष्य के प्रति आस्था जागृत करने में सबल योग दिया। उनके सम्पादन में प्रकाशित 'कविता' के प्रथम अंक (जुलाई, 1954) में उन्होंने घोषणा की कि 'हम मनुष्य और मनुष्यता' में विश्वास रखते हैं। इसलिए कविता में भी हमारी आस्था बनी हुई है।'

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि पाठक और कवि एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

नए कवियों के आत्मविश्वास को वे सदा इन शब्दों से जगाते थे, 'प्रसिद्धि और लोकप्रियता से या उनके अभाव से ही गुणों का अन्तिम मूल्यांकन नहीं हो सकता' (दृष्टिकोण)।

जेहाद की इस प्रवृत्ति से काम करते हुए भी उन्होंने अपना कोई 'वाद' या 'स्कूल' स्थापित करने, अथवा अनुगामियों को जोड़ने का प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में वे ऐसा कर ही नहीं सकते थे, क्योंकि उन्हें इसमें विश्वास ही न था। दो अन्य कवियों (केसरी कुमार और नरेश) के साथ प्रकाशित उनके कविता-संग्रह 'नकेन के प्रपद्य' 1956 के आधार पर उनको 'नकेनवाद' या 'प्रपद्यवाद' का संस्थापक सिद्ध करने का प्रयत्न अवश्य किया गया है, किंतु इस प्रश्न पर उनकी स्थापनाओं को देखने से पता चलता है कि वह विचारगत या शिल्पगत कोई 'वाद' नहीं है। विचारगत वादों के विषय में उनका कथन था : 'काव्यानुरागी के रूप में हमें सभी प्रकार की कविताएँ प्रिय हैं, बशर्ते कि वे उच्चस्तर की हों—यह दूसरी बात है कि कवि के रूप में हमारी निष्ठा वाद-विशेष के प्रति हो।'

वे कवि के लिए दूसरों का अनुकरण ही नहीं, स्वयं अपना अनुकरण भी वर्जित समझते थे। अनेक कवियों के विचार और शिल्प में समानता को ही नहीं, स्वयं एक कवि की अनेक कविताओं के विचार और शिल्प विधान में समानता

उन्हें अमान्य थी।

जो साहित्यकार एक कवि के लिए आत्मानुकरण भी वर्जित मानता हो, वह स्वयं अपना अनुकरण करने वाले साहित्यकारों का दल कैसे बना सकता है ? अतः उन्होंने कोई मठ स्थापित नहीं किया। उनसे जो कवि या साहित्यिक अनुप्रेरित हुए, उन्होंने केवल यही सीखा कि नित नवीन, आधुनिक चेतना से परिपूर्ण लेखन ही साहित्यकार का धर्म है।

नलिन जी की साहित्य-समीक्षा-संबंधी धारणाओं का अध्ययन दिलचस्प होगा। उन्होंने संस्कृत के समीक्षा-सिद्धान्तकारों से लेकर मार्क्सवादी साहित्यिक धारणाओं तक हर विषय का अध्ययन किया। उन्होंने स्वतंत्र चिन्तन का प्रयत्न किया। उनसे हर स्थल पर और हर प्रसंग में सहमत होना चाहे सम्भव न भी हो पर उनके रचनात्मक विवेचन की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

नलिन जी को मूलतः कवि माना जाना चाहिए। अन्य विधाएँ परिपूरक ही प्रतीत होती हैं। उन्होंने साहित्य-संबंधी जो भी स्थापनाएँ की हैं उनका व्यावहारिक रूप कविताओं में प्रस्तुत है।

आधुनिकता का बोध, तीव्र व्यंग और विद्रूप नलिन जी की रचनाओं में मिलता है।

पुराने प्रतीकों, बिम्बों या चित्रों को अथवा पौराणिक गाथाओं को उन्होंने सर्वथा त्याज्य नहीं माना बल्कि पुराने प्रतीक भी नलिन जी के हाथ पड़कर नई अभिव्यंजना के माध्यम हो गए। 'कली' और 'अलि' की पुरानी चर्चा नलिन जी की छोटी सी कविता 'अलि-विलासि-संतापि' में खूब उभरी है।

कविता की भाषा के बारे में नलिन जी काफ़ी सतर्क थे। शायद पाठकों को चौंकाने की दृष्टि से उन्होंने अनेक शब्द गढ़े या संस्कृत के अत्यन्त अप्रचलित और किसी हद तक अपरिचित शब्दों का प्रयोग किया। भाषा के संबंध में नलिन जी ने एक स्थान पर कहा था :—

'कवि अपने काव्य में दन्तकथाएँ तो अत्यन्त प्राचीन काल की अनुस्यूत करता है, किंतु जिस भाषा में वह सोचता है, वह हमारे युग की पेचीदी, ऐतिहासिक चेतनापूर्ण और अनौपचारिक भाषा होती है (कविता-2, वार्तिकी)।

यों नलिन जी अनेक वर्षों से लिख रहे थे, लेकिन उनकी प्रतिभा का संपूर्ण प्रस्फुटन युद्धोत्तर काल में हुआ। युद्धोत्तर काल में नवीन भाव-भूमि और मानव-मूल्य खोजने के लिए जो आकुल आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसमें नलिन जी एक ज्योति-स्तंभ थे। नलिन जी संक्रमण-युग के प्रमुखतम कवियों में से एक थे। उन्हीं की एक स्थापना को दोहराएँ तो कहेंगे कि इस संक्रमण-युग की वास्तविता का अध्ययन तो गौणों को देख कर भी किया जा सकता है, 'लेकिन उसकी बुलंदियों का एहसास नलिन जी जैसे कृतिकारों को देखकर ही सम्भव है।'

स्व० पं० रामनरेश त्रिपाठी

रामकिशोर द्विवेदी

पिछले दिनों एक के बाद एक दुःखद संवाद सुनने पड़े। महाप्राण निराला और श्री नलिनविलोचन शर्मा के स्वर्गवास से जो क्षति पहुँची थी उससे अभी हिंदी-जगत् सम्भल नहीं पाया था कि पं० रामनरेश त्रिपाठी के दिवंगत होने के समाचार ने फिर उसे गहरे शोक से अभिभूत कर दिया।

पं० रामनरेश त्रिपाठी का नाम हिंदी के मूर्धन्य आलोचक, प्रसिद्ध भाषाविद्, कुशल सम्पादक, ओजस्वी वक्ता तथा देशभक्त के रूप में सदैव स्मरण किया जाएगा। उनका जन्म ज़िला जौनपुर (पूर्वी उत्तर-प्रदेश) के कोइरीपुर गाँव में हुआ था। उन्होंने वहीं से हिंदी मिडिल पास किया और प्राइमरी स्कूल में शिक्षक हो गए, किंतु वे मास्टरी से सन्तुष्ट न रह सके। उनके भीतर की सृजन-शक्ति, प्रतिभा तथा देशभक्ति बहिर्मुखी होने को आकुल रही। अतः वे उस समय की हिंदी पत्रकारिता तथा साहित्यिक चेतना के प्रमुख गढ़ कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ते में कुछ दिन रहने के बाद वे अस्वस्थ हो गए। नेवटिया-परिवार से घनिष्ठता होने के कारण वे जलवायु परिवर्तन के ख्याल से उन्हीं के राजस्थान स्थित निवास पर चले गए। वहाँ पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ के साथ-साथ उन्होंने पुराण, उपनिषद् तथा संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया।

नेवटिया बन्धुओं के साथ उन्होंने सारे भारत की यात्रा की तथा अपनी अनुभूति को विराट् बनाया। वे मूलतः कवि थे। उनकी कवित्व-शक्ति का परिचय उनके तीन खण्ड-काव्यों 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' में मिलता है। श्री गोपाल नेवटिया द्वारा सम्पादित 'मानसी' उनकी फुटकल कविताओं का संकलन है, जिसमें उनकी 'विधवा का दर्पण' तथा 'अन्वेषण' नामक प्रसिद्ध कविताएँ भी सम्मिलित हैं। उनके काव्य में आस्तिकता, स्वदेश-प्रेम, मानवीय गुणों के प्रति आस्था तथा प्रकृति-प्रेम मिलता है।

प्रसिद्धि के चरम शिखर पर पहुँच कर भी उनमें अहं छू तक नहीं गया था। 'स्वप्न' की भूमिका में वे कहते हैं, 'मैं कवि नहीं! कवि होता तो सचमुच बड़ा सुखी होता। पर सत्कवियों का सेवक

और सुकविता का अनुरागी अवश्य हूँ।'

समाज की कुरीतियों, 'विसंगतियों, विषमताओं तथा स्वार्थवृत्तियों के प्रति उनके मन में घोर वितृष्णा थी। 'कवि की स्त्री', 'कवि का स्वप्न', 'भीखिन मंगबूअ' आदि कहानियों में तथा 'सीज़न डल है' जैसे लघु-एकांकियों में उन्होंने उन पर करारा व्यंग्य किया है।

बाल-साहित्य के सृजन की ओर भी उस समय उनका ध्यान गया था। लगभग पचास बालोपयोगी कहानियों की पुस्तकों तथा नाटकों की रचना उन्होंने की। उन्होंने 'वानर' नामक मासिक बाल-पत्रिका का भी सम्पादन काफ़ी दिनों तक किया।

हिंदी-भाषा तथा साहित्य के लिए सबसे बड़ा कार्य जो त्रिपाठी जी ने किया वह है काव्य-संकलन का। 'कविता-कौमुदी' के नाम से, सात भागों में हिंदी, संस्कृत तथा अन्य हिंदीतर भाषाओं (जैसे उर्दू, बँगला आदि) की देवनागरी में लिप्यन्तरित कविताओं तथा लोकगीतों का संकलन हिंदी में लोकसाहित्य संकलन का अग्रणी कार्य है। सचमुच इन संग्रहों के द्वारा उन्होंने भारतीय लोक-साहित्य की अप्रतिम सेवा की है। हिंदी के ग्राम-गीतों के संकलन व प्रकाशन का सर्वाधिक श्रेय उन्हीं को है।

वे प्रथम कोटि के आलोचक भी थे। 'मानस की टीका', 'तुलसीदास और उनकी कविता' आदि उनके बहुचर्चित आलोचना-ग्रन्थ हैं।

हिंदी के सुकवि व लेखक होने के साथ-साथ वह अन्य भाषाओं जैसे संस्कृत, बँगला, उर्दू के भी विद्वान् थे। हिंदी के द्वारा राष्ट्रीय एकता के वे बहुत बड़े हिमायती थे। यह संभवतः इसलिए कि वे बापू के परम प्रिय शिष्यों में से थे।

हिंदी-जगत् उनके साहित्यकार के रूप के अलावा अन्य रूपों से भी परिचित है। वे कर्मठ आदर्शवादी नेता होने के साथ ओजस्वी वक्ता भी थे।

सन् 1941 से, प्रकाशन से अवकाश लेकर, वे सुल्तानपुर रेलवे स्टेशन के बिल्कुल पास अपने निजी भवन 'वसन्त-निवास' में रह रहे थे किंतु उनकी मृत्यु 16 जनवरी, 1962 को 72 वर्ष की आयु में अपने पैतृक निवास कोइरीपुर ग्राम में हुई।

हिंदी पाठ

आशा गुप्त

Having acquired proficiency in reading and writing of Hindi, the beginner has to proceed on to the next important step i.e., familiarity with the vocabulary. It is generally recognised that vocabulary without the aid of grammar is no better than a maze. It is, therefore, advisable to proceed cautiously in that direction. In the initial stage of learning vocabulary, groups of words pertaining to familiar topics or subjects may be selected with their grammatical forms. Let us, therefore, take up the nouns under the classified heads like eatables, dwellings and relationships etc.

Eatables.—डबल रोटी (f*-bread), मक्खन (m*-butter), दही (m-curd), छाछ (f-butter-milk), पानी (m-water), कॉफ़ी/चाय (f-coffee/tea), शरबत (m-cold-drink), मिठाई (m-sweetmeat), खाना (m-food), सब्ज़ी (f-vegetables), तेल (m-oil), घी (m-ghee), दाल (f-pulse), इमली (f-tamarind), etc.

Dwellings.—मकान (m-house), कमरा/कक्ष (m-room), आँगन/चौक (m-courtyard), खण्ड/मंज़िल (m/f-storey), रसोई (f-kitchen), सीढ़ियाँ (f-stairs), बरामदा (m-verandah), छत (f-ceiling/terrace), खिड़की (f-window), दरवाज़ा (m-door) etc.

Relationships— माँ/माता (f-mother), बाप/पिता (m-father), पुत्र/बेटा (m-son), पुत्री/बेटी (f-daughter), भाई/भ्राता (m-brother), बहिन/भगिनी (f-sister), etc.

Groups of words peculiar to a topic or subject should be learnt with their genders. There are only two genders—*Masculine* and *Faminine* in Hindi. Determination of gendeıs in case of animate objects mostly depends on their sex. But in the case of inanimate objects as also in the cases of abstract, collective and common nouns, gender is determined partly by the form and partly by the usage. There are a few important considerations on the basis of which the gender of a particular noun is determined. These considerations have been formulated under definite rules which will be discussed later.

Learning of grammar starts with the knowledge of main verb-roots along with their oblique forms. Some of the main verb-roots are as follows :

*(f denotes faminine and m, masculine genders.)

आ (come), जा (go), दे (give), ले (take), उठ (rise/get-up), बैठ (sit), खा (eat), पी (drink), नहा (bathe), धो (wash), भाग/दौड़ (run), बोल/कह (speak/say), रो (cry/weep), मार (beat), तोड़ (break), चढ़ (ascend / climb), उतर (descend / get-down), गिर (fall), पकड़ (catch / hold), लड़ (fight / quarrel), खो (lose), कूद (jump), etc.

The verb in thc imperative mood is preceded by the subject (pronoun) तू (thou). It is necessary to have knowledge of all types of pronouns, i.e., personal, demonstrative, reflexive, relative, indefinite and interrogative. A few important personal pronouns are given below :—

First Person

Singular No.	*Oblique forms*	*Plural No.*	*Oblique forms*
मैं (I)	मुझ, मुझे मुझको, मेरा, मेरी	हम (we)	हम, हमें, हमारा. हमारी

Second Person

तू (thou)	तुझ, तुझे, तुमको तेरा, तेरी	तुम or आप (you)	तुम or आप तुम्हें, तुम्हारा तुम्हारी, आपको, आपका, आपकी

Third Person

वह (He, she)	उस, उसे, उसको, उसका, उसकी	वे (they)	उन, उन्हें, उनका, उनकी, उनको

Note—'तू' is used in addressing God, children and occasionally intimate friends. It may also be used for elders, especially mother, as a term of endearment. 'तुम' is used for addressing equals and servants etc. 'आप' is the polite and respectful form of address for all in singular and plural forms; just as in Tamil we have नींगळ, तांगळ or in Bengali आपनि.

When 'तुम' or 'आप' is the subject, the imperative verb is formed by adding 'ओ' / or 'इए' to the verb-root. When 'तू' is the subject, the oblique form of the verb-root remains unchanged. An illustration will clarify:

तू बैठ / जा / खा / दौड़ / चढ़ etc.
तुम बैठो / जाओ / खाओ / दौड़ो / चढ़ो etc.
आप बैठिए / जाइए / खाइए / दौड़िए / चढ़िए etc.

The negative imperative is expressed by adding 'मत' or 'न' before the verb. The imperative forms of the following may be studied carefully as there are slight differences in their formation: कर, दे, ले, and पी, i.e.,

तुम करो/दो (not देओ) लो (not लेओ), पिओ;

आप कीजिए (not करिए), दीजिए (not देइए);
लीजिए (not लेइए) and पीजिए (not पीइए).

The infinitive is that form of the verb which expresses the noun without predicating it to any subject. However, it can be used with imperative also to denote a lapse of time between the command and its execution.

Examples : 'तू जा' and 'तू जाना', तुम जाओ' and 'तुम जाना'. Here 'तू जाना' and 'तुम जाना' clearly indicate that the person is required to go after a little while and not immediately, whereas 'तू जा' and 'तुम जाओ' call for immediate action.

In case 'आप' is used as the subject, 'इएगा' is generally added instead of the infinitive form of the verb, eg., जाइएगा, बैठिएगा, खाइएगा etc. to denote some lapse of time between the statement and action.

In the present indefinite or the indicative mood the verb-root is followed by 'ता' in masculine singular, 'ते' in masculine plural and ती in faminine singular and plural forms. The change of auxiliary verb-form 'है' (is) or 'हैं' (are) to था (was) or थे (were) change the tense to past indefinite, eg.,

	Present Indefinite	*Past Indefinite*
First Person	मैं जाता हूँ (m)	मैं जाता था (m)
	मैं जाती हूँ (f)	मैं जाती थी (f)
	हम जाते हैं (m)	हम जाते थे (m)
	हम जाती हैं (f)	हम जाती थीं (f)
Second Person	तू जाता है (m)	तू जाता था (m)
	तू जाती है (f)	तू जाती थी (f)
	तुम जाते हो (m)	तुम जाते थे (m)
	तुम जाती हो (f)	तुम जाती थीं (f)
	आप जाते हैं (m)	आप जाते थे (m)
	आप जाती हैं (f)	आप जाती थीं (f)
Third Person	वह जाता है (m)	वह जाता था (m)
	वह जाती है (f)	वह जाती थी (f)
	वे जाते हैं (m)	वे जाते थे (m)
	वे जाती हैं (f	वे जाती थीं (f)

By adding रहा, रहे or रही to the verb-root with है and था etc., the auxiliary verbs can be used for present and past continuous tenses, eg.,

वह जा रहा है (He is going).
वह जा रहा था (He was going).

Negation is expressed by adding नहीं before the verb-form. In present indefinite and present continuous tenses 'हूँ' 'है' 'हो'

or 'हूँ' are generally dropped unless required to emphasize or stress the statement e.g., 'मैं सिनेमा नही जाता' will mean that 'I do not go to cinema' but by adding the auxiliary 'हूँ' to the sentence, it will mean that as a matter of principle I do not go to cinema. Interrogation is expressed by adding क्या (what) at the beginning of a sentence, e.g., 'क्या तुम शहर जाते हो? In spoken Hindi 'क्या' is often dropped out and the interrogation is expressed by intonation, eg., तुम शहर जाते हो? This holds good for other Indian languages also.

The indicative future is formed in the following manner:

i) The root verb assumes a modified form by adding 'ए' in the second and third persons singular; ऊँ in the first person singular; एँ in the first and third persons plural and 'ओ' in the second person singular and plural. Thus 'चल' will be modified as :

	Singular	*Plural*
First person	मैं चलूँ	हम चलें
Second person	तू चले, तुम चलो	तुम (सब) चलो
Third person	वह चले	वे चलें

ii) To the root thus modified is appended 'गा' 'गे' and 'गी' according to the number and gender of the subject to make it future indefinite and the declensions will be as follows :

	Singular	*Plural*
First person	मैं चलूँगा (m)	हम चलेंगे (m)
	मैं चलूँगी (f)	हम (सब) चलेंगी (f)
Second person	तू चलेगा; तुम चलोगे (m)	तुम सब चलोगे (m)
	तू चलेगी; तुम चलोगी (f)	तुम (सब) चलोगी (f)
Third person	वह चलेगा (m)	वे चलेंगे (m)
	वह चलेगी (f)	वे चलेंगी (f)

It should be remembered that 'दे' and 'ले' will change into 'दूँगा', 'देंगे', 'दोगे', 'लूँगा', 'लेंगे', 'लोगे'.

iii) The root 'हो' does not combine with 'ए' or 'एँ' But 'ऊँ' (first person singular) and 'ओ' (second person plural) are appended as usual. In the first and third person plural with 'आप', 'हो' followed by 'गे' is nasalised, eg.,

	Singular	*Plural*
First person	मैं होऊँगा (गी)	हम होंगे (गी)
Second person	तू होगा/तुम होगे (गी)	तुम (सब) होगें (गी)
Third person	वह होगा (गी)	आप होंगे/वे होंगे (गी)

iv) In active voice the indicative future has only the subjectival construction and the verb always agrees with subject in number, gender and person.

लेखक-परिचय

- **रमाप्रसन्न नायक**, संयुक्त सचिव, शिक्षा-मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।
- **भगीरथ मिश्र (डॉ.)**, अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना ।
- **मुनि नथमल**, द्वारा आदर्श साहित्य-संघ, 199/5, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता–7.
- **अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार**, इतिहास-सदन, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली ।
- **धनंजय वर्मा**, हिंदी-विभाग, शासकीय हमीदिया कॉलेज, भोपाल ।
- **रामचन्द्र तिवारी**, द्वारा, 'भारतीय रेल' हिंदी मासिक, पो० बॉ० नं० 467, नई दिल्ली ।
- **महेन्द्र चतुर्वेदी**, हिंदी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–6.
- **सूजूकी, शीगेनोबू**, 100-बी, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली ।
- **मुद्राराक्षस**, ए 15/5, राणा प्रताप-बाग, नई दिल्ली ।
- **अगरचन्द नाहटा**, नाहटों की गली, बीकानेर ।
- **विश्व[illegible]**